सद्ज्ञान-देशना

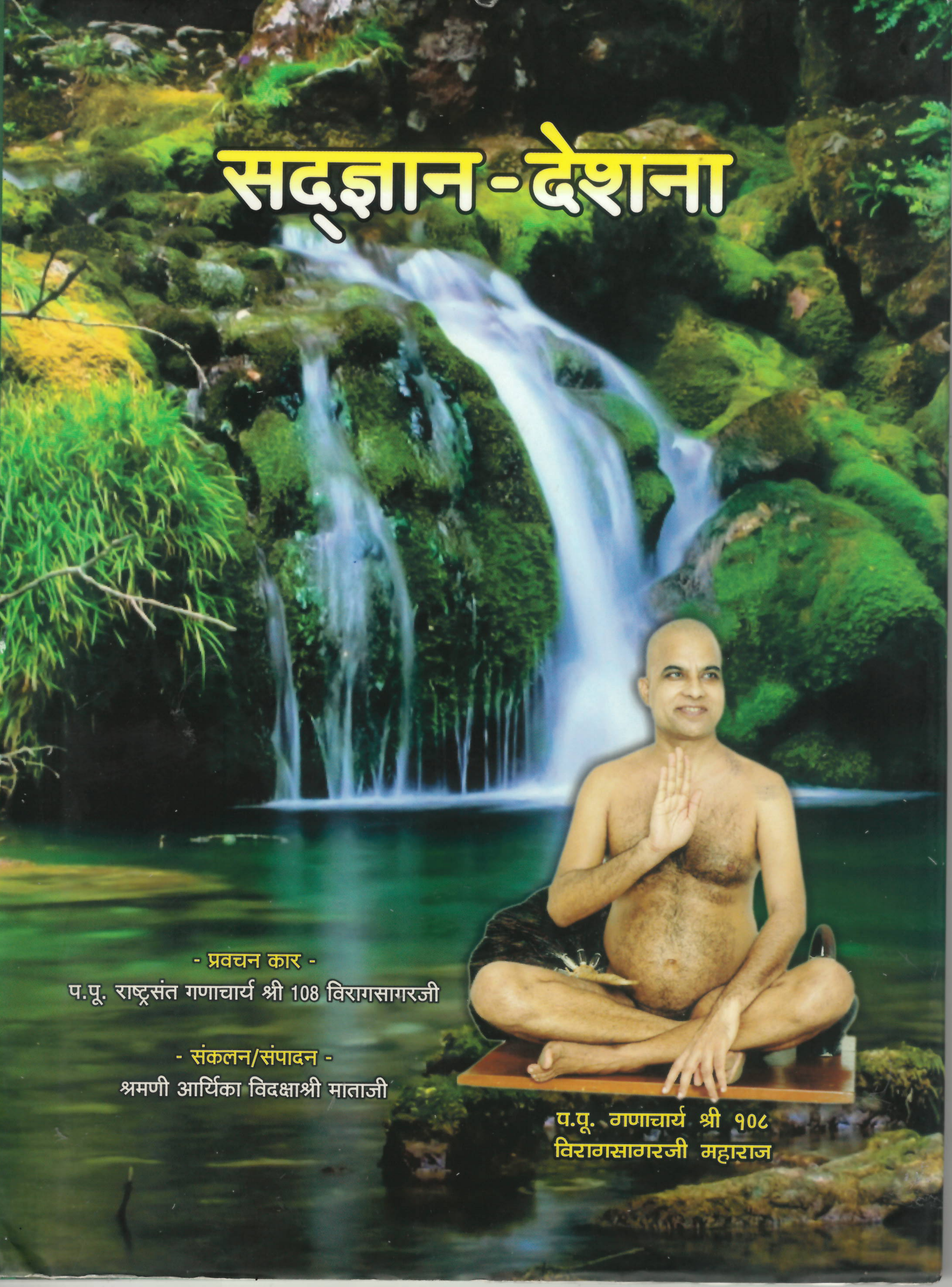

- प्रवचन कार -

प.पू. राष्ट्रसंत गणाचार्य श्री 108 विरागसागरजी

- संकलन/संपादन -

श्रमणी आर्यिका विदक्षाश्री माताजी

प.पू. गणाचार्य श्री १०८
विरागसागरजी महाराज

जीवन बिन्दु

पूर्वनाम : अरविन्द जैन (टिन्नू)

जन्म : 2 मई 1963, शुक्रवार (वैशाख शु. 9 संवत 2020, पथरिया)

माता, पिता : श्रीमती श्यामादेवी जैन (समाधिस्थ आर्यिका विशांत श्री माताजी), ब्र. श्रीमान् कपूरचंद जी जैन

बहिन : श्रीमती मीना जैन, श्रीमती विमला जैन

भाई : श्री विजय कुमार, श्री सुरेन्द्र कुमार, बा. ब्र. श्री नरेन्द्र कुमार जैन

लौकिक दीक्षा : इण्टर (पथरिया, श्री शान्ति निकेतन, दि. जैन संस्कृत विद्यालय, कटनी (म.प्र.)

क्षुल्लक दीक्षा : 20 फरवरी 1980 (फाल्गुन शु. 5 वि.सं. 2036) बुद्धार, शहडोल

नामकरण : पूज्य क्षु. 105 श्री पूर्ण सागरजी महाराज

क्षु. दीक्षागुरु : परम पूज्य तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मति सागरजी महाराज

मुनि दीक्षा : 9 दि. 1983 (मगसर शु. 5 वि.सं. 2040), औरंगाबाद (महा.)

नामकरण : पू. मुनिश्री 108 विराग सागरजी महाराज

मुनि दीक्षागुरु : प.पू. आचार्य श्री 108 विमल सागरजी महाराज

आचार्य पद : 8 नव. 12 (कार्तिक शु. 13 वि.सं. 2041, रविवार, द्रोणगिरि, जिला छतरपुर (म.प्र.)

संयमी सृजन : आचार्य 7, मुनि, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका कुल 180 से अधिक तथा ब्रह्मचारी भाई, बहने।

समाधि संल्लेखनायें : 28

चातुर्मास : 1990 से 2015 तक क्रमशः दुर्ग, नागपुर, कारंजा (लाड), कारंजा (लाड), भावनगर, पांचवा, निमाज, जयपुर, भिण्ड, भिण्ड, टीकमगढ़, श्रेयांसगिरि, द्रोणगिरि, श्रेयांसगिरि, बीना, ललितपुर, मढ़ीया जी (जबलपुर), भिण्ड, भिण्ड, भिण्ड, शिखर जी, गया, श्रेयांसगिरि, भिलाई, कारंजा (लाड), मूडबिद्री (कर्नाटक), मेलचित्तामूर (तमिल.), उदगांव (महा.) मुम्बई (महा.) गांधीनगर (गुज.), उदगाव (महा.), अजमेर (राज.), जयपुर (राज.), इंदौर (म.प्र.), श्रेयांसगिरि (म.प्र.), पथरिया (म.प्र.),

आचार्य परम्परा

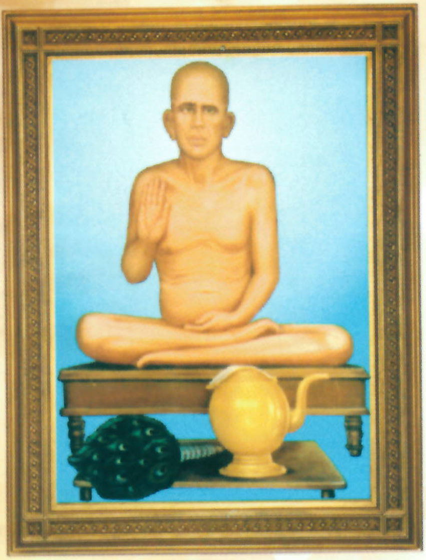

प.पू. 108 आचार्य श्री आदिसागरजी महाराज (अंकलीकर)

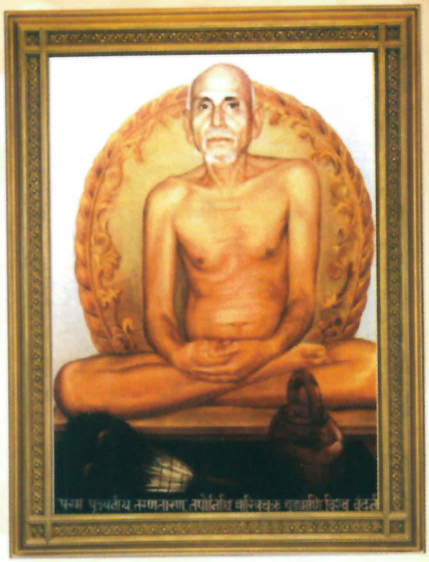

प.पू. 108 आचार्यश्री महावीर कीर्तिजी महाराज

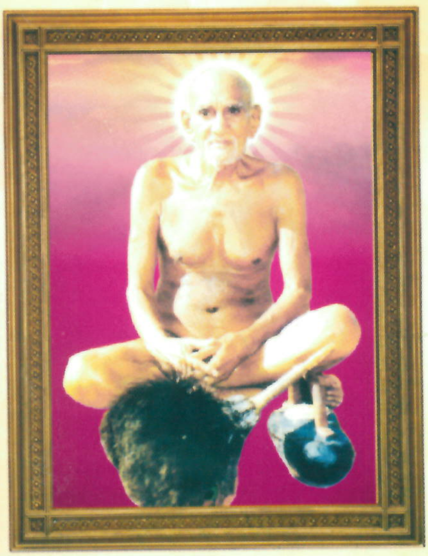

प.पू. 108 आचार्यश्री विमलसागरजी महाराज

प.पू. 108 आचार्यश्री सन्मतिसागरजी महाराज

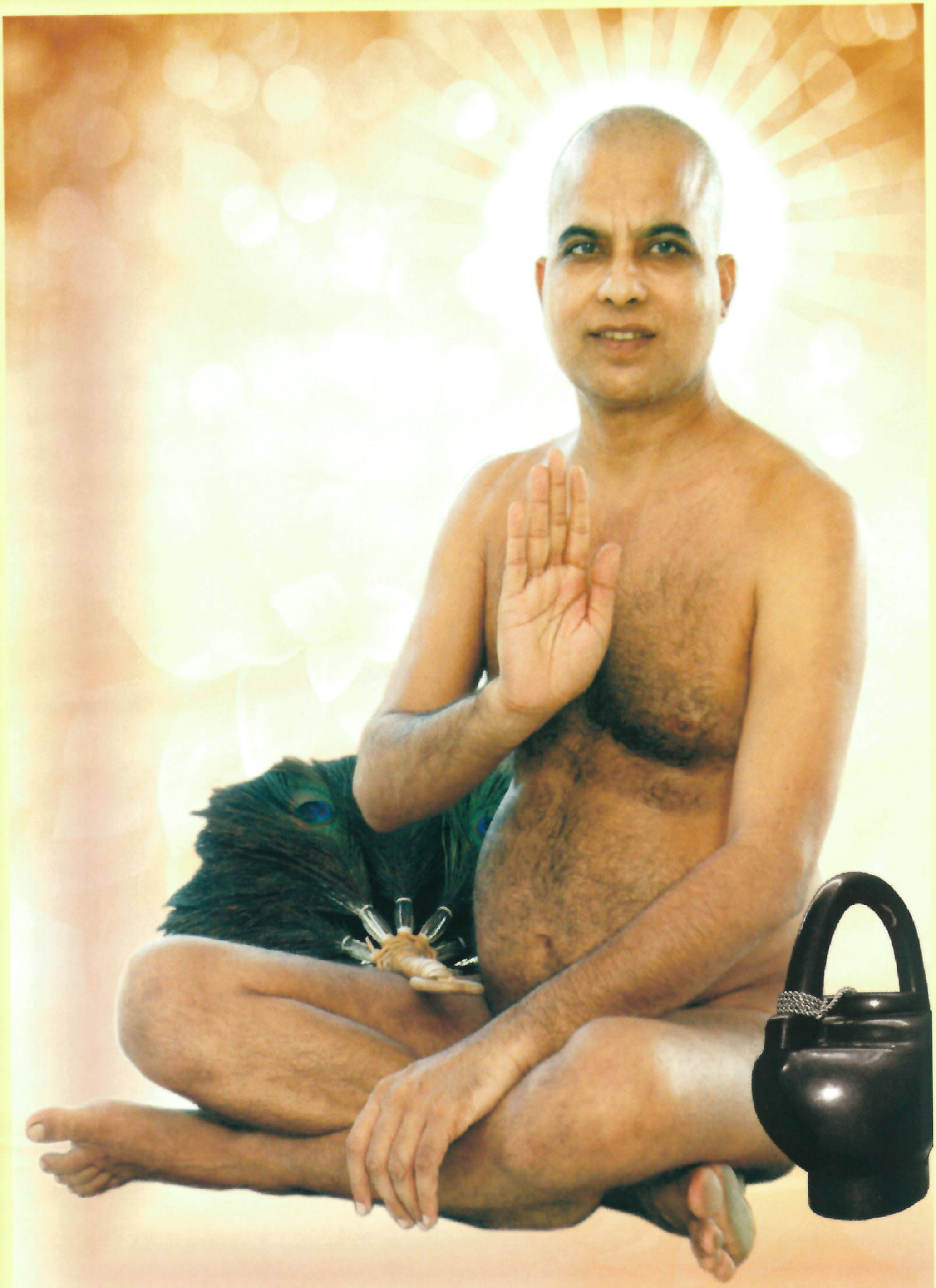

परम पूज्य गणाचार्य श्री 108 विरागसागरजी महाराज

परम पूज्य श्रमणी आर्यिका श्री 105 विदक्षा श्री माताजी

सद्ज्ञान - देशना

- प्रवचन - कार -

परम पूज्य राष्ट्रसंत गणाचार्य श्री 108 ''विराग सागर'' जी महाराज

संकलन - संपादन

पू. श्रमणी आर्यिका श्री 105 ''विदक्षा श्री'' माता जी

कृति का नाम : "सद्ज्ञान - देशना"

प्रसंग : गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज के रजत आचार्य पदारोहण के अवसर पर

प्रवचन कार : परम पूज्य युगप्रतिक्रमण प्रवर्तक गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज.

प्रेरणा : पूज्यनीय श्रमणी आर्यिका श्री 105 विशिष्ट श्री माता जी

संकलन/संपादन : पूज्यनीय श्रमणी आर्यिका श्री 105 विदक्षा श्री माताजी

पुण्यार्जक (प्रकाशन) : श्रीमती उषा डोसी की स्मृति में श्री बसंतीलाल डोसी एवं परिवार

सहयोग राशि : 100/- (पुनः प्रकाशन हेतु)

प्रति : 1000, प्रथम आवृत्ति सन् 2016

मुद्रक : शुगन ग्राफिक्स 4-जी-11, ट्रेड सेंटर, कंचन बाग साउथ तुकोगंज, इन्दौर
मो.: 93021 25594

परम पूज्य गणाचार्य श्री 108 विराग सागरजी महाराज
का आशीर्वाद

धर्मभूमि-भारतदेश पावन एवं पवित्र इस-लिए है कि इसे तीर्थंकरों ने ऋषि मुनियों ने अपनी त्याग तपस्या एवं धर्मोपदेश द्वारा इसे निरंतर अभिसिंचित किया है, यही कारण है यह देश घी दूध का देश माना जाता था, एवं सोने की चिड़िया तथा शान्ति प्रिय देश माना जाता था. किन्तु आज पाश्चात्य संस्कृति से इतना अधिक प्रभावित होता जा रहा है कि वर्तमान में-हिंसा, झूठ, चोरी, डकैती, व्यभिचारी तथा अश्लीलता से भरे साहित्य एवं फिल्मों ने इस तरह से व्यक्ति को आकर्षित किया है कि जिससे-न्याय, नीति, चारित्र, धर्म, त्याग, जप, तप, व्रत, सेवा, और परोपकार का ह्रास होता है.

ऐसे समय में सत् साहित्य की महती आवश्यकता हो गई है, हमारे सिद्धान्त, अध्यात्म एवं शास्त्रों को सरल सुबोध वर्तमान परिवेश में समझाने की अत्यंत आवश्यकता है. इसी बात को ध्यान में रखते हुए हमारे महाराज व माताजीयों ने इस सेवा में प्रशंसनीय कदम उठाये हैं मेरा उन सभी को शुभाशीष...।

ॐ नमः

२०.०४.२५४२

'समर्पण की बूंदे'

अध्यात्म की शिला पर विराजित, आगम के गूढ़ रहस्यों के उद्घाटक, प्रज्ञा पुंज, प्राणी मात्र के हृदय को आकर्षिक करने वाले, जाज्वल्यमान प्रखर सूर्य, पू. पूज्य गुरुदेव गणाचार्य श्री 108 विराग सागरजी महाराज जो अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग में सतत् तल्लीन रहते हैं ऐसे पूज्य गुरुवर सदैव माँ सरस्वती की सेवा में संलग्न रहते हैं । पूज्य गुरुवर के मुखारविंद से सतत् मानव मात्र के कल्याणार्थ सद्वाक्यामृत झरते रहते है । उन प्रवचन मुक्ताओं का संकलन कर यह कृति 'सद्ज्ञान-देशना' तैयार की गई है । पूज्यनीय श्रमणी आर्यिका विशिष्ट श्रीमाताजी की प्रेरणा से प्रवचनों के संकलन व संपादन का श्रेयस्कर कार्य पूज्यनीय श्रमणी आर्यिका विदक्षा श्री माताजी द्वारा किया गया हैं । जो कि अत्यंत श्लाघनीय है ।

गुरु सेवा का सौभाग्य जिस शिष्य को प्राप्त हो जाता है सरस्वती की कृपा भी उसी पर बरसती हैं । 'सद्ज्ञान देशना' कृति में पूज्य गुरुदेव ने समय-समय पर आध्यात्मिक, समाजिक, पारिवारिक, अधिभौतिक आदि विषयों पर जो प्रवचन दिये हैं उन्हीं का इस कृति में संकलन हैं । कृति को आद्योपांत आलोडन करने के उपरांत मैंने पाया कि पूज्य गुरुदेव का ज्ञान उन सूक्ष्म विषयों को भी स्पर्श कर जाता है जिन पर हम दृष्टि भी नहीं ले जा पाते, वैज्ञानिक दृष्टि से जैन धर्म की व्याख्या, परिवार में रहते हुए अपने-अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह, संस्कृति रक्षक संस्कारों पर सुन्दर विवेचन, कर्म सिद्धान्त के दर्पण में पांच संवायों से कार्य सिद्धि, दही भक्ष्याभक्ष्य विचार आदि विषयों की सुन्दर व्याख्या पढ़कर मन आनंदित हो जाता है ।

ऐसे प्रज्ञा संपन्न आचार्य भगवन् को पाकर मेरा जीवन धन्य हुआ हैं ।

हमारे पूज्य गुरुदेव अपने कुशल आचार्यत्व का निर्वाह करते हुए अनेकानेक भव्यात्माओं को मुक्ति पथ का पथिक बना चुके हैं । अपने उसी आचार्यत्व का पालन करते हुए 25 वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं जो हम शिष्यों के लिए अति हर्ष व आनंद का विषय है । इस अवसर पर हम शिष्य पूज्य गुरुदेव के लिए भगवान् से यही प्रार्थना करते हैं कि हमारे गुरुवर की कीर्ति दशों दिशाओं में व्याप्त हो वे तीर्थंकर के पद पर प्रतिष्ठित होकर हमें अपने समवशरण में स्थान दें ताकि हम भी उनके चरणों की सेवा कर मुक्ति श्री का वरण करें । आप स्वस्थ व दीर्घायु हो इन्हीं प्रशस्त, मंगल, शुभ भावनाओं के साथ - श्री गुरु चरणों में...

त्रय भक्ति पूर्वक -
नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, नमोऽस्तु

आपकी आज्ञानुवर्तिनी शिष्या
- श्रमणी आर्यिका विदूषी श्री

'आस्था के सुमन'

अपने नाम के अनुरूप समाज को वीतरागता की ओर अपने चारित्र व श्रुतज्ञान के माध्यम से प्रेरित करने वाले प्रातः स्मरणीय परम पूज्य गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज की परम विदूषी शिष्या परम पूज्य श्रमणी आर्यिका श्री 105 विदक्षा श्री माताजी जो सतत् ज्ञानार्जन में निरत रहते हुए श्रद्धालु श्रावकों को धर्म अध्ययन कराती रहती हैं । पूज्य माताजी अपने नामानुसार वि+दक्षा विशेष दक्ष हैं वे विशेष ज्ञान को धारण करते हुए अपने विशिष्ट सम्यग्ज्ञान को समाज में प्रसारित कर, गुरु द्वारा प्रदत्त नाम को सार्थक करते हुए अपने आर्यिका पद को सुशोभित कर रही हैं ।

बड़ी प्रसन्नता हैं आपने उसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए गुरु को समर्पित 'सद्ज्ञान-देशना' प्रवचनों की पुस्तक का संकलन व संपादन किया हैं जो कि अल्पकाल में ही प्रकाशित होने जा रही हैं । पुस्तक में समय-समय पर आचार्य श्री द्वारा सामाजिक, धार्मिक, पारिवारिक विषयों पर दिये गये कुल 50 प्रवचनों का संकलन हैं जो श्रावकों पाठकों के परिणामों को विशुद्ध बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायेंगे । निश्चित ही इस कृति से अज्ञ जनों को सद्ज्ञान की प्राप्ति होगी ।

परम पूज्य माताजी से हम अपेक्षा करते हैं कि वे अपने प्रखर-प्रज्ञा के माध्यम से भविष्य में भी स्व-पर का भेद कराने वाली ऐसी अमूल्य निधियाँ समाज को देती जावें जिससे छद्मस्थ जीव अपना आत्म-कल्याण कर सकें ।

अंत में, इन पवित्र भावनाओं के साथ कि औरों को सन्मार्ग में लगाने वाली - हे परम पूज्य श्रमणी आर्यिका विदक्षा श्री माताजी आपका चुना मोक्ष मार्ग का रास्ता छोटा हो, रास्ते पर परीषहों के कांटे कम हो, पर्याय का शीघ्र छेदन हो, मोक्ष मार्ग पर आपकी विजय हो व सिद्धालय में वास हो ।

साथ ही परम पूज्य प्रातः स्मरणीय गणाचार्य श्री 108 विराग सागरजी महाराज के रजत आचार्य पदारोहण पर उनके चरणों में कोटि-कोटि वंदन करता हुआ यही भावना भाता हूँ कि आप समाज के सभी हीरे-मोतियों को एकत्रित कर हमारे कल्याणार्थ श्रमण, श्रमणी रत्न प्रदान करते रहें । इसी सद्भावना के साथ माताजी के चरणों में वंदामि, वंदामि, वंदामि ।

आचार्यश्री के चरणों में नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, नमोऽस्तु ।

चरण सेवक

- श्री इंद्रजीत मंडलोई

(मैनेजर, बाबनगजा जी सिद्ध क्षेत्र)

- संपादकीय

"आस्था का दीप"

"णाणं नरस्य सारो" ज्ञान की प्राप्ति ही इस मनुष्य जीवन का सार हैं । ज्ञान से ही मनुष्य शोभा पाता हैं । जब तक सच्चा ज्ञान आत्मा में उत्पन्न नहीं होता तब तक अज्ञानी प्राणी राग-द्वेष की वैतरणी में गोता खाता रहता है और चतुर्गति संसार के अनेकानेक दुःखों को सहता रहता है श्री गुरुओं के हृदय में प्राणी मात्र के हितार्थ निरंतर निर्मल भावनाएँ उठती रहती है और वे उनके कल्याणार्थ हितोपदेश देते रहते हैं । इसी शृंखला में हमारे प.पू. प्रातः स्मरणीय गुरुदेव गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज है जो अपनी मंगल पीयूष वाणी के माध्यम से प्राणी मात्र के हितार्थ उपदेश देते रहते है पूज्य गुरुदेव अध्यात्म, आगम, न्याय, नय, सिद्धान्त के मर्मज्ञ विद्वान हैं अतः उनकी ज्ञानधारा से निरंतर आगम रहस्य प्रस्फुटित होते रहते हैं । गुरुवर ने समय-समय पर अनेकानेक विषयों पर अपने संबोधन दिये । जिन्हें सुनकर मेरा मन गद्‌गद् था सोचा गुरुवर की इस पीयूष देशना को जनजन तक पहुँचाना चाहिए ताकि प्राणी मात्र जैनधर्म के सिद्धान्तों को समझ सकें । गुरुवर की भाषा-शैली सहज, सरल, सुबोध व सुस्पष्ट हैं जो सीधे ही पाठक के हृदय में उतर जाती हैं पूज्यनीय श्रमणी आर्यिका विशिष्ट श्री माता जी की प्रेरणा से मैंने पूज्य गुरुदेव के समय-समय पर विविध विषयों पर हुए प्रवचनों का संकलन प्रारंभ किया पश्चात् संपादन कार्य भी संपन्न किया ।

इस कार्य को करते हुए मन अपूर्व आनंद से सराबोर था क्योंकि ऐसा लग रहा था संपूर्ण जिनागम का सार मिल गया हैं, मुझे आशा है कि पाठकों को यह कृति मील का पत्थर साबित होगी । जिसमें गुरुदेव ने अपने प्रवचनों के माध्यम से गागर में सागर भर दिया है ।

मेरा परम सौभाग्य है कि इस कृति का संकलन व संपादन करने का परम सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ हैं । मैं इसी तरह पूज्य गुरुदेव व जिनवाणी माँ की सेवा का सौभाग्य निरंतर प्राँप्त करती रहूँ यही प्रार्थना हैं ।

अंत में प्रातः स्मरणीय, न्याय-भास्कर, युग प्रतिक्रमण प्रवर्तक वात्सल्य-रत्नाकर, विश्व हितैषी, राष्ट्रसंत गणाचार्य श्री 108 विराग सागरजी महाराज पूज्य गुरुदेव के 25वें रजत आचार्य पदारोहण वर्ष की शुभ बेला में उन्हें हार्दिक शुभकामनाएँ देती हूँ । और वीर प्रभु से प्रार्थना करती हूँ कि हे भगवन् ! हमारे पूज्य गुरुदेव का रत्नत्रय दिन दूना रात चौगुना वृद्धि को प्राप्त हो व उनकी यश पताका दिग्दिगन्त में व्याप्त हो । और पूज्य गुरुवर की असीम अशीषानुकंपा से मैं भी जीवन के अंतिम लक्ष्य निर्वाण श्री का वरण करूं ।

पुनः पूज्य गुरुदेव के पावन चरण कमलों में, त्रयभक्ति पूर्वक त्रकाल नमोऽस्तु-3कोटिशः नमन्

गुरु चरणानुरागी

- श्रमणी आर्यिका विदक्षा श्री

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	विषय	पेज नं.
1.	राग छोड़े विराग को पाओ	09
2.	सुख पाने का अमोघ उपाय	12
3.	अंतर दीप जलाओ	15
4.	हम पाने चले जिसे नहीं पाया कभी	16
5.	मन से पुकारो परमात्मा चले आयेंगे	19
6.	तुम तो लखपति हो	21
7.	पाना है वह जो कभी नहीं पाया	23
8.	जिओ मगर होश में	26
9.	अपना रास्ता स्वयं बनाओ	28
10.	मानव पर्याय को सार्थक करो	30
11.	रमता जोगी बहता पानी	33
12.	संतरे जैसे होते है संत	34
13.	धर्म पचपन में नहीं बचपन में करो	37
14.	पुण्य क्षणों को पुण्य में ही लगा दो	39
15.	मंथन से मिलते मोती	42
16.	मत भूलो तुम माँ को	45
17.	निर्ग्रंथों की महिमा अपरंपार	49
18.	एक महान व्यक्तित्व	52
19.	क्षुधा परीषह जय	55
20.	प्रज्ञा परीषह जय	58
21.	रोग परीषह जय	60
22.	यज्ञोपवीतः आज की नहीं प्राचीन परंपरा	63
23.	वात्सल्य पर्वः रक्षा बंधन	69
24.	व्यसन (How to leave bad habits)	77

25.	व्यसन मुक्ति : अभियान है संस्कृति के लिए वरदान	78
26.	व्यसन है विष बेल	82
27.	व्यसन है मृत्यु के द्वार	85
28.	अहिंसा एवं शाकाहार	90
29.	करो अहिंसा का शंखनाद	94
30.	Mother's day मनाये सुसंस्कारों के साथ	97
31.	मैं तो आत्मा का डॉक्टर हूँ	99
32.	महावीर जयंती	103
33.	संस्कृति व संस्कारों में समाज की अहम् भूमिका	107
34.	शिक्षा और संस्कार	111
35.	हम और हमारे कर्त्तव्य	115
36.	संस्कृति रक्षक संस्कार	123
37.	धर्म और विज्ञान	127
38.	तनाव मुक्ति : साधना	132
39.	बेटी बचाओ - देश बचाओ	137
40.	भेद विज्ञान चर्चा में नहीं चर्या में हो ।	143
41.	कर्म सिद्धांत के दर्पण में ''पंच संवायों से कार्य-सिद्धि''	147
42.	''दही भक्ष्याभक्ष्य विचार'' (दही की मर्यादा)	152
43.	अंत भला सो सब भला	154
44.	आस्था से जगता धर्म आत्मा में	157
45.	हमें गौरव है हमारे धर्म पर	160
46.	दीक्षा कोई खेल नहीं	162
47.	जिनसे है पहचान हमारी ''हमारे धर्म-तीर्थ''	164
48.	हृदय- परिवर्तन का अनुपम दृश्य	169
49.	ये धरोहर पूर्वजों की है इसे संभालों	172
50.	प्रश्न डॉक्टरों के जबाब गुरुदेव के	174

राग छोड़ विराग को पाओ

(प्रवचन नं. 1)

> ★ *रागी जीव कर्मों को बांधता हुआ संसार में भटकता है जबकि वैरागी कर्मों से छूटता हुआ निर्वाण पद पाता है, मुक्त हो जाता है । अतः राग को छोड़ विराग भजो ।*

परम पूज्य आचार्य कुंदकुंद देव समयसार की 150 नं. की गाथा में कहते हैं-

रत्तो बंधदि कम्मं, मुञ्चदि जीवो विरागसंपत्तो
ऐसो जिणोवदेसो, तम्हा कम्मेसु मा रज्ज ॥150॥

ऐसो जिणोवदेसो अर्थात् अपनी जो बात आपको मैं सुना रहा हूँ वह जिनेन्द्र का उपदेश हैं । सामान्य व्यक्ति उपदेश देता है तो व्यक्ति कान लगाकर बैठ जाते है फिर यदि उपदेश साक्षात् सर्वज्ञ का हो तो फिर कहना ही क्या है ? जब कोई कहें कि मैं तुम्हें भगवान का उपदेश दे रहा हूँ तो मन गद्‌गद्, आनंदित हो जाता है । जैस आप अपने पूर्वजों की संपदा को संभाल-संभाल कर रखते है ठीक वैसे ही पूर्वाचार्यों ने भगवान महावीर स्वामी की देशना को संभाल-संभाल कर रखा है 2500 वर्ष प्राचीन देशना को संभालना कठिन कार्य है आचार्य कुंदकुदं देव कहते है कि सर्वज्ञ उपदिष्ट उस अमृत रस को मैंने संभाल कर रखा है । वह ''अमृत रस'' ऐसा अतिशय कारी है जो कभी खराब नहीं होता अपितु ज्यों का त्यों रहता है ।

लोग कहते है बड़ा दुर्भाग्य है जो आज साक्षात् तीर्थंकर देव के समवशरण में दर्शन नहीं हो रहे । बड़े-बड़े विद्वानों ने अपने काव्यों में अपने अंतस के दर्द को भरा है कि हे भगवन् ! मैं पापी हूँ जो ऐसे युग में जन्म हुआ जहाँ आपके साक्षात् दर्शन नहीं हो रहे । परंतु आज इतना तो सौभाग्य है कि साक्षात् तीर्थंकर की देशना हमें सुनने मिल रही है ।

प्रारंभिकता में प्राणियों का क्षयोपशम इतना था कि सर्वज्ञ की देशना को लिपिबद्ध नहीं किया जाता था । मौखिक ही जिनेन्द्र देशना प्रवाहित होती जाती थी । परंतु धीरे-धीरे क्षयोपशम घटता गया और फिर सर्वज्ञ की देशना को आचार्यों ने ग्रंथों में ग्रंथित किया ।

आचार्य कुंदकुंद देव कह रहे है- **'रत्तो बंधदि कम्मं'** राग से कर्म का बंध होता है राग क्या है ? तो वीतरागता जहाँ नहीं वही राग है । दोनों प्रतिपक्षी है यदि वीतरागता में सुख है तो राग में दुःख है वीतरागता में मुक्ति है तो राग में बंध है । वीतरागता स्वरूप में ले जाती है । और राग विभाव दशा

में ले जाता है । राग में अज्ञानता व वीतरागता में ज्ञान का प्रकाश है ।

राग में बाहर की आंख खुलती है तथा वीतरागता में अंतर नेत्र खुलते है । अंतरात्मा को धर्म दिखता है, स्वरूप दिखता है मिथ्यादृष्टि को धर्म नहीं दिखता है उसे तो पौद्गलिक वस्तुएँ दिखती है । आत्मा को देखने के लिए अंतर चक्षु खोलना पड़ते है । यदि बाहर देखोगे तो अंदर की वस्तु नहीं दिखेगी और अंदर में देखोगे तो बाह्य जगत नहीं दिखेगा । एक बच्चे की दृष्टि एक बार वीतराग परमात्मा पर पड़ी । वह अपनी माँ से बोला- माँ ! माँ ! बताओं भगवान देखते क्यों नहीं । माँ बोली भगवान को जो देखना था सब देख लिया अब कुछ भी देखना बाकी नहीं रहा, संसार को देख-देख कर थक गये है । इसलिए उन्होंने अपनी आंखे बंद कर ली है । और वे यही उपदेश दे रहे है कि यदि तुम अंतर जगत के दर्शन करना चाहते तो बाह्य जगत से मुख मोड़ना होगा ।

श्री कृष्ण, पार्थ के सारथी बनकर रथ पर चले जा रहे थे । कुछ दूर ही चले होगे कि एक बीभत्स मृतक श्वान सामने पड़ा दिखा, अर्जुन की दृष्टि जैसी ही पड़ी उन्होंने अपनी आंखे बंद कर ली, मुख मोड़ लिया और बोले- श्रीकृष्ण ! रथ मोड़िए । श्री कृष्ण बोले- क्या हुआ पार्थ ! अर्जुन बोले- क्या आपको सामने मरा पड़ा कुत्ता नहीं दिख रहा, जिसके शरीर से अत्यंत दुर्गंध आ रही है । श्री कृष्ण जी कहते है यदि वह तुम्हें अच्छा नहीं लगता तो उसे क्यों देखते हो वह देखो जो देखने योग्य हो । देखों उस कुत्ते के दाँत कितने सुंदर है । जो देखने योग्य हो बस उसे ही देखना चाहिए ।

सभा में यदि प्रवचन चल रहा हो और पीछे से कही झगड़ने की आवाज आये तो हमारा ध्यान प्रवचन छोड़ झगड़े पर चला जाता है । जो सुनना चाहिए उस पर कान नहीं जा रहे और झगड़े पर जा रहे है । यानि जो सुनना चाहिए था वह नहीं सुन रहे तथा जो नहीं सुनना चाहिए था । वह सुन रहे है । हमारा सोच विचार चिंतन अच्छाईयों की ओर होना चाहिए । बुराईयों की ओर नहीं । महात्मा गांधी के तीन बंदर थे- (1) बुरा मत देखो एक आंखों पर हाथ रखे था वह कह रहा था बुरा मत देखो, दूसरा बंदर कानों पर हाथ रखे था । वह कह रहा था बुरा मत सुनो तीसरा बंदर मुख पर हाथ रखे था वह कह रहा था बुरा मत बोलो चौथा मेरा बंदर जो माथे पर हाथ रखे है वह कहता है- बुरा मत सोचो !

श्री कृष्ण जी भी पार्थ ! को समझाते है कि हे पार्थ ! तुम बुराई को मत देखो, अच्छाईयों पर अपनी दृष्टि ले जाओ । पूज्य आचार्य कुंदकुंद देव कह रहे है- राग धर्म से दूर ले जाता है, बुराईयों में उलझा देता है अच्छाईयों से दूर कर देता है । इसलिए राग करने से जीव कर्मो से बंधता है । इसीलिए महाराज कह रहे है राग मत करो ।

''मुञ्चदि जीवो विराग संपत्तो'' राग का विरोधी विराग है उस विराग को/वैराग्य को जो धारण कर लेता है वह धर्म धारण कर लेता है विरागी का मन व्यर्थ की गपशप में नहीं अपितु भगवान्

की पूजन, भक्ति, भजन में लगता है । संतों की सेवा में लगता है । विरागी धर्म की सदैव वृद्धि करता जाता है । इसलिए कर्मों से छूटता जाता है । जिसके जीवन मे विराग आ जाता है । उसे संसार के सारे रस नीरस लगने लगते है । एकमात्र धर्म का रस, भक्ति का रस शेष रह जाता है । और जीव कर्मों से छूटता हुआ निर्वाण को पाता है । क्योंकि विरागी के धर्म वृद्धि होती है और धर्मवृद्धि से ही उसकी समृद्धि होती जाती है । "**तम्हा कम्मेसु मा रज्ज**" इसलिए ऐसा राग हमें नहीं करना चाहिए तथा विरागरूप सम्पदा को संभाल आत्म हित में प्रवृत्त होना चाहिए ।

इसी भावना के साथ "1008 शांतिनाथ भगवान की जय"

सज्जनों के वचन अमृत से भी श्रेष्ठ -

जाग्रत्वं सौमनस्यं च कुर्यात्सद्वागलं परैः ।
अजलाशयसम्भूतममृतं हि सतां वचः ॥51॥

अर्थ :- सज्जन पुरुषों का वचन जाग्रति और उत्तम सहृदयता को करता है, बहुत कहने से क्या ? निश्चय से सज्जन पुरुषों का वचन जलाशय के बिना ही उत्पन्न हुआ अमृत हैं ।

(क्षत्रचूड़ामणी)

अस्थिर बुद्धि ही जीवन में बाधक -

देशकालखलाः किं तैश्चला धीरेव बाधिका ।
अवहितोडत्र धर्मे स्यादवधानं हि मुक्तये ॥54॥

अर्थ :- देश, काल और दुर्जन ये क्या करेंगे ? उनसे चलायमान बुद्धि ही मनुष्य के चरित्र को बिगाड़ देती है । इसलिए इस संसार में आत्मा के स्वभाव में स्थिर होना चाहिए । निश्चय से अपनी आत्मा के स्वभाव में स्थिर रहना मोक्ष प्राप्ति के लिए होता है ।

- क्षत्रचूड़ामणी

सुख पाने का अमोघ उपाय

(प्रवचन नं. 2)

★ जो स्वयं जीता है वह दूसरों को जीने देता है और जो दूसरों को जीने देता है वह सबका रक्षक बन परमात्म पद को पाता है।

★ सच्चा सुख इंद्रिय विषयों में नहीं अंतरात्मा में होता है।

एक विशाल वियावन जंगल में एक संत रहते थे । त्याग, तपस्या के बल से उन्हें अनेक सिद्धियाँ हो गई । जो भी भक्त आते वे उनके कष्ट हरण कर लेते थे । एक दिन एक भक्त आया और बोला- जो आपके पास आता है उसका दुःख आप दूर कर देते हैं परंतु जो नहीं आया उसकी भी दुःख भरी गाथा आप सुन ले तो बड़ा उपकार हो । महाराज बोले- क्या बात है ? वह भक्त बोला- प्रत्येक प्राणी दुःखी है उसके दुःख दूर कर दीजिए । संत बोले- मैं जानता हूँ और दुःख दूर भी करना चाहता हूँ परन्तु क्या करूँ दुनियाँ सुख चाहती ही नहीं, दुःख को ही चाहती है । वह भक्त बोला- संत जी, दौलतराम जी ने तो कहा है-

जे त्रिभुवन में जीव अनंत सुख चाहैं दुःख तैं भयवन्त ।

संत बोले- मैं सत्य कह रहा हूँ । कोई सुख चाहता ही नहीं यदि विश्वास न हो तो आज पूरे नगर में Announce करवा दो जो व्यक्ति जो चाहता हो एक चिट में लिखकर दे दें । सारे नगर के लोग घर में ताला लगा लगा कर आ गये और सुख चाहने वालों की लंबी लाईन लग गई । शिष्य ने गुरु से कहा गुरुदेव भक्तों की लंबी लाईन लगी है । सबकी लिस्ट मेरे पास ले आओ । संत ने कहा- सबसे और पूछ लो जो भी लिखना हो और अभी लिख सकते हो बाद में नहीं लिखने मिलेगा । लोगों ने कागज आगे पीछे से पूरा भर दिया । गुरु ने पुनः पूछा- दो पन्ने में dimand पूरी हो गई । यदि न हुई हो तो 1 दिन देता हूँ, और लिख लो । दूसरे दिन सब कापियाँ की कापियाँ भर ले आये । शिष्य ने कहा- गुरुदेव अब तो पूर्ति कर ही दीजिए । सबकी dimand की लंबी-लंबी list देखी गई । सबमें बड़ी-बड़ी मांगे थी । मुझे दुकान चाहिए, माल चाहिए, सोना चाहिए किसी ने कहा- कार, टी.वी., फ्रिज्र, कूलर चाहिए किसी ने कहा video camera, new कपड़े चाहिए । किसी ने लिखा मेरे रोग, दुःख दूर हो जाये, कमर दर्द ठीक हो जाए ।

सारी कॉपीयाँ बाची गई परंतु कहीं नहीं लिखा था कि हमें - सुख चाहिए । जिस धरा पर तीर्थंकर महावीर, राम, हनुमान जैसे महापुरुषों ने जन्म लिया उन्होंने एक मात्र सुख का ही रास्ता बताया है ।

परन्तु वह सुख इंद्रिय जन्य नहीं है । परन्तु ये दुनियाँ इंद्रिय सुखों को ही सुख मानती है तथा उन्हीं सुखों की चाहत रखती है- भगवान् ! मेरा पेट दर्द ठीक हो जाए, भगवान तो बड़े कृपालु है- तथाऽस्तु ! कर देते हैं परन्तु दूसरे दिन सिर दर्द करने लगता है, भगवान ! dimand पर dimand पूरी करते जाते हैं परन्तु मांग कभी पूरी नहीं हो पाती । भगवान कहते हैं- हे भक्त ! पौद्गलिक वस्तुओं में क्यों अटके हो । मांगना ही है तो ऐसा मांगो कि दुबारा मांगना बाकी ही न रहे । इंद्रियों के सुख मांगोगे तो भिखारी ही बने रहोगे । यदि भिखारी बनना पसंद न हो तो कुछ ऐसा मांगो जो तुम्हें रोड़पति से करोड़पति, कंकर से शंकर, पत्थर से परमात्मा बना दें ।

भगवान कहते हैं कि धर्म ही सुख का रास्ता है उसे अपना लो-

धर्मः सर्व सुखाकरो हितकरो धर्म बुधाश्चिन्वते ।
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः ॥

धर्म से ही सुख मिलता है । धर्म बिना सुख की कल्पना असंभव है । धर्म की चाबी से संपूर्ण सुखों के ताले खुल सकते हैं । धर्म की परिभाषायें बहुत सी दी गई है । कोई अहिंसा को धर्म कहता है, कोई चारित्र को, कोई दर्शन को, कोई दया को धर्म कहता है, तो कोई उत्तम क्षमादि धर्मो को धर्म कहता है । कोई प्रेम वात्सल्य को धर्म कहता है कोई मानवता को धर्म कहता है । जिस प्रकार डॉ. रोगी के रोग के अनुसार दवा की खुराक देते हैं । वैसे ही आचार्य भगवन् पात्रतानुसार धर्म की परिभाषा देते हैं । हिंसक के सामने अहिंसा धर्म की बात कहते हैं झगड़ालू को प्रेम ही धर्म है और जिसके पास मानवता न हो उसे मानवधर्म सिखाते हैं ।

अहिंसा धर्म पर जब हम दृष्टि ले जाते हैं तो महावीर भगवान ने सूत्र दिया- **"जियो और जीने दो"**

खुद भी जियो और ओरों को भी जीने दो । खुद जियो में बड़ा रहस्य भरा है खुद को दुनियाँ भूल जाती है सात अंधों की तरह हम दुनियाँ की गिनती कर लेते हैं परंतु स्वयं को भूल जाते हैं भगवान कहते हैं खुद को मत भूलो क्योंकि सात तत्वों में पहला तत्व-जीव तत्व, पहली द्रव्य-जीव द्रव्य है । पहला पदार्थ- जीवपदार्थ है । आत्मा की गिनती सर्वप्रथम होती है । इसलिए अपने स्वरूप को जानने वाला ही स्वयं जीता है । जो अपने स्वरूप से अनभिज्ञ परद्रव्यों में फंसा है वह जीवित होते हुए भी मृतक तुल्य है सम्यग्दृष्टि जीव संपूर्ण संसार में जीता है भोगों को भोगता है, कुटुम्ब परिवार के बीच रहता है वह जल से भिन्न कमल की तरह होता है । वास्तव में अपनी आत्मा को जानने वाला सम्यग्दृष्टि जीवित है जीता है । शेष मिथ्या दृष्टियों से भरा संसार मृतक ही है । जो स्वयं जीता है वही दूसरों को जीने देता है । क्योंकि जो आत्मा के अस्तित्व को जानता है वह प्राणी मात्र को अभय देता

है । स्वयं जीता है इसलिए ओरों को जीने देता है पानी की एक बूंद में वैज्ञानिक captain सर्वोसवी ने 36,450 जीवों का अस्तित्व बताया है । सम्यग्दृष्टि जीव छानकर पानी प्रयोग करता है विवेक से चर्या करता है और जीवों की रक्षा करता है । आज तो माँ ही भक्षक बन गई है यदि रक्षक ही भक्षक बन जाए तो शरणार्थी कहाँ जाएगा । जो दूसरों के प्राण हरण करें वह हत्यारा है परन्तु जो गर्भ में ही अबोध बालक का दम घोट दे वह पापी नहीं महापापी है ! और गर्भस्य शिशु को मारने वाला यति हत्या /संत की हत्या के पाप का भागी होता है । कहा जाता है- संत हत्या का कोई प्रायश्चित नहीं होता है ! किसी भी प्रकार से पाप धुल नही सकता । शास्त्र कहते हैं अपने बालक की हत्या करने वाली माँ को परभव में निःसंतान, कूकरी, डूगरी, शूकरी के रूप में जन्म मिलता है ।

किसी प्राणी की हत्या करने वाला क्रूर कहलाता है । और यदि माता में ऐसी क्रूरता आ गई तो माँ शब्द जो पवित्रता का प्रतीक है वह बदनामित हो जायेगा । दुनियाँ के प्राणी सुख चाहते हैं परंतु काम दुःख के करते हैं तो सुख कहाँ से हो । भ्रूण हत्या करने वाला पूजन, आहार दान का पात्र नहीं होता । भ्रूण हत्या करने वाले की अनुमोदना व प्रेरणा करने वाला भी उसी पाप का भागीदार बनता है । अतः कभी भूलकर प्रेरणा व अनुमोदना भी नहीं करनी चाहिए ।

जो स्वयं जीता है वह दूसरों को जीने देता है और जो दूसरों को जीने देता है वह सबका रक्षक परमात्मा पद को पाता है ।

इसलिए भगवान महावीर स्वामी के इस सूत्र को जीवन में अपना कर आप अपनी आत्मा को परमात्मा बनायें ।

इसी भावना के साथ- "1008 मुनि सुव्रत नाथ भगवान की जय"

अविकारी रहना ही योग्य है -

यौवनं सत्वमैश्वर्यमेकैकं च विकारकृत् ।
समवायो न किं कुर्यादविकारोऽस्तु तैरपि ॥ 52॥

अर्थ :- यौवन, सत्ता/अधिकार, धन वैभव इनमें से एक भी हो तो वह अज्ञानी मनुष्य को विकारी बना देता है, फिर इन सबका समूह मनुष्य को विकारी क्यों नहीं बनायेगा ? अवश्य बनायेगा; किंतु ऐसे निमित्त मिलने पर भी अविकारी रहना ही सज्जनों के लिए योग्य है ।

- क्षत्रचूड़ामणी

अंतर दीप जलाओ

(प्रवचन नं. 3)

★ *अंतर दीप जल जाये तो संपूर्ण अंधकार नष्ट हो जाता हैं।*

★ *दीप से दीप जलते जाते हैं। एक सम्यग्ज्ञानी, हजारों ज्ञानी पैदा कर देता है*

जीवन में दीपक होना चाहिए । वह भी जलता हुआ हो । प्रकाश यदि तुम्हारे पास है तो भटकोगे नहीं, गड्ढे में गिरोगे नहीं । प्रकाश का नाम है सम्यग्ज्ञान । बाहर का दीपक पौद्गलिक पदार्थों को प्रकाशित करता है जबकि सम्यग्ज्ञान पुद्गल व जीव आदि सभी द्रव्यों को प्रकाशित करता है । सम्यग्ज्ञान रूपी प्रकाश मात्र बाह्य पदार्थो को प्रकाशित नहीं करता अपितु सम्यक् पथ पर बढ़ने हेतु समीचीन दिशा भी प्रदान करता है । उस सम्यग्ज्ञान रूपी प्रकाश को जीवन में प्रदान करने वाले गुरु होते हैं । गुरु दीप प्रज्जवलन कर देते हैं अब उस सम्यग्ज्ञान रूपी प्रकाश को यथावत बनाये रखना अनिवार्य है । ज्ञान रूपी दीप में तप रूपी तेल भर दिया जाए तो आपका निर्वाण समीप समझना चाहिए। गुरु समीचीन दिशा देते हैं ।

ईर्ष्या-द्वेष, कषाओं की तीव्र तूफानी हवाएँ कहीं आपके दीपक को बुझा न दें । इसलिए दीपक को बुझने से बचाने के लिए गुरु उपदेश रूपी तेल भरते जाइए । गुरुजन/संतजन आपके नगर में आते हैं उनके सत्संग का लाभ अवश्य उठा लेना चाहिए । गुरु सत्संग से जो ज्ञान प्राप्त होता है वह ऐसा दीप प्रज्जवलित करता है जो कभी बुझता नहीं है इसलिए गुरु सत्संगति कर आत्मोंत्थान का पथ प्रशस्त करना चाहिए । गुरु उस दीपक की तरह होते हैं जो स्वयं व पर दोनों को प्रकाशित करता हैं । जो स्वयं धर्म से प्रभावित है, धर्मानंद में डूबा है, संसारिक माया, प्रपंच से दूर है । नित अपनी शुद्धात्मा के आश्रय से प्रसन्न चित्त है जो निज आत्म-रस का पान कर रहा है, जिसकी आत्मा स्वात्मानुभव गम्य हैं । वही हमारे आत्महित के सच्चे पथ को प्रशस्त कर सकता हैं । ऐसे सन्मार्गोपदेष्टा गुरु की प्राप्ति तीव्र पुण्योदय से होती हैं । ऐसे गुरु को पाकर अपने अंतर दीप को अवश्य प्रज्जवलित कर लेना चाहिए । जिसका अंतर दीप एक बार जल जाता हैं । मिथ्यात्व का अंधकार अज्ञानान्धकार फिर उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते । जिस प्रकार बिल्ली को दूर से देखकर ही चूहे भाग खड़े होते हैं । उसी प्रकार सम्यग्ज्ञान के प्रकाश में मिथ्यात्व, अज्ञान का अंधकार ठहरता ही नहीं है और आपके अंतर में जला वह दीप हजारों नये दीपकों को जलाने में भी निमित्त बनेगा । दीप से दीप जलते जाये और हम सब पाये अविनाशी मुक्ति धाम ।

इसी भावना के साथ- "महावीर भगवान की जय"

हम पाने चले जिसे नहीं पाया कभी

(प्रवचन नं. 4)

> ★ *आत्महित की साधना ही एक दुर्लभ है बाकी सब संसार की बाते सुलभ ही जानो ।*
>
> ★ *जिसका अंतर दीप जल चुका हैं। वही अमर पद को पाता हैं।*

परम पूज्य आचार्य कुंदकुंद स्वामी जिन धर्म के अध्यात्म के चमकते सितारे हैं । इस प्राणी का अनंत भवों में परिभ्रमण क्यों चल रहा है ? आखिर वह क्या है जिसके विषय में हम सोच नहीं पाये ? जिन धर्म पाया परंतु आत्महित नहीं कर पाये तो समयसार ग्रंथ में पूज्य आ. भगवन् गाथा 4 के माध्यम से कहते हैं-

सुदपरिचिदाणु भूया सव्वस्स वि काम भोगबंध कहा ।
एयत्तस्सुवलंबो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स ॥4॥

जब तक मोह के पर्दे छाये हैं, संसार शेष है । तब तक काम, भोग बंध की कथाओं में मन लगता है अनादि से सुनी, परिचय व अनुभव में आयी काम, भोग व बंध की कथाएँ ही हमें भाती है क्यों ? क्योंकि आत्मा पर संस्कार ही वैसे पड़े हुए हैं । भरी प्रवचन सभा में कहीं लड़ाई-झगड़ा होने लगे तो सारी जनता की दृष्टि उस ओर शीघ्र पहुँच जाती है और प्रवचन में माईक से कही जाने वाली तत्वचर्चा सुनायी नहीं देती ।

एक सज्जन बोले- महाराज ! माला फेरने बैठता हूँ तो दुकान, मकान ही नजर आते हैं ऐसा क्यों ? मैंने कहा अनादि के संस्कार जो आत्मा पर पड़े हैं वे ही प्रेरणा करते हैं बच्चों को film के Actors और क्रिकेटर्स के नाम शीघ्र याद हो जाते हैं और भगवान का नाम याद नहीं होता ।

पूज्य आचार्य कुंदकुंद देव कह रहे हैं- अनादि से कामादि की कथाओं का कचरा जो तुम्हारे मस्तिष्क में भरा है पहले उसे साफ कर लो । जैसे-जैसे कचरा हटाओगे पात्र स्वच्छ हो जाएगा फिर उसमें जिनागम का अमृत भरा जा सकेगा । तीर्थंकर भी पहले हमारी तरह ही थे परंतु प्रबल पुरुषार्थ के बल से कर्मों का क्षय व निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं ।

परंतु हम पुरुषार्थ करने की वजह सोते रहते हैं । एक माँ मेरे पास आयी बोली- महाराज ! मेरे बेटे का नामकरण कर दीजिए । मैंने कहा- किस अक्षर से बोली 'क' से । मैंने कहा- कुंभकरण रख दो । बोली- क्या कह रहे हैं महाराज ! कुंभकरण कोई दूसरा नाम बता दीजिए । मैंने कहा कुंभकरण

में क्या बुराई है । बोली- महाराज ! नहीं-नहीं दूसरा ही बता दीजिए । मैंने कहा- वह तो तद्भव मोक्षगामी था । फिर क्या बुराई है । वह माँ बोली- महाराज ! वह 6-6 महीने सोता था । अच्छा ! तो क्या आप जाग रहे हैं ।

यह भूल है हमारी कि हम अपने आपको जाग्रत मानते हैं । अनादि काल से काम, भोग, बंध में ही जाग्रत हैं । और आत्महित के विषय में सोये हुए हैं । कहा जाता है-

जो सोवत है सो खोवत है ।

जो जागत है सो पावत है ॥

जो सोता है वह खोता है । जो जागता है वह पाता है । जो आत्महित के विषय में जाग्रत है । वही स्वभाव को प्राप्त कर पाता है । भगवान दुनियाँ भर की बातें सुन-सुन कर इतने थक चुके हैं । कि अब कुछ भी सुनना बंद कर दिया और शांति से बैठ गये हैं ।

अनादि काल के कुसंस्कारों से हमारा परिचय है । इसलिए बार-बार सहजता में आ जाते हैं, हिंसा, झूठ व चोरी सिखाने के स्कूल नहीं होते । व्यक्ति बिन सिखाये बुरी बातें सीख जाता है । संसार की बातें सुलभ हैं । परंतु अपनी एकत्व विभक्त आत्मा के विषय में सुनना, परिचय पाना व अनुभव करना अत्यन्त दुर्लभ है ।

जिस प्रकार गांव की भाषा में बात करने वाला जब वह शहर पहुँचता है तो संकोच लगता है । तब हिंदी भाषा के लिए तरसता है । मुझे भी यह भाषा सीखनी है ठीक उसी प्रकार सब पाना सुलभ है परंतु आत्महित के पथ को पाना दुर्लभ है । जब भगवान महावीर का समवशरण विपुलाचल पर्वत पर आया था । तब राजा श्रेणिक राजगृही से विपुलाचल पर्वत पर आत्महितार्थ तत्व का उपदेश पाने चल देते हैं ।

सम्यग्दृष्टि जीव आत्महित की बातों को सुनने तरसता है जब आत्महित, तत्वचर्चा सुनने मिल जाती है तो उसका मन मयूर नाच उठता है । हंसना, ताली-बजाना यह बाह्य क्रिया है परंतु धर्म से होने वाला आल्हाद मात्र तन को नहीं मन को प्रसन्न करने लग जाए तो समझ लेना सच्चा धर्म आपके अंदर प्रवेश कर चुका है । धर्म निष्ठा होने पर कर्तव्य पथ का पथिक व्यक्ति स्वयं बन जाता है ।

भरत चक्रवर्ती जिसकी 96,000 रानियाँ थी, 32,000 मुकुटबद्ध राजा सेवा में तत्पर रहते थे । 9 निधियाँ व 14 रत्न का स्वामी जिसके 1-1 रत्न की रक्षा 1000-1000 देवता करते थे । सभी रानियाँ में प्रमुख पटरानी सुभद्रा थी । जब चक्रवर्ती भोजन करने बैठता था तब सुभद्रा माता की तरह भोजन कराती थी । सुभाषितकारों ने पत्नि के अनेक रूप कहे हैं-

कार्येषु मंत्री, भोज्येषु माता, वचनेसु दासी, शयनेषु रंभा ॥

कार्य में पत्नि मंत्री है । तो भोजन के समय वह माता बन जाती है । भरत चक्रवर्ती भोजन को बैठते हैं । तो उसकी थाली में खीर परोसी गई सुभद्रा खीर ठंडी करती है । चक्रवर्ती ध्यान में लीन थे सुभद्रा इंतजारी में थी कि स्वामी का ध्यान पूरा हो तो भोजन परोसूं । कुछ देर बाद चक्रवर्ती नेत्र खोलते हैं । जैसे ही ध्यान पूरा होता है सुभद्रा पूछती है- स्वामी ! आप कहा थे ? चक्रवर्ती कहते हैं- इस तन को भोजन देने के पहले आत्मा को भोजन करा रहा था- आत्मा का वह भोजन ज्ञानरूपी अमृत है- "ज्ञानामृतं भोजनं" ।

भव्य बंधुओं ! हम बाहर के सुखों को खोजते हैं जबकि सच्चा सुख बाहर नहीं अपितु हमारी आत्मा में है । जैसे बादलों के हटते ही सूर्य का प्रकाश दृष्टिगोचर होता है वैसे ही कर्म रूपी बादलों के हटते ही आत्म सूर्य के दर्शन हो जाते हैं ।

भरत चक्रवर्ती कोई भी कार्य करते, सतत् अपनी आतमा को निहारते, अपने परम हंसात्मा को नहीं भूलते, सांसारिक कार्यो को करते हुए भी उपयोग सदैव अपने स्वरुप की ओर ही रहता था । एक बार जब भरत के 100 पुत्र वैराग्य उत्पन्न हो जाने से जिनदीक्षा ग्रहण करते है तब उनकी पत्नियाँ पुत्र वियोग होने से विलाप करती है और भरत चक्रवर्ती से कहती है कि स्वामी ! हम इतनी विलख रही है परंतु आपको किंचित् भी दुःख नहीं तब भरत चक्रवर्ती कहते हैं देवियों ! आपका तो अपना एक-एक पुत्र ही गया है मेरे तो 100 चले गये अतः मेरा दुःख तो आपसे 100 गुना अधिक हैं ।

अब आप सोच रहे होंगे कि इतने मोह में फंसा भरत चक्रवर्ती वैरागी कैसे तो बंधुओं ! तत्वज्ञानी की यह विशेषता होती है कि वह विपरीत परिस्थितियों के आने पर तत्व का आश्रय लेकर अपने परिणामों को व्यवस्थित कर लेता हैं । क्योंकि वह जानता है कि पर पदार्थों के कारण मैं आकुलित हो रहा हूँ उनका पाना सुलभ हैं । परंतु अपने एकत्व-विभक्त स्वरूप को पाना दुर्लभ हैं । अतः यत्नपूर्वक मुझे उसे ही पाना इष्ट है । इस प्रकार सतत् आत्माभिमुख वृत्ति के परिणाम स्वरूप ही दीक्षा लेने के अंतरमुहूर्त काल के अंदर ही भरत को कैवल्य प्रकट हुआ और वे मोक्ष चले गये । अतः हम भी अपने स्वरूप में प्रतपन करें व अंतरात्मा को जगाने का प्रयत्न व प्रयास करें ।

इसी भावना के साथ- "1008 भगवान महावीर स्वामी की जय"

--x--

मन से पुकारो परमात्मा चले आयेंगे ।

(प्रवचन नं. 5)

★ *भक्ति वह अमृत नीर है जो संसार ताप में जल रहे प्राणियों को शीतलता प्रदान करता हैं।*

★ *तन से भी गतिशील मन हैं। मन 1 मिनिट में हजारों लाखों कि.मी. की यात्रा कर लेता हैं। अतः उस पर नियंत्रण अनिवार्य हैं।*

सीमंधर महाराज अपने समवशरण में विराजे थे सब नर नारी हाथ जोड़े बैठे थे तभी भगवान ने धर्मवृद्धिऽस्तु का मंगल आशीर्वाद दिया लोगों ने सोचा ऐसा कौन है ? जिसे भगवन् ने आशीष दिया, तमिलनाडु की सुंदर पहाड़ियों पर बसा पोन्नूरमलय क्षेत्र जहाँ पर कुंदकुंद देव विराजे थे । उन्हें भगवान ने मंगल आशीर्वाद दिया, दो देवों ने जब यह देखा तो जिज्ञासावशात् वे आचार्य महाराज के पास गये और पूछा- भगवन् ! आप किसका स्मरण कर रहे हैं । आचार्य भगवन कहते हैं- आज मैंने निर्मल परिणामों से भाव सहित सीमंधर स्वामी का स्मरण किया हैं ।

बंधुओं ! तन से भी गति मन की अधिक है । मन की निर्मलता है तो परमात्मा भी पास है । यदि आप मंदिर में बैठे है और मन दुकान में चला गया तो आप मंदिर में होते हुए भी मंदिर में न होने के बराबर है । दूसरा एक वृद्ध व्यक्ति है जो स्वयं चलने में असमर्थ है परंतु दूसरों से मंदिर ले जाने की प्रार्थना कर रहा है वह अभी मंदिर तो नहीं गया परंतु उसका मन तो मंदिर चला गया । धर्म कहता है- मन जैसा होगा कर्मास्रव, बंध भी वैसा होगा ।

सारे गुणस्थान परिणामों पर निर्भर है बंध, संवर, निर्जरा के स्थान भावों पर निर्भर है । परिणामों की तरतमता पर कर्म बंधन निर्भर है । अपने परिणामों को या तो आप ही जाने या अवधि, मनः, पर्यय व केवल ज्ञानी जाने । मन की तरंगें हजारों, लाखों km. तक पहुँच जाती है । दोनों देवों ने कुंदकुंद महाराज को आशीर्वाद संबंधी बात सुनायी । देवों ने कहा भगवन् ! क्या आप समवशरण में विराजे भगवान् का दर्शन करना चाहते हैं ? महाराज बोले- चातक पक्षी की तरह प्यासा हूँ । देव बोले- भगवन् ! हम आपके प्रभु दर्शन की अभिलाषा पूर्ण करना चाहते हैं आप हमें सेवा का अवसर दें । महाराज ने जैसे ही तथाऽस्तु कहा देव ने महाराज को हाथ पर रखा व क्षण भर में समवशरण में पहुँच गये । वहां 500 धनुष की काया के मनुष्य थे । कुंदकुंद देव की काया छोटी थी । अतः वे उन मनुष्यों के बीच कीड़े की तरह थे । अतः अपनी रक्षा हेतू वे भगवान के सिंहासन के नीचे खड़े हो

गये । वह स्थान भी किसी विशाल पहाड़ से कम नहीं था । चक्रवर्ती वहां वंदना करने आया । जब उसकी दृष्टि कुंदकुंद देव पर पड़ी तो उसने सोचा यह कीड़े जैसा क्या है ? धीरे से उठाया और हाथ पर रख लिया । चक्रवर्ती ने भगवन् से प्रश्न किया- हे भगवन् ! आपके समवशरण में यह अद्‌भुत प्राणी कौन है ? भगवन् कहते है हे षड्‌खंडाधिपति ! ये भरत क्षेत्र के ख्याति प्राप्त प्रसिद्ध आचार्य कुंदकुंद हैं । जैसे ही चक्रवर्ती सुनता है श्रद्धा से नम्रीभूत हो जाता है । 7 दिन तक वे वहीं रहे व साक्षात् देशना सुनी । कुछ शिलालेख इस घटना को मानते हैं । कुछ आचार्य किंवदन्ती कहते हैं वहां से आकर कुंदकुंद देव ने 84 पाहुंड़ों की रचना की थी ।

आचार्य भगवन् ने हमें अध्यात्म का अमृत रस दिया है । बयाना में सीमंधन भगवान् है । आप परमात्मा की भक्ति कीजिए यदि भक्ति सच्चे मन से की जाती है । तो फलदायी होती है । जिन-जिन ने भी परमात्मा की भक्ति सच्चे हृदय से की हैं वे इतिहास में प्रसिद्धि को प्राप्त हुए । रत्नकरण्डक श्रावकाचार ग्रंथ में आचार्य समंतभ्रद महाराज कहते है- ''स्तवनात्कीर्ति स्तपो निधिषु'' अर्थात् तपोधनो का स्तवन करने से सर्वत्र कीर्ति होती हैं । फिर साक्षात् त्रिलोकीनाथ का स्तवन करने से यदि लोक में प्रसिद्धि हो जाए तो कोई आश्चर्य नहीं हैं । जब-जब हमारा मन परमात्मा भक्ति में डूबता हैं तब-तब संक्लेश स्थानों में कमी व विशुद्धि स्थान में वृद्धि होती हैं यही कारण हैं कि भक्ति के प्रभाव से कितने ही भक्तों के शारीरिक कष्ट, रोग, शोक, दुःख व विध्न बांधाएँ दूर हो जाती हैं । अड़तालीस तालों के अंदर कैद आचार्य मानतुंग महाराज जब आदीश्वर की भक्ति में डूबे तो पलभर में बंधनों से मुक्त हो गये तथा आचार्य वादीभ सिंह सूरि का कुष्ठ भगवान की भक्ति से पल भर में छू हो गया । आचार्य पूज्यपाद महाराज की आंखों की ज्योति चली गयी थी । परंतु जैसे ही वे शांतिनाथ भगवान की भक्ति में डूबे तो इतनी विशुद्धि बढ़ गई कि शान्त्यष्टक की रचना पूर्ण होते ही उनकी आंखों में ज्योति आ गई । इसलिए परमात्मा की भक्ति कर आप भी अपने जीवन को कृतार्थ करें ।

इसी भावना के साथ- "1008 भगवान महावीर स्वामी की जय"

"भक्ति ही भव से पार लगाती है,
भक्ति ही सम्यग्ज्ञान के दीप जलाती है ।
भक्ति करना कभी मत छोड़ना,
भक्ति ही भक्त को भगवान बनाती है ।"

तुम तो लखपति हो

(प्रवचन नं. 6)

★ *व्यक्ति अभाव की पूर्ति के लिए खून पसीना भी एक कर देता है, परंतु संतोष के अभाव में हाय-हाय कर अंत में मर जाता हैं।*

★ *अज्ञानी जो वस्तु पास नहीं उसके लिए दुःखी होता है परंतु जो वस्तु पास है उसकी कीमत नहीं करता।*

एक व्यक्ति मेरे पास आया, कुछ गिड़गिड़ाया, आंसुओं की धारा आंखों में थी, शरीर में कंपन था, हाथ जोड़कर बोला- भगवन् ! बड़ा गरीब हूँ । कृपा करें मैंने कहा गलत-तुम्हारे पास तो लाखों की संपदा है । वह आश्चर्य में पड़ गया, खाने को दाना नहीं महाराज कहते हैं लखपति हो । वह बोला- महाराज ! मेरा उपहास क्यों करते हो । मैंने कहा- सत्य कह रहा हूँ क्योंकि मेरे झूठ बोलने का त्याग है । वह बोला- आप रहस्य को खोले- मैंने कहा तुम्हारी kidney 5-10 लाख की है 1 पैर 20,000 का है, 1 आंख लाखों की है, हाथ लाखों के हैं । यदि सारे अंगों को बेच दो तो करोड़पति हो जाओगे, बोलो गरीब हो कि अमीर । वह दरिद्र समझ गया । मैंने कहा कि जिनकी आंखें नहीं होती वह कितना दुःखी होगा । जिसके पैर नहीं वह कितना दुःखी होता है तुम तो अपने स्वस्थ शरीर से परिश्रम कर लाखों कमा सकते हो ।

आज के संसार में व्यक्ति जो वस्तु पास नहीं उसके लिए तो दुःखी है परंतु जो पास है उसकी कीमत नहीं करता । जो है यदि उसकी कीमत की जाए तो अपनी कीमत कई गुना बढ़ा ले ।

व्यक्ति अभाव की पूर्ति में खून पसीना एक कर देता है परंतु संतोष के अभाव में हाय-हाय कर अंत में मर जाता है । आचार्य कहते हैं- इच्छाओं का कोई अंत नहीं है किन-किन इच्छाओं की पूर्ति करोगे ।

एक दरिद्र व्यक्ति घनघोर वर्षाकाल में नदी के किनारे लकड़ियाँ बटोर रहा था । अपनी खिड़की से उस राज्य की महारानी देख लेती है । सोचती है- शायद यह व्यक्ति हमारे राज्य का सबसे दरिद्र व्यक्ति है । तभी तो अपने प्राणों की परवाह किये बिना लकड़ियाँ बटोर रहा है । महारानी दया से भींगकर महाराज से उसकी दरिद्रता दूर करने हेतु प्रार्थना करती है । सिपाही उस दरिद्र को महाराज के पास ले जाते हैं । महाराज कहते हैं- हे दरिद्र ! बता तुझे क्या चाहिए, मैं तेरी दरिद्रता दूर करना चाहता हूँ । वह बोला महाराज ! मुझे और कुछ नहीं मात्र एक बैल चाहिए, जोड़ी पूरी करना है । राजा उसे अपने अश्तबल में ले जाता है और कहता है जो बैल चाहिए ले जाओ । वह कहता है मुझे आपके

बैल पसंद नहीं, मुझे तो मेरे बैल जैसा ही दूसरा बैल चाहिए । महाराज कहते हैं ठीक है लेकिन पहले तुम अपना बैल दिखाओ वह कहता है चलिए महाराज ! मेरे घर । महाराज उसका घर देख आश्चर्य में पड़ जाते हैं वह महाराज को तलघरें में ले जाता है । महाराज उसके तलघर में रखे हाथी, घोड़े, बैल सब देख आश्चर्य में पड़ जाते हैं क्योंकि वे सब सोने, चांदी व बहुमूल्य रत्नों के थे । एक बैल जो सोने का था सेठ जी को उसी की जोड़ी चाहिए थी ।

बंधुओं ! ऐसी ही दशा हमारी है ये चाहिए वो चाहिए बस चाहना ही चाहना है । प्रायः व्यक्ति अपना सारा जीवन संग्रह-संग्रह में गंवा देता है । एक अखबार में घटना देखने मिली कि चूहे के बिल में 40 किलो गेहूं मिले । परिग्रह संज्ञा 10वें गुणस्थान तक चलती है आयु सीमित है परंतु इच्छाएँ असीमित है । इसलिए इच्छा पूर्ति की कामना अविवेक है क्योंकि अग्नि में ईंधन जितना डालते जाओगे उतनी-उतनी बढ़ती जायेगी । इसलिए इच्छा पूर्ति की कल्पना व्यर्थ हैं ।

जिन पौद्गलिक पदार्थों की ओर संसार दौड़ रहा है । संत उन्हें छोड़कर वन की ओर भाग जाते हैं और इसलिए भगवान बन जाते हैं ।

संत तो कहते हैं- **''भावयं ण भावेमि अभावियं भावेमि''**

अभी तक जो भाया है जिसकी इच्छा की है मुझे अब वह नहीं चाहिए । जिन निर्मल आत्म भावों को, जिन गुण रूपी संपदा को नहीं भाया बस वहीं संपदा अब मुझे पाना है ।

भगवान महावीर स्वामी कहते हैं हे जीव ! मिथ्यात्व का विसर्जन कर सम्यकत्व का सृजन करो । मिथ्यात्व की रस्सी खोलो तब आपकी नाव (सम्यग्दर्शन) रत्नत्रय रूपी नाविक के बल पर उस पार हो जायेगी । भगवान आदिनाथ को जब वैराग्य हुआ तब वे सोचते है मेरे जीवन के 83 लाख वर्ष पूर्व व्यर्थ हो गये । परंतु अब मोक्ष का पुरुषार्थ करना है । बस ये परिणाम ही उनकी मुक्ति में हेतु बने । संवेग, अनुकंपा, आस्तिक्य, निर्वेग गुण, सम्यग्दर्शन के प्रकट होते ही उत्पन्न हो जाते हैं ।

जीवन में सम्यग्दर्शन उत्पन्न होते ही जीवन की दिशा व दशा दोनों बदल जाते हैं । अतः उसे ही पाने का प्रत्येक प्राणी को पुरुषार्थ करना चाहिए ।

इसी भावना के साथ- ''1008 महावीर भगवान की जय''

सज्जनों के वचन अमृत से भी श्रेष्ठ -

जाग्रत्वं सौमनस्यं च कुर्यात्सद्वागलं परैः ।
अजलाशयसम्भूतममृतं हि सतां वचः ॥5॥

अर्थ :- सज्जन पुरुषों का वचन जाग्रति और उत्तम सहृदयता को करता है । बहुत कहने से क्या ? निश्चय से सज्जन पुरुषों का वचन जलाशय के बिना ही उत्पन्न हुआ अमृत हैं ।

- क्षत्रचूड़ामणी

पाना है वह जो कभी नहीं पाया

(प्रवचन नं. 7)

> ★ *सुख का असीम सागर तो हमारे अंदर ही है पर हम उसकी खोज बाहर करते हैं। जो वस्तु जहाँ है ही नहीं वह वहाँ कैसे उपलब्ध हो सकती हैं।*

जिंदगी कुछ पाने के लिए मिली है । कुछ करने के लिए मिली है । कुछ बनने के लिए मिली है । परंतु पाना वह है जो अभी तक नहीं पाया, करना वह है जो अभी तक नहीं किया बनना वह है जो अभी तक नहीं बनें । परन्तु पाना, करना, बनना वह, जो पाना, करना, बनना उचित है । भागमभाग के जीवन में व्यक्ति का लक्ष्य समीचीन नहीं बन पाता । आज का समय तो वह है कि जिस घर में कार न हो वह घर बेकार है । बिना कार के काम ही नहीं चलता, मंदिर जाना हो तो कार, स्कूल जाना हो तो कार, ऑफिस जाना हो तो कार ! पर ध्यान रखो जिस कार के लिए तुम झगड़ते हो, जिसके लिए दिन रात एक करते हो । कार के नित नये Models निकलते जाते हैं और Comptition बढ़ता जाता है । अधिक पुरानी हो जाये तो आपकी कार रिटायर्ड हो जाती है । एक सज्जन मेरे पास आए और अपनी कार की महिमा गाने लगे । मेरा मौन था विहार चल रहा था जब मौन पूरा हुआ तो मैंने कहा तुम्हारी कार बेकार है । बे भौचक्के रह गये । आपको कैसे मालूम की मेरी कार खराब है मैंने कहा मेरे पास कार का Latest Model है इसलिए मेरी कार सर्वश्रेष्ठ है । मेरी कार का इंजन फेल नहीं होता । पेट्रोल नहीं खाती वे सोच में पड़ गये बिना पेट्रोल के कार । मैंने कहा मेरी कार में बैठने वाले का एक्सीडेंट कभी नहीं होता । अच्छा किस Company की है । क्या नाम है ? मैंने कहा अरिहंत Company की है । णमोकार जो इस कार में बैठता है वह उसे देश विदेश में नहीं भव सागर से पार उतार देती है ।

आज के वैज्ञानिक युग में वर्षो के काम मिनट में होते है । हजार व्यक्तियों का काम एक मशीन करती है । विकास तो हो रहा है प्रगति हो रही है परंतु इस पौद्‌गलिक विकास से शांति, सुख का स्तर बढ़ने की जगह घट रहा है । आज से कुछ वर्ष पूर्व जाकर देखें तो चक्की नहीं थी । हाथ से पिसाई होती थी व्यक्ति दो-दो चार-चार किलोमीटर से सिर पर पानी रखकर लाते थे । स्वयं कपड़े धोते थे । आज Washing machine है । रोटी बनाने वाली मशीन भी आ गई फिर भी अशान्ति है । आज रोग, बीमारियाँ का स्तर बढ़ गया है । आज दवाईयों का नाश्ता होता है । अशांति का स्तर बढ़ता जा रहा है जब हम गहराई से चिंतन करते हैं तो आज के पौद्‌गलिक विकास ने हमें अकर्मण्य बनाकर

अशांति का level बढ़ा दिया है । तीर्थंकरों के वैभव को देखें तो वर्णन करना संभव नहीं उनके गर्भ में आने के छः माह पूर्व से ही रत्नवृष्टि प्रारंभ हो जाती है ।

हमारी दौड़ मात्र पौद्गलिक पदार्थों तक है । बालू को पेल कर तुम तेल चाहते हो, पानी से मक्खन चाहते हो, हम भगवान की पूजन, अर्चना कर कर्तव्य तो कर लेते हैं पर भगवान क्या कर रहे हैं उस पर दृष्टि ही नहीं है ।

एक व्यक्ति ने एक सुंदर मंदिर बनाया एक वेदी बनायी उस पर परमात्मा के स्थान पर एक हाथ बनाया जिसमें एक अंगुली इशारा करती हुई थी । वेदी के नीचे लिखा था 'तुम मेरे संकेत को नहीं समझोगे अपितु अंगुली को ही मंजिल मान लोगे ।' हम भी sign board को ही मंजिल मान बैठते हैं sign board के direction का अनुसरण नहीं करते हैं ।

तुलसीदास जी ने एक भजन में लिखा है-

जल में मीन प्यासी रे, मोय सुन-सुन आवे हांसी रे ॥

एक राजा एक दिगम्बर मुनिराज के पास पहुंचा । बोला महाराज आप दया की मूरत हैं, कृपा निधान है । महाराज ने कहा क्या बात है ? भगवन् ! मैं सुख चाहता हूँ । बस वही पाने आपके पास आया हूँ । महाराज ने सोचा ये राजा Theory नहीं समझेगा अतः Practical से सिखाना पड़ेगा । महाराज ने कहा णमोकार की अराधना करो सब कुछ मिलेगा । ऋद्धि-सिद्धियाँ भटका देती है अतः संत उनसे विरक्त रहते हैं । राजा ने गुरु के निर्देशानुसार णमोकार की अराधना की । तभी वहां एक देवता प्रकट हो गया वह बोला- राजन् ! तुम्हें क्या चाहिए ? राजा ने कहा मुझे सुख चाहिए । देव ने कहा- पास में एक बड़ा तालाब है वहां एक मगरमच्छ रहता है वह तुम्हें सुख दे सकता है । तालाब के किनारे बैठकर णमोकार मंत्र पढ़ना मगरमच्छ आ जाएगा और तुम्हारी हर इच्छापूर्ति कर देगा । णमोकार सुनते ही विशाल काय स्वर्णमय मगरमच्छ आ गया । वह बोला भो राजन् ! तुमने मुझे याद किया । बोलो ! क्या चाहते हो ?

राजा ने जैसे ही कुछ कहना चाहा वह मगर बोला ठहरो ! मैं बहुत प्यासा हूँ बहुत प्यास लगी है । पहले एक लोटा पानी लाकर दो । पहले प्यास बुझाउगां फिर बात करूंगा ।

राजा कहता है-

जल में मीन प्यासी रे, मोहे सुन-सुन आवे हांसी रे ।

राजा ठहाका लगाकर हंस देता है मगर कहता है- हे राजन् ! तुम मुझ पर हंसते हो, मुझे तो तुम पर हंसी आती है ।

सुख का असीम सागर तुम्हारे अंतर घर में है और उसे खोजने इस छोटे तालाब में आए हो राजा

सब समझ जाता है उसे आत्म बोध हो जाता है अंतर चेतना जागृत हो जाती है । और वह दिगम्बर मुनि के पास लौटता है और प्रार्थना करता है कि हे गुरुवर ! मुझे सुख चाहिए इसलिए आप मुझे अपने जैसा बना लीजिए ।

हम भी ऐसी ही अज्ञानता में जी रहे हैं । संसार के क्षणिक सुख को वास्तविक सुख मान लेते हैं । सांसारिक सुख वास्तविक नहीं सुखाभास/मिथ्या है ।

जो संसार विषै सुख होता तीर्थंकर क्यों त्यागे ।

काहे को शिव साधन करते संजम सो अनुरागे ॥

भगवान महावीर कहते हैं भ्रम में मत भ्रमों । अन्यथा भव भ्रमण की करते रह जाओगे । संभलो, जागो, अज्ञान की निद्रा को तोड़ो ।

जो लौकिक चमत्कारों से प्रभावित नहीं हो उपकारी के प्रति संशय ना करें अन्यथा राह कौन दिखाएगा ? परीक्षा तो समय-समय पर होती ही रहती है, परीक्षा में सफल होना है तो उपकारी को नहीं भूलना । यदि प्रलोभन में फंसे तो मंजिल की चर्चा ही होगी, मंजिल मिल नहीं पायेगी । बहुत ऊंची वस्तु है । हम किसी के भाग्य व कर्म को नहीं बदल सकते । हर व्यक्ति का जीवन उसके भाग्य से चलता है । ना कोई कुछ देता है और ना कुछ लेता है । यह शाश्वत सिद्धान्त है इसे जीवन में उतार आत्महित पथानुगामी बनें ।

इस भावना के साथ- "1008 महावीर भगवान की जय"

सज्जनों का समागम तथा सम्मान करना उचित -

सज्जनास्तु सतां पूर्वं समावर्ज्याः प्रयत्नतः ।

किं लोके लोष्टवत्प्राप्यं श्लाघ्यं रत्नमयत्नतः ॥50॥

अर्थ :- कंकड़-पत्थर अथवा मिट्टी के ढेले के समान दुनिया में मूल्यवान और प्रशंसनीय रत्न प्रयत्न के बिना नहीं मिलते । अतः सज्जनों को प्रयत्नपूर्वक सज्जनों का समागम और सम्मान करना चाहिए ।

- क्षत्रचूड़ामणी

जियो मगर होश में

(प्रवचन नं. 8)

★ *परमात्मा के चरणों में जो सेवक । चरण दास बनकर जाता हैं । परमात्मा का द्वार उसके लिए सदैव खुला रहता हैं ।*

व्यक्ति जीवन तो जीता है परंतु पता नहीं क्यों ? एक बच्चे से पूछा जीना चाहते हो या मरना । जीना चाहता हूँ क्यों जीना चाहते हो, मैं पढ़ना चाहता हूँ, पढ़कर क्या करोगे, सर्विस करूंगा, सर्विस करके क्या करोगे ? पैसे कमाऊँगा, वह कमाकर क्या करोगे ? ऐसो आराम का जीवन जिऊंगा । उससे क्या होगा ? वह तो मालूम नहीं । व्यक्ति की बस दौड़ यहीं तक समाप्त हो जाती है । पैसों से ही जीवन चलेगा यह सत्य नहीं है । पैसों के बिना भी जीवन चल जाता है । आप दोनों हाथों से कमाते हो खून पसीना एक करते हो फिर भी एक हाथ से खाने की भी फुर्सत नहीं क्योंकि दोनों कानों में Mobile लगे हैं ।

संत एक भी हाथ से नहीं कमाते फिर भी दोनों हाथों से कर पुट में आहार लेते हैं । संतों के पास तो फूटी कौड़ी भी नहीं । एक नया पैसा भी नहीं फिर भी आपसे सुखी है । आपके पास पेट है पेटी है माल है पैसों के अंबार लगे हैं फिर भी दुःखी है । इसलिए अपनी परिभाषा को Change कर दीजिए । धन में नहीं धर्म में सच्चा सुख है ।

भगवान महावीर स्वामी कहते हैं व्यक्ति जीता चला जाता है परंतु पता नहीं क्यों ? एक व्यक्ति से मैंने पूछा तुम क्यों जी रहे हो । महाराज, मैंने कभी सोचा ही नहीं क्यों जी रहा हूँ । बिना लक्ष्य का जीवन बेहोशी का जीवन है । और बेहोशी का जीवन शराबी की तरह है । शराबी को कुछ होश नहीं होता कि मैं क्या कह रहा हूँ । शराबी नाली के पानी को ही गंगा जल समझता है । एक बार रात्री के समय वैय्यावृत्ति चल रही थी नीचे से आवाज आ रही थी हर-हर गंगे । मैंने लोगों से पूछा आवाज कहां से आ रही है । लोगों ने बताया कोई शराबी गटर में पड़ा है ।

बस बिना लक्ष्य का जीवन भी कुछ ऐसा ही होता है । जो बेहोश रहते है उनके लिए परमात्मा का द्वार सदैव ही बंद मिलता है । एक चक्रवर्ती भगवान के द्वार पर पहुंचा और दरवाजा खट-खटाया अंदर से आवाज आयी कौन है ? मैं षट्खंडाधिपति तीर्थंकर ऋषभदेव का ज्येष्ठ पुत्र भरत चक्रवर्ती हूँ । चक्रवर्ती के लिए यह द्वार नहीं खुलता । पश्चात् मण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वर, त्यागी, व्रती, पुजारी किसी के लिए द्वार नहीं खुला । अंततः सब थक कर हार कर पूज्य गुरुदेव विमल सागर जी के पास

पहुंचे । क्योंकि संत ही सन्मार्ग दिखाते हैं । वे परमात्मा के Agent होते हैं । Assistant होते हैं । कलेक्टर से मिलना है तो पी.ए. से सम्पर्क करो । परमात्मा से मिलना है तो उनके पी.ए. यानि संतों के पास जाओ । गुरुदेव ने कहा पहले अपने-अपने अहंकार के चश्मे को उतारकर रख दो । बेहोशी की भाषा का परित्याग कर दो । हम मूर्ख है, विद्वान है, अमीर है, गरीब हैं, चक्रवर्ती हैं ये भाषा बेहोशी की है । अतः होश में आओ परमात्मा के चरण सेवक बन जाओ । गुरु से समाधान लेकर पुजारी भक्त हूँ बस इतना कहते ही द्वार खुल गया । होश में जो रहता है वह परमात्मा के द्वार पर पहुंच जाता है । यह मानव जीवन तुमने पाया है तो प्रण करो कि होश में आकर परमात्मा के द्वार को अवश्य पाऐगें ।

धर्म का प्रारंभ प्रतिक्रमण से होता है । निंदा गर्हा जहां प्रारंभ होती है वहाँ परमात्मा दोनों दरवाजे खुले रखते हैं । हे भव्य ! यदि तुम मंदिर जी में प्रवेश की पात्रता रखते हो तो तुम अंदर आ सकत हो ।

अतः जीवन पाकर होश को जगाईये जीवन जीने का लक्ष्य निर्धारित कर लीजिए और धर्म के पथानुगामी बन जाईये । तभी सच्चा प्रतिक्रमण होगा और जीवन पापों से बच पुण्य का पथिक बनेगा ।

इसी भावना के साथ- "1008 महावीर भगवान की जय"

अस्थिर बुद्धि ही जीवन में बाधक -

देशकालखलाः किं तैश्चला धीरेव बाधिका ।
अवहितोऽत्र धर्मे स्यादवधानं हि मुक्तये ॥54॥

अर्थ :- प्रतिकूल देश, प्रतिकूल काल और दुर्जन मनुष्यों से तेरी क्या हानि होती है ? अर्थात् कुछ भी हानि नहीं होती । तेरी अस्थिर बुद्धि ही तेरे जीवन में बाधक है । अतएव आत्म स्वभाव में सावधान रहो । आत्मलीनता ही मुक्ति का कारण है ।

- क्षत्रचूड़ामणी

अपना रास्ता स्वयं बनाओ

(प्रवचन नं. ९)

> ★ *राग-द्वेष के ताने-वाने मन को उलझा देते है। फिर यह मन धोबी का कुत्ता बन जाता है। जिसे न घर मिलता है और न ही घाट।*

अपने जीवन का निर्माता जीव स्वयं होता है । जीवन के विनाशक भी तुम स्वयं हो । मोक्ष पथ को गुरु दिखा सकता है परंतु चलना तुम्हें स्वयं होगा । दूसरों का बनाया रास्ता तुम्हारे काम नहीं आएगा अपना पथ तुम्हें स्वयं बनाना होगा । व्यक्ति स्वयं ही पथ बनाता है और जैसे-जैसे आगे बढ़ता है पीछे का रास्ता मिटता जाता है । मंजिल पाते ही रास्ता पूरा मिट जाता है फिर दूसरा उस रास्ते पर नहीं चल पाता और अगर आपको मंजिल को पाना है तो अपना रास्ता स्वयं बनाना होगा । मार्ग तुम बनाओ और चले पत्नि संभव नहीं । मार्ग बेटा बनाए चले आप संभव नहीं ।

एक व्यक्ति मेरे पास आए बोले भगवन् ! बतलाइए मुक्ति का पथ कहा से प्रारंभ होता है ? किस तीर्थ से मोक्ष का रास्ता जाता है । बता दें वहीं से चलना प्रारंभ करूंगा । मैंने कहा वह रास्ता किसी तीर्थ से प्रारंभ नहीं होता । अपितु तुम्हारा लक्ष्य जब बन जाए तब तुम जहां हो वही से मुक्ति पथ प्रारंभ हो जाएगा ।

जब दुनिया को देखते हैं तो हर व्यक्ति का रास्ता अपना है । सारे रास्ते खुले हैं । सुख शांति के निर्झर बह रहे हैं अब निश्चित ही सबको सुख मिलेगा । परंतु जब मैं ये देखता हूँ कि रास्ता होते हुए कोई उस पर चलता नहीं हैं । सुख की वृष्टि होती है । परंतु एक अंश भी प्राणियों की झोली में नहीं जाता । व्यक्ति का जीवन दुःख व अशांति से पूरा भरा है । 24 घंटे में व्यक्ति मात्र 1 घंटे ही धर्म करता है । उसमें भी 1 घंटा पूरा धर्म ध्यान नहीं होता । क्योंकि मन चंचल है एकाग्रता नहीं रहती ।

कभी मन रिश्तेदारों में जाता है आंखें कभी मित्र को देखती है तो कभी पड़ौसी को । मन कहता है- बड़े दिनों बाद मिले है बात कर लूं । द्वेष कहता है अरे ये तो मेरा शत्रु है मन कहता है- निकलने दो बाहर अभी देखता हूँ ।

राग-द्वेष ने ताने-बाने बुने और मन को उलझा दिया । बेचारा मन धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का । न तो परमात्मा की भक्ति हो पायी न पूजा । दूध में घी की तरह जीवन में धर्म का Percentage बहुत कम होता है । maximum time राग-द्वेष आकुलता- व्याकुलता में जाता है ।

परंतु ध्यान रखे जितने क्षण तुम्हारे धर्ममय हुए हैं वे सार्थक है बाकी सब कुछ व्यर्थ । इसलिए अपने जीवन के हर क्षण को धर्म मय बनाने का प्रयत्न करें । मन को एकाग्र करें । भगवान महावीर स्वामी कहते हैं- हर पल सावधानता से धर्म करो । तो आपका जीवन बन जाएगा और आपके कदम वन की ओर गमन करने को आतुर हो जायेगें ।

मन को धर्ममय बना लेने से जीवन सुख शांति मय हो सकता हैं । जहाँ धर्म है वही सुख है और जहाँ धर्म नहीं वहाँ निरंतर आकुलता रूप दुःख ही दुःख हैं । धर्म हमारे अंदर निराकुलता को उत्पन्न करता हैं, धर्मात्मा के जीवन में सुख व शांति के निर्झर स्वयमेव फूटते लगते हैं । जीवन सरस लगने लगता हैं और व्यक्ति आनंद के सागर में निमग्न हो जाता है । अतः अपने जीवन में धर्म धारण करें क्योंकि उसी से आत्महित का पथ प्रशस्त हो सकता है ।

इसी भावना के साथ-"1008 भगवान महावीर स्वामी की जय"

तत्वज्ञान ही दुःख दूर करने का उपाय -

तत्वज्ञान जलेनाथ शोकाग्निं निरवापयत् ।
शैल्ये जाग्रति किं नु स्यादातपार्तिः कदाचन ॥60॥

अर्थ :- जैसे शीतलता के समय ऊष्णताजन्य दुःख कभी होता ही नहीं है; वैसे ही तत्वज्ञानरूपी जल से वियोगजन्य शोकरूपी दुःख शांत हो जाता हैं । अर्थात् तत्वज्ञानी को वियोगजन्य दुःख नहीं सताता ।

- क्षत्रचूड़ामणी

मानव पर्याय को सार्थक करो

(प्रवचन नं. 10)

★ *मनुष्य पर्याय दुर्लभ चिंतामणी रत्न है अतः इस मानव की पर्याय को पाकर आत्महित के कार्यों में लगना ही श्रेयस्कर है।*

दुनियाँ कहती है- देव बनना बड़ा पुण्य उदय है । परंतु आचार्य कहते हैं- देव से भी दुर्लभ मानव पर्याय का पाना है । देवता भी उस मानव पर्याय को पाने तरसते हैं । द्वादशांग के पाठी लौकोन्तिक देव जब तपकल्याणक के अवसर पर तीर्थंकर देव के वैराग्य की अनुमोदना करने पृथ्वी पर जाते है तो वे कहते हैं- हे भगवन् ! हमें एक बार मानव पर्याय मिल जाए तो तपश्चरण कर हम भी कर्मों का क्षय करेंगे । धन्य है भगवन् ! आपने संयम धारण करने का जो लक्ष्य बनाया है वह मनुष्य पर्याय की सबसे बड़ी उपलब्धी है ।

तुलसीदास जी कहते हैं-

बड़े भाग मानुष तन पावा, सुर दुर्लभ ग्रंथन में गावा ।

मनुष्य पर्याय दुर्लभ चिंतामणि रत्न की तरह होती है । किसी दरिद्र को चिंतामणी रत्न मिलने पर वह जैसे प्रसन्न होता है वैसे मनुष्य पर्याय व दुर्लभ संयम पाकर सम्यग्दृष्टि जीव खुश होता है । परंतु उस चिंतामणी रत्न की कीमत विरले ही प्राणी कर पाते हैं ।

एक दरिद्र गरीब व्यक्ति था रास्ते से जा रहा था, रास्ते में कुछ चमकते पत्थर दिखे उसने सोचा मेरे पास इतने पैसे नहीं कि बच्चों के लिए खिलौने खरीद सकूं, अतः इन्हीं चमकीले पत्थरों को बच्चों को खेलने दे दूंगा। वह थोड़ा ही आगे बढ़ा कि उसे सूखे वृक्ष पर कांव-कांव करता कौआ दिखा, उसने सोचा यह तो अपशकुन है अतः वह जेब से एक पत्थर निकालकर कौवे को मारता है परंतु कौवा नहीं उड़ता, एक-एक कर सारे पत्थर फैंक दिये, मात्र एक पत्थर जब शेष रहा जाता है तब कौवा उड़ जाता है और वह जब घर जाता है तो पत्नि पूछती है आज क्या कमाकर लाये हो । पति ने वह एक पत्थर दिखा दिया और कुछ नहीं । पत्नि सोचती है कि घर पर नमक नहीं है । वह सोचती है बाजार से ले आऊँ फिर भोजन पकाऊँगी, वह बाजार जाती है और पत्थर को अमीर लोगों के बच्चों को दिखाती है सोचती है ये बच्चे पत्थर पाने जिद करेंगे तो इनके माता-पिता खरीद लेगें । तभी एक जौहरी की दृष्टि पड़ती है वह कहता है- तू मुझे यह पत्थर दे दे मैं तुझे 50,000 रूपये दूंगा । इतनी

बड़ी रकम के बारे में सुनकर पत्नि सोचती है कि अवश्य ही यह कोई कीमती पत्थर है अतः कहती है इतने में न दूंगी जौहरी रकम बढ़ाता जाता है वह ना-ना करती जाती है । अंत में 1 लाख दीनार पर सौदा पक्का होता है । 1 लाख दीनारों में तो एक बड़ी पोटली भर जाती है जब इतना धन लेकर वह घर पहुँचती है तो पति कहता ये धन तू कहां से लायी । कहीं डाका डाला क्या ? पत्नि कहती है क्या तुम्हें मैं डाकू दिखती हूँ ? मैं तो आपका पत्थर बाजार में बेचकर आयी हूँ । पति जैसे ही पत्थर की कीमत देखता है तो सिर पीटता है भगवान् ! ऐसे तो जाने कितने पत्थर मैंने कौवे को भगाने में फेंक दिये ।

बस यही स्थिति उन अज्ञानी मनुष्यों की है जो मनुष्य पर्याय पाकर भी उसका सदुपयोग नहीं कर पाते । प.पू. आचार्य गुरुदेव विमल सागर जी कहते थे- तुम सब वासी खाते हो । वासा भोजन कब तक करोगे । शीघ्र समाप्त हो जायेगा इसलिए नया भी पकाओ । जिस प्रकार किसान-

बीज राख फल भोगवे ज्यों किसान जग माहीं ।
त्यों चक्री नृप सुख करें, धर्म विसारे नाहीं ॥

किसान बीज बचाकर उसे भोगता है यानि अगली फसल के लिए बीज बचा लेता है । वैसे ही आज यदि तुम कुछ पुण्य कार्य करोगे तो आगे काम आयेगा । एक पुण्यानुबंधी पुण्य होता है अर्थात् पुण्य के उदय में जो पुण्य कार्य किया जाता है । आज तुम्हें दो आंखें मिली है, पैर मिले हैं, कान मिले हैं, यह पुण्य के उदय से मिला है पुण्य उदय से आंखें मिली यदि प्रभु के दर्शन किये तो वे आंखें पुण्य कर्म के उपार्जन में निमित्त बनेगी । पुण्य के उदय से पैर मिले और तुमने तीर्थयात्रा कर ली तो पुण्य में पुण्य की कमायी कर ली । पुण्योदय से संत तुम्हारे नगर में आये और तुमने उनकी पूजा, भक्ति सेवा, आहार दान दिया तो पुण्य के उदय में पुण्य की कमाई कर ली । जो व्यक्ति मनुष्य पर्याय को पाकर संयम धारण करता है वह सबसे महाभाग है ।

प. दौलतराम जी कहते हैं- ''मुनि सकलव्रती बड़भागी''

महाव्रती मुनि ही बड़भागी है ।

आचार्य कहते हैं- अपनी शक्ति को न छिपाते हुए संयम को पालना महाभाग है ।

संत संयम की साधना के लिए अपना सारा जीवन न्यौछावर कर देते हैं और अंत में समाधि कर साधक जीवन रूपी मंदिर पर समाधि रूपी कलशारोहण करते है । सम्यक् सल्लेखना समाधि करने वाले संत उत्कृष्ट से 2-3 भव जघन्य से 7-8 भव में मुक्ति नियम से पाते हैं ।

भाव सहित भगवान की भक्ति करने वाला अच्छी समाधि करता है । संत मृत्यु को ललकारते हैं और तप, त्याग के द्वारा कर्मो को परास्त कर देते हैं। कल प. पू. आचार्य योगीन्द्र सागर जी ने मृत्यु

महोत्सव मनाया है । प. पू. तपस्वी सम्राट गुरुदेव सन्मति सागर जी महाराज के संघ में हम उनके साथ पड़े, लिखें व साधना की वे भूत प्रेतादि की बाधाओं को दूर कर देते थे । जैन जैनेतरों में श्रद्धा के केन्द्र थे । उनके शरीर में Suger बहुत बढ़ गई थी । डॉक्टरों ने पैर में घाव हो जाने से पैर काटने की सलाह दी । परंतु आचार्य श्री योगीन्द्र सागर जी बोले अब पैर नहीं कर्म कटेंगे । समाधि करूँगा ।

जिसमें कषायें कृश होती है वह सल्लेखना है । उन्होंने मुझे एक बार नमोऽस्तु भेजा मैंने कहा आप तो ज्येष्ठ हैं अतः प्रति नमोऽस्तु करें । वे बोले नहीं विराग सागर जी को मेरा बार-बार नमोऽस्तु कहना व कहना कि मुझे आशीर्वाद भी दें ।

मैं सोच रहा था कितनी लघुता व सरल परिणाम थे । यही कारण है कि उनकी अच्छी समाधि हुई हैं ।

''काय कषाय सम्यक् लेखनं सल्लेखना ।''

काय व कषाय का सम्यक् प्रकार लेखन जिसमें किया जाता है । वही सल्लेखना है । उन्होंने मानव देह पाकर आज अपनी पर्याय को सार्थकता प्रदान की है ।

आप सब भी ऐसा पुनीत लक्ष्य बनाकर आत्महित के पथानुगामी बनें ।

इसी भावना के साथ- ''1008 महावीर भगवान की जय''

धन से उन्मत्त जीवों का स्वरूप -

न श्रृण्वन्ति न बुध्यन्ति न प्रयान्ति च सत्पथम् ।
प्रयान्तोऽपि न कार्यान्तं धनान्धा इति चिन्त्यताम् ॥56॥

अर्थ :- धन से अंधे पुरुष आत्मा की उन्नति के सच्चे मार्ग को न सुनते हैं, न जानते हैं और न ही उस पर चलते हैं । कदाचित् सत्पथ पर चलें तो भी कार्य के अंत तक नहीं पहुँचते हैं; ऐसा धनिक पुरुषों के विषय में तुम विचार करो ।

\- क्षत्रचूड़ामणी

रमता जोगी बहता पानी

(प्रवचन नं. 11)

★ *नदी का जल बहता हैं इसलिए स्वच्छ रहता हैं। संत भी उस जल की तरह निरंतर विहार करते है, बहते रहते हैं इसलिए सदा स्वच्छ रहते हैं।*

नदी का जल बहता है इसलिए पवित्र रहता है । जबकि तालाब का पानी सड़ जाता है हरी काई लग जाती है । उसी प्रकार यदि संत एक ही स्थान पर रहे तो राग-द्वेष से युक्त हो जाते हैं । उनकी आंतरिक निर्मलता समाप्त हो जाती है-

इसलिए कहा जाता है- "**रमता जोगी बहता पानी**"

संतों का कोई मठ, मंदिर या कुटिया नहीं होती, वे तो पानी की तरह बहते रहते हैं, बस बहते रहते हैं इसलिए निर्मलता उनकी बनी रहती है । जिस प्रकार नदी का निर्मल जल स्वयं स्वच्छ है और दूसरों की प्यास को भी बुझाता है । उसी प्रकार संत नगर-नगर, डगर-डगर भ्रमण करते हुए धर्मवृष्टि करते रहते हैं । जिससे समाज हरी-भरी बनी रहती है । समाज में कभी सूखा नहीं पड़ता । जो समाज धर्म से हरी भरी है वह धनधान्य से सदा पूरित रहती है । रोग, दुर्भिक्ष कभी नहीं होता । जिनका पुण्य होता है उनके पुण्य प्रताप से संत रूपी नदी उनके नगर में, गांव में बहती चली आती है और उस नदी में स्नान करने वाले भी निर्मल होते रहते हैं । संतों के सान्निध्य को पाकर मन धर्म मार्ग में लगा रहता हैं । क्योंकि संत सत्पथ पर लगाने हेतु प्रेरक निमित्त होते हैं अरिहंत आज हैं नहीं, सिद्ध परमेष्ठी बोलते नहीं । फिर मोक्षमार्ग को कौन दिखाये तो मात्र तीन परमेष्ठी वर्तमान में हमारे बीच हैं - आचार्य, उपाध्याय एवं सर्व साधु ।

ये परमेष्ठी वह निर्मल नीर हैं जो हमारी धर्म रूपी भूमि को उर्वरा बनाता है । इनकी कृपा, इनका सान्निध्य व सेवा पूर्वोपार्जित पुण्य का ही सुफल हैं । जो महाभाग इनकी सेवा, भक्ति का सौभाग्य पाता हैं । वह शीघ्र ही भव सिंधु का किनारा पा लेता हैं । इसीलिए शास्त्रों में गुरु को तारण-तरण जिहाज कहा हैं वे स्वयं भी तिरते हैं व अपनी शरण में आने वाले को भी तार देते हैं । इनको पा कर मन अतिशय निर्मल हो जाता है परम विशुद्धि जगती है और विशुद्धि से ही कर्मो की निर्जरा व कर्म क्षय होते हैं ।

आप भी संत समागम पा अपने मन को निर्मल करें ।

इसी भावना के साथ-"1008 महावीर भगवान की जय"

संतरे जैसे होते है संत

(प्रवचन नं. 12)

★ ***संत संतरे की तरह खट्टे-मीठे होते हैं । आपके अनादि काल के कुसंस्कारों पर जब वे कुठाराघात करते हैं तो खट्टे लगते हैं । परंतु आत्महित के पथ को प्रशस्त करने से वे मीठे होते हैं ।***

नागपुर में हमारे प्रवचन का समय था । सभा लगी हुई थी । मंदिर के बाहर एक संतरे बेचने वाला बिक्री के लालच में घूम रहा था । मुख से एक ही शब्द बोले जा रहा था । संतरे... संतरे.... मेरा उपयोग उसके शब्दों पर गया, संतरे, संत रे मेरे मन में चिंतन चल रहा था- एक फल है और ऐसा फल है जिसमें 'संत' महत्वशाली शब्द जुड़ा है जैसे संतरा रसीला होता है, हर व्यक्ति उसे पाना चाहता है वैसे ही संत भी आत्म रस से परिपूर्ण सद्‌गुणों से भरे होते हैं । इसीलिए हर प्राणी संतों का समागम चाहता है ।

हिक्कं वक्कं हिययं

जो साधु हितकारी बोलते हैं, निर्दोष आहार चर्चा पालते हैं, जिनका हृदय पवित्र है । ऐसे रत्नत्रय की साधना में तल्लीन वे भगवान तुल्य माने जाते हैं । हिन्दुओं में भी गुरु महिमा गाते हुए कहा है-

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वराः ।
गुरुर्साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

गुरु को ब्रह्म, विष्णु, महेश कहा हैं उन्हें ही परम ब्रह्म कहा है । क्योंकि भगवान तो बोलते नहीं परंतु गुरु शिक्षा/ उपदेश देते हैं । इसीलिए कहा जाता है-

गुरु गोविन्द दोउ खड़े, काके लागू पाए ।
बलिहारी गुरुदेव की, गोविन्द दियो बताए ॥

गुरु व प्रभु दोनों सन्मुख हो तो पहले नमस्कार किसे करें ? तो पहले नमस्कार मंत्र मेंअरहंतों को नमस्कार किया गया है ।

जबकि 8 कर्मो को क्षय करने वाले सिद्ध परमेश्वर ज्येष्ठ हैं । परंतु नमस्कार अरहंत को पहले करते हैं । यदि अरहंत केवली गुरु न होते तो सिद्धों का परिचय कौन कराता । तो परिचय कराने वाला

ज्येष्ठ है, श्रेष्ठ है इसलिए पहला गुरु है । गुरु के पास पहुंचे बिना प्रभु तक नहीं पहुंचा जाता । गुरु से प्रामाणिकता प्राप्त करके ही प्रभु तक पहुंचा जा सकता है ।

संत समाज की बागडौर संभालते हैं इसलिए वे संतरे की तरह खट्‌मिट्ठे होते हैं थोड़े खट्टे और थोड़े मीठे । वे नारियल की तरह ऊपर से कठोर व अंदर से मुलायम होते हैं । संघ का संचालक, घर का मुखिया, देश का नेता, राष्ट्रपति सबको नारियल बनना पड़ता है । माँ को भी बच्चों का भविष्य बनाने के लिए नारियल बनना पड़ता है । महावीर की माँ रो-रोकर पुकार रही हैं । परंतु वैरागी को किसी के आंसु नहीं निज घर, निज वैभव दिखायी देता हैं । संत माँ की तरह होते हैं । माँ कभी कठोर तो कभी मुलायम हो जाती है । कभी संत मीठे होते हैं तो कभी खट्टे होते हैं । आहार चर्या में कुछ भी निकल आये तो कठोर बन अंजुलि खोल देते हैं । शिष्यों की शिक्षा, परिचर्या पलवाने में गुरु कठोर हो जाते हैं । जब बच्चा पाठ याद नहीं करता और गुरु डंडा लगाते है । तो खट्टे लगते हैं परंतु उसी समय हमारे हित का सोचने वाले होने से मीठे भी हैं । यदि गुरु डंडा न लगाते तो मैं पढ़ता नहीं, पढ़ता नहीं तो श्रेष्ठ नहीं बन पाता तब बच्चे को अहसास होता है मेरी उन्नति का श्रेय मेरे गुरु व माता-पिता को है ।

एक बार मेरे गुरु जी ने मुझे डांट दिया बहुत बुरा लगा मैंने सोचा- कमरे में डाँटते तो कोई बात नहीं सबके सामने डाँट दिया । मैं दुखी मन से बैठा था । हमारे संघ के भरत सागर जी की दृष्टि जैसे ही मुझ पर पड़ी उन्होंने मुझे बुलाया और पूछा क्या बात है ? मैंने कहा- कुछ नहीं । वे बोले- कुछ तो है तभी तो चेहरा उदास है मैंने कहा- गुरु जी ने डाँट दिया । वे बोले- अरे ! आप तो बड़े सौभाग्यशाली हैं । मैंने कहा एक तो डाँट पड़ी और आप सौभाग्य सराह रहे हैं । वे बोले- हाँ ! देखो बताओ डाँट किस शीशी में लगायी जाती है जिसमें बहुमूल्य सामग्री हो उसमें या खाली शीशी में ।

आपकी बात समझ में आ गई । गुरु के पास गया उन्होंने हाथ सिर पर रख दिया मैं खुश हो गया ।

संत खट्टे-मीठे नारंगी की तरह होते हैं । जो किसी अन्य रंगों में न रंगी जाए वह ना रंगी है । संत भी नारंगी की तरह दुनियाँ के रंगों से नहीं रंगते । मात्र अपनी आत्मा के रंग में रंगे रहते हैं । आत्मा के रंग में रंगे होते हैं । इसलिए प्रसन्न रहते है तन पर कपड़े नहीं, भोजन का ठिकाना नहीं, रहने को घर नहीं फिर भी आनंदित है क्योंकि परमात्मा के रंग में रंगे हैं । आत्मा में रमने वाले की बस्ती ही निराली होती हैं । उसे दुनियाँ से मतलब नहीं वह तो अपनी मस्ती में मस्त होता हैं । कहाँ क्या हो रहा हैं कुछ मतलब नहीं किस वस्तु के भाव घट रहे हैं, किसके बढ़ रहे है कुछ लेना-देना नहीं उन्हें तो निज घर से मतलब हैं ।

वैरागी की अंतर यात्रा प्रारंभ हो जाती हैं । वह उसी अंदर की यात्रा में आनंदित होता है । जब मैं छुल्लक अवस्था में था, तब उम्र बहुत छोटी थी । 16 वर्ष के क्षुल्लक जी । एक बार एक धनवान व्यक्ति मेरे पास आया और नोटों से भरा सूटकेस दिखा कर बोला- क्षुल्लक जी मेरे पास इतना धन वैभव है, कोई बारिश नहीं, सारा आपके नाम कर दूंगा, आप मेरे साथ चलो, इतनी छोटी सी उम्र में इतना कष्ट सहने की क्या जरुरत हैं ठंड़ी, गर्मी, भूख-प्यास के कष्ट सहने से क्या मिलने वाला हैं ।

मैंने कहा आपके पास तो बस इतनी ही दौलत हैं मेरे पास तो तीन बहुमूल्य रत्न हैं, करोड़ो का मालिक हूँ । सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र रूपी रत्नों को तीन लोक की संपदा मिलने पर भी नहीं छोड़ सकता । वे सज्जन अपना सा मुख लेकर वहाँ से चले गये ।

बंधुओं ! संतो के पास निज आत्मगुणों का वैभव हैं वे सतत् परमात्मा से जिन गुणरूपी संपत्ति को ही मांगते हैं । इसलिए वे संतरे की तरह रसीले होते है सबको प्रिय होते हैं, सब उन्हें चाहते हैं । यदि आप भी संतरे की तरह गुणवान बनना चाहते है तो संत बन जाये ।

संत बनने में जो सुख है वह अन्यत्र नहीं क्योंकि वे सदा आत्मानुभव का रस पान करते हैं ।

प्रत्येक संसारी आत्मा संत बने क्योंकि संत ही भगवान बनते हैं ।

इसी भावना के साथ- "1008 अजितनाथ भगवान की जय"

ज्ञान ही धर्मध्यान है-

पावारम्भ णिवित्ती, पुण्णारंभे पउत्तिकरणं पि ।

णाणं धम्मज्झाणं, जिणभणिदं सव्वजीवाणं ॥91॥

अर्थ - पापारम्भ (हिंसादि कार्यों) से निवृत्ति और पुण्यकार्यों में प्रवृत्ति का कारण ज्ञान ही है । इसलिए ज्ञान को ही सब जीवों के लिए जिनेन्द्र देव ने धर्मध्यान कहा हैं ।

- रयणसार

धर्म पचपन में नहीं बचपन में करो ।

(प्रवचन नं. 13)

★ *भक्ति वह सेतु है जो मुक्ति मंजिल प्रदान कराता हैं । भव सिंधु से पार उतार देता हैं ।*

★ *भक्ति से ही जीवन उन्नति के चरमोत्कर्ष को पाता हैं ।*

बंधुओं ! मनुष्य जीवन पाकर अच्छे कार्य जिन दिनों में किये जाते हैं वे ही दिन आनंद के, सुख के व सार्थक होते हैं । भगवान की पूजन, अभिषेक, दान जिन क्षणों में किया जाता है वे क्षण महत्वशाली होते हैं स्मृति को बनाये रखने के लिए आप फोटो व video बनाकर रख लेते हैं । पीढ़ी दर पीढ़ी स्मृतियाँ बनी रहती है । वे पावन क्षण पुण्य से कभी-कभी ही मिलते हैं ।

कर्तव्य निष्ठा का जीवन सभी का नहीं कुछ लोगों का होता है । श्रावकों के षट् आवश्यक होते हैं । उन आवश्यक कर्तव्यों में श्रावक सदा लगे रहते हैं । आचार्य कुंदकुंद देव कहते हैं- **न वशः इति अवशः** । जिस पर हमारा वश न चले ऐसे अवश्य करने योग्य कार्य आवश्यक कहलाते हैं । वे आवश्यक 6 हैं ।

देव पूजा गुरुपास्थि स्वाध्यायः संयमः तपः ।
दानं चेति गृहस्थाणां षट्कर्माणि दिने दिने ॥

1. देव पूजा 2. गुरु उपासना 3. स्वाध्याय 4. संयम 5. तप 6. दान

ये 6 आवश्यक कर्त्तव्य श्रावक के होते हैं । प्रथम कर्त्तव्य देव पूजा संपूर्ण विघ्नों की नाशक होती हैं । कहा जाता है

विघनौघा प्रलयं यांति, शाकिनी भूत पन्नगा ।
विषो निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥

भगवान का स्मरण करने से संपूर्ण विघ्न बाधाएँ, शाकिनी, पन्नगा, भूत बाधाएँ दूर हो जाती है यहाँ तक कि विष भी निर्विष हो जाता है ।

एक बार की बात है धनन्जय नामक कवि जो कि परम जिनेन्द्र भक्त थे सदैव भगवत् भक्ति पूजन में लगे रहते थे । एक दिन बगीचे में खेलते उनके बालक को एक विषैले सांप ने डस लिया । बच्चा मूर्छा खाकर गिर पड़ा, माली बच्चे की माँ को सूचना दे देता है । माँ की आंखों से आंसूओं की धारा बह चली । वह तुरंत पतिदेव को मंदिर जी सूचना भेजती है परंतु धनंजय कवि पूजा नामक आवश्यक

में तल्लीन थे अतः स्वयं नहीं आये । पत्नि को बड़ा क्रोध आया वह बच्चे को उसी हालत में मंदिर ले जाकर भगवन के चरणों में डाल देती है व अपने पति से कहती है यदि तुम्हारी भक्ति में इतनी शक्ति है तो मेरे बालक को ठीक कर दो । धनंजय कवि और अधिक भक्ति में तल्लीन हो जाते हैं और विषापहार स्तोत्र की रचना कर देते हैं तथा जिनाभिषेक का गंधोदक बालक पर जैसे ही डालते हैं वह जागृत हो जाता है माँ मैं कहाँ हूँ । यह चमत्कार देख सभी प्रसन्न हो जाते है ।

भगवत् भक्ति का ऐसा ही अपूर्व चमत्कार होता है । रत्नकरण्डक श्रा. में आचार्य समन्तभद्र भगवन कहते हैं-

देवाधिदेव चरणे परिचरणं सर्व दुःख निर्हरणम् ।
काम दुहि कामदाहिनि परिचिनुयादादृतो नित्यम् ॥119॥

देवाधिदेव के पावन चरणों की भक्ति सभी दुखों का नाश करती है । वह संपूर्ण मनोकामनाओं की पूर्ति करने वाली कामधेनू है तथा कामवासनाओं को नष्ट करने वाली है जलाने वाली है उस जिन भक्ति को आदर सहित जीवन में स्वीकार करना चाहिए ।

यदि बालपने को खेल में गंवाया जवानी भोगों को अर्पित कर दी तो बुढ़ापा धोखा दे देगा । इसलिए- 'काल करे सो आज कर' की सूक्ति को अपनाना होगा । पचपन में नहीं बचपन में ही पूजा, भक्ति के संस्कार बना लेना चाहिए । जो बचपन को संस्कारों के सांचे में ढाल लेता है उसका पचपन सुधर जाता है । युवाओं के हाथों में धर्म ध्वजा है वही धर्म के रथ को आगे बढ़ा सकते हैं अतः युवाओं को अपना कदम आगे बढ़ाना होगा । युवा आपस में संगठित होकर मंदिर को भक्तों का मेला बना सकते हैं । हम पूजा सामूहिक रूप से करेगें । आप पार्टियों, शादियों में सब को प्रेरित करके बुलाते हैं यदि आप धार्मिक कार्यों में सभी को प्रेरित करेगें तो आपका घर धर्म की अनुपम रोशनी से भर जायेगा ।

इसी भावना के साथ- "1008 महावीर भगवान की जय"

आत्मा ही आत्मा का सच्चा गुरु -

शिक्षावचः सहस्त्रैवा क्षीणपुण्ये न धर्मधीः ।
पात्रे तु स्फायते तस्मादात्मैव गुरुरात्मनः ॥55॥

अर्थ :- पुण्यहीन, तीव्रकषायी और अपात्र मनुष्यों को हितकारी हजारों उपदेशों से भी धर्मबुद्धि उत्पन्न नहीं होती; किंतु पात्र मनुष्यों को उपदेश के बिना भी धर्मबुद्धि बढ़ती है । वास्तविक रूप से देखा जाए तो आत्मा ही आत्मा का सच्चा गुरु हैं ।

- क्षत्रचूड़ामणी

पुण्य क्षणों को पुण्य में ही लगा दो

(प्रवचन नं. 14)

★ *संपूर्ण अविद्या का नाश करने वाली परम ज्योति हमारी आत्मा है अतः उसी को इष्ट मानना चाहिए, उसी का ध्यान करना चाहिए, उसी के बारे में पूछना चाहिए।*

द्रव्य दृष्टि से प्रत्येक आत्मा अनंत गुणों का पुंज है । हर आत्मा भगवती शक्ति संपन्न है । अपूर्व गुण संपदा का पिंड स्वरूप है । परंतु जब व्यवहार दृष्टि से देखते हैं तो अनंत सुखी आत्मा अनंत दुखी दिखाई देती है जिस दर पर जाओ भक्त अपने दुखड़े भगवान को सुनाते मिलते हैं । कोई कहता है भगवन थोड़ी धन दौलत बरसा दो, कोई कहता है मकान दे दो, कोई कहता है एक मोटरकार दे दो, कोई कहता है मकान के साथ दुकान हो, दुकान के साथ माल और माल के साथ ग्राहकी हो प्रार्थना पर प्रार्थना चलती रहती है ।

पेट भरे, पेटी भरे भर जाए घर बार ।
मैं कभी भूखा न रहूँ, कोई भूखा जाये तो जाये ॥

स्वार्थ परक ये प्रार्थनाएँ निरंतर चलती ही रहती है ।

तीर्थंकर देव महावीर कहते हैं- हे भव्य ! पेट और पेटी तो भरती ही रहेगी अपनी आत्मा के अनंत वैभव को निहारो । बाह्य वैभव तो पानी के बबूले की तरह क्षणक्षयी है परंतु हम बालक की तरह पानी के बबूलों को पकड़ना चाहते हैं जिन्हें पकड़ना संभव नहीं है क्योंकि वे तो निरंतर फूटते ही रहते हैं आप में से कोई 30, कोई 40, कोई 90, कोई 100 वर्ष का होगा । क्या आपने अपनी आत्मा के विषय में सोचा ? नहीं । आपने मात्र शरीर के लिए सारा जीवन जिया है पौद्गलिक विकास में सारी शक्ति खर्च कर दी । परंतु जो त्रैकालिक ध्रुव है उस भगवती आत्मा के विषय में नहीं सोचा । जबकि आचार्य कहते हैं-

अविद्या भिदुरं, ज्योतिः परं ज्ञान महं महत् ।
तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं तद्दृष्टव्यं मुमुक्षुभिः ॥49॥ इष्टोपदेश

संपूर्ण अविद्या का नाश करने वाली परं ज्योति स्वरूप एक आत्म तत्व है । ज्ञानी, मोक्ष के इच्छुको को उसी के बारे में पूछना चाहिए, उसी को इष्ट समझना चाहिए व उसी आत्मा को देखना

चाहिए। परंतु देखा ऐसा जाता है कि प्राणी प्रायः पौद्गलिक पदार्थों को देखता है तथा आत्मा के प्रति बेपरवाह रहता है । हमारा विहार चल रहा था । रास्ते में देखा एक दरवाजे पर चिंतन-मनन लिखा हुआ था । मैं देखकर प्रसन्न हुआ कि इस घर के लोग तत्व ज्ञानी होंगे । परंतु एक सज्जन बोले महाराज बस ! बस! इस घर के लोग तो निरंतर चिंता में डूबे रहते हैं, लड़ते-झगड़ते रहते हैं, हाव धाव चाव में लगे रहते हैं आज का चिंतन-चिंता व चिता तक पूर्ण हो जाता है । क्योंकि चिंतन की दिशा सही नहीं है चिंतन की दिशा सही हो तो कहना नहीं पड़ता कि देव दर्शन करो, अभिषेक करो । चिंतन की दिशा सही है तो दशा स्वयं बदल जाती है । महावीर स्वामी अपने केवलज्ञान के द्वारा संसारियों की दिशा देख रहे हैं । काम करो दुःख के सुख कहा से होय ।

एक सूफिया संत थे । वे जैन तत्व विधा में बड़ी रूचि रखते थे । वे सदा प्रसन्न रहते थे । कभी-कभी जोर जोर से हंसते तो कभी रोने लग जाते थे वे कब हंसे, कब रोये कोई पता नहीं । लोगों ने कारण पूछा- परंतु उत्तर नहीं मिला । महावीर स्वामी अनुत्तर योगी थे । वे सूफिया जो निरूत्तर योगी थे । लोगों ने उन्हें पागल घोषित कर दिया । पागलों का भरोसा नहीं कब रोये, कब हंसे । पागल शब्द अपने लिए प्रयोग होने पर भी वे गुस्सा नहीं करते । पागल की तो पूरी चेष्टा ही उलट-पुलट हो जाती है वह कभी कपड़े फाड़ता है कभी किसी को मारता है अतः ये पागल तो नहीं है यदि ये पागल नहीं तो हंसते-हंसते रो क्यों पड़ते हैं अब समाधान कैसे पाये ? युक्ति निकाली गई सब मिलकर संत के पास गये और उपदेश हेतु प्रार्थना की तथा हंसने रोने का कारण भी पूछ लिया । संत ने सोचा ये जिज्ञासु प्रकृति के लोग हैं । जहाँ जिज्ञासा है वहाँ समाधान अवश्य मिलते है संत ने कहा ठीक है आपको उत्तर मिलेगा ।

कोई स्वागत सम्मान में, कोई माला पहनने में भटक जाते है परंतु जो जिज्ञासावान होते हैं वे जिज्ञासा पूर्ति को इष्ट मानते हैं अतः प्रार्थना निरंतर जारी थी । संत कहते हैं- मैं जब अपनी ज्ञान दृष्टि से देखता हूँ तो परमार्थ पथ/मोक्षमार्ग/सुख का रास्ता साफ-साफ नजर आता है । सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः । रत्नत्रय की एकता ही मोक्ष मार्ग है । शांति के पथ के निर्माता हम स्वयं है । मम्मी, पापा तुम्हारे सुख के रास्ते को नहीं बनायेगें । वह तो तुम्हें ही बनाना होगा । कर्मों के बीजों को जीव स्वयं बोता है तथा उसके फलों को स्वयं पाता है ।

परमार्थ के बीज भी तुम्हें ही बोना पड़ेंगे । जब मुक्ति के उस परम पवित्र पथ पर मेरी दृष्टि जाती है तो आंतरिक आल्हाद होता है और मैं जोर जोर से हंसता हूँ । परंतु जैसे ही मेरी दृष्टि संसारी प्राणियों पर पड़ती है और जब उन्हें मैं सांसारिक कार्यों में फंसे देखता हूँ । पुद्गल के लिए सिर से पैर तक पसीना बहाते देखता हूँ । पाप पंक में फंसे देखता हूँ । मोह अज्ञान की मोटी दीवारों में बन्द देखता हूँ

राग और द्वेष रूपी रस्सियों से जकड़ा देखता हूँ । तो उनके भविष्य के बारे में सोच जोर-जोर से रोता हूँ क्योंकि जो राग-द्वेष की जंजीरों में जकड़ा रहता है वह नियम से दुर्गति में जाकर महान कष्ट उठाता है प्राणियों को दुख व कष्ट का पथानुगामी देख में रोता रहता हूँ ।

जब सूफियाँ संत के हंसने व रोने का रहस्य लोगों को मालूम हुआ तो संत के महान ज्ञान को देख सब अचंभित थे हम जिन्हें पागल समझ रहे थे वे पागल नहीं महान तत्व ज्ञानी है सारे लोग उनके चरणों में नतमस्तक हो जाते हैं ।

बंधुओं ! ऐसे पावन पुनीत संतों का समागम हमें मिला है हमारे भगवन् कहते हैं मृत्यु के बाद तुम्हे दूसरा भव मिलेगा । यदि इस भव का कर्ज इस भव में नहीं चुकाया तो परभव में चुकाना पड़ेगा । आज संपूर्ण अनुकूलता में संतों की चरण शरण पाकर भी अपने आत्महित के पथ पर कदम नहीं बढायें । तो कर्मों का बोझा बढ़ता जायेगा और परभव में पशु पर्याय में बैल, घोड़ा, गधा, ऊँट बनकर चुकाना पड़ेगा । हमें मनुष्य जीवन के अमूल्य क्षण मिले हैं पवित्र कार्यों के क्षण, पूजा, अभिषेक, दान या त्याग के क्षण पुण्य से मिलते हैं पुण्योदय से मिले ऐसे सुअवसरों को पाकर पुण्य में पुण्य की कमाई कर लेना ही विवेक है । यदि आज तुम नहीं जागे तो अनंतभव फिर सोते-सोते गंवाना होगा । दुःख भोगना पड़ेगा । इसलिए जागो और आत्महित के पथ पर लग जाओ ।

इसी भावना के साथ- "1008 मुनिसुव्रत नाथ भगवान की जय"

आत्मोत्पन्न सुख का स्वरूप -

आत्मोत्थमात्मना साध्यमव्याबाधमनुत्तरम् ।
अनन्तं स्वास्थ्यमानन्द मतृष्णमपवर्गजम् ॥13॥

अर्थ :- अपनी आत्मा से उत्पन्न हुआ सुख आत्म के द्वारा साध्य, बाधा रहित, सर्वोत्कृष्ट, अनंत, आनंद मय, तृष्णारहित और मोक्ष स्वरूप हैं ।

अतः विवेकीजनों को उसी में प्रयत्नशील होना चाहिए ।

- क्षत्रचूड़ामणी

मंथन से मिलते मोती

(प्रवचन नं. 15)

★ धर्म को मात्र सुनना पर्याप्त नहीं, सुनने के साथ गुनना, चिंतन, मंथन, मनन भी अनिवार्य है। क्योंकि मंथन से ही मक्खन निकलता है। तत्व ज्ञान के मंथन से स्वात्मोपलब्धि का मक्खन मिलेगा।

धर्म व्यवहारिक क्षेत्र में दया व करूणा के नाम से जाना जाता है । दया, स्नेह, प्रेम, वात्सल्य ये सब पर्यायवाची नाम है धर्म के । हमारा धर्म कहता है- दिखने वाले प्राणियों पर तुम दया, करूणा करते हो तो उन पर भी दया करो जो आंखों से भी न दिखे, हवा में भी जीव है, पानी में भी जीव है उनकी भी रक्षा करो ।

धर्म को मात्र सुनना पर्याप्त नहीं, सुनने के साथ गुनना अनिवार्य है । जैसे दही के मंथन से मक्खन निकलता है गाय खाया हुआ रूंथन करती है उसी प्रकार मंथन किया हुआ ज्ञान आत्मोन्नति में हेतु बनता है । मात्र रटा ज्ञान हितकारी नहीं तिजोरी में रखा धन काम का नहीं वह तो मात्र रखा ही है । परंतु जो धन उपयोग में लिया है वही धन काम का है । अब ज्ञान का मंथन कैसे करें ? तो आचार्यों ने अनुप्रेक्षाओं का मार्ग दिखाया है तत्व का बार-बार चिंतन कीजिए, बार-बार दुहराना, हमारा चिंतन जैसे-जैसे गहराई में पहुंचता है मंथन में बदल जाता है और मंथन से फिर मक्खन मिल जाता है और कदम बढ़ जाते हैं मुक्ति धाम की ओर । एक नन्हा छोटा बालक माता-पिता ने जिसे बड़े नाजों से पाला था धीरे-धीरे बड़ा हो रहा था जिसकी एकलौती संतान होती है वह माता-पिता की संपूर्ण आशाओं का केंद्र होता है । बस वह नन्हा सुकुमाल भी कुछ ऐसा ही था । माता-पिता ने उसे अच्छी-अच्छी धार्मिक शिक्षाएँ देकर बड़ा किया और जब बच्चे बड़े हो जाते हैं तो माता-पिता का स्वप्न होता है कि हमारा वंश आगे बढ़े इसलिए बेटे का विवाह अनिवार्य है । माता का मन हर्षित था घर में बहु आयेगी चहल-पहल होगी । माता पिता ने बेटे के विवाह हेतु किसी उच्च घराने की कन्याओं से विवाह सुनिश्चित कर दिया । घर में खुशहाली छाई थी । जब बेटे ने देखा कि आज तो बड़ी चहल पहल है । बात क्या है पूछा माँ ! क्या बात है इतना हर्ष आखिर बात क्या है ? माँ बोली, बेटा जा अपने पिता से पूछ । वह सोचता है हो सकता है कोई विशेष उत्सव होगा इसलिए माँ ने मुझे कुछ नहीं बताया वह पिता के पास जाता है और पूछता है पिता जी कहते है जा अपनी माँ से पूछना वह माँ से कहता है - माँ बताओ न क्यों सताती हो, क्या मैं नहीं जान सकता घर में क्या महोत्सव हो रहा है ।

बंधुओं ! एक समय वह था जबकि पाणिग्रहण संस्कार के विषय में बच्चों से नहीं पूछा जाता था

माता पिता का निर्णय ही सर्वमान्य होता था । परंतु आज सब कुछ बदल गया है पाश्चात्यता ने अपने पैर जमा लिये है आज माता पिता का कुछ विनय सम्मान ही नहीं रहा । बच्चे अपनी मर्जी से ही अपने योग्य जीवन साथी का चुनाव कर लेते हैं । और अधिकांशतः उन्हें पछताना ही पड़ता है समय निकल जाते ही सर पीटते हैं कि काश ! अपने माता-पिता की बात मान ली होती । परंतु माता-पिता का वह एकलौता बेटा वैसा नहीं था वह तो धार्मिक संस्कारों में पढ़ा-बड़ा सुसंस्कारित बेटा था । अतः पुनः माँ से आग्रह करता है । माँ कहती है बेटा ! अब तू बड़ा हो गया, हम तेरे विवाह की तैयारियाँ कर रहे हैं जैसे ही ये शब्द कुमार के कान में पड़ते हैं वह आश्चर्य चकित हो जाता है माँ ! क्या कहती हो विवाह ! मुझे विवाह नहीं करना मैं तो मुक्ति वधु के साथ पाणिग्रहण करूँगा, लौकिक वधुऐं मुझे नहीं चाहिए । मैं प्रवज्या धारण करूँगा । अपने आत्मा का ध्यान करूँगा । कुमार के शब्द सुनते ही माँ के ऊपर तो मानो बिजली ही गिर गई हो वह मूर्छा खाकर गिर गई । कुछ देर बाद उसे होश आया, होश आते ही वह बोली बेटा ! तू यह क्या बहकी-बहकी सी बातें कर रहा है ये प्रवज्या का जुनून कहाँ से तुझे सवार हो गया, जानता है प्रवज्या क्या होती है । तलवार की धार पर चलने के समान कठिन कार्य है । जानता हूँ माँ ! क्या कभी कोई परिषह तूने सहन किया है ? नहीं माँ ! परंतु वैराग्य हो तो कष्ट सहा जाता है अनादि काल से जिस मोह जाल में फंस मैंने आत्मा को चतुर्गति में भ्रमाया उस मोह जाल को तोड़ना अनिवार्य है संसार दुख का समुद्र है । इस दुख समुद्र को तैरकर मुझे सुख के शाश्वत किनारे को पाना है । अतः आप मेरे मार्ग में अवरोध मत बनियें । माँ बहुत समझाती है परंतु कुमार तो चिकने घड़े थे । माँ कहती है बेटा ठीक है तुम मेरी बात मत मानो परंतु पिता के वचनों की तो लाज रखो । क्या दुनियाँ तुम्हारे पिता का उपहास नहीं करेगी कि वचन देकर मुकर रहे हैं । वे किसी को अपना मुख क्या दिखा पायेगें । अब पिता के वचनों की लाज तुम्हें रखनी है । कुमार सोचते है यह तो सत्य है पिता के वचनों का ध्यान रखना मेरा कर्तव्य है । अतः कुमार तैयार हो जाते है परंतु वचन लेते हैं विवाह के उपरांत प्रातः काल ही मैं प्रवज्या धारण करूँगा । माँ सोचती है ठीक है कम से कम तैयार तो हो गया । विवाह होते ही इसका मन पलट जायेगा ऐसा सोचकर माँ तैयार हो जाती है ।

धूमधाम से 8 कन्याओं से साथ कुमार का पाणिग्रहण हो जाता है । दहेज में कुमार को बहुत सा धन-दौलत, पयादे, घोड़े-गाड़ी मिल जाते हैं । परंतु कुमार का मन तो वैरागी था ।

माँ सोचती है विवाह तो हो गया भगवन् कुछ ऐसा हो जाए कि बेटे का मन बदल जाए । कुमार अपनी आठ पत्निओं के साथ तत्व-वार्ता करते हैं । कोई कहती है हे स्वामिन् ! देखिए प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ भग. ने भी प्रवज्या धारण की थी परंतु पहले अपने गृहस्थिक कर्तव्यों की पूर्ति की थी । आप को भी उचित है कि आप पहले कर्तव्यों का निर्वाह करें । कुमार कहते है तुम प्रथम तीर्थेश नहीं 22वें नेमीनाथ और 24वें महावीर भगवान की ओर देखो सारे राज वैभव को छोड़ के अल्पायु में गृह त्याग कर निकल गये थे । चूंकि आदिनाथ तीर्थंकर की आयु दीर्घ थी । अतः संसार का गृहस्थिक

जीवन जीना पड़ा परंतु अल्पायु के धारी महावीर तीर्थंकर ने विवाह नहीं किया । आज तो पंचमकाल प्रवर्तमान हो चुका है आयु, बल सब कुछ घट रहा है तुम ही कहो क्या मेरा प्रवज्या लेना अनुचित है पहली पत्नि कुमार के तर्क पूर्ण वचन सुन शांत रह जाती है । एक-एक कर सारी पत्नियाँ कुमार को वाक् जाल में फंसाना चाहती है परंतु कुमार की वाक् पटुता के सामने सब हार गये । यहाँ कुमार के विवाह की चर्चा सुन विद्युर चोर नामक प्रसिद्ध चोर, चोरी करने के उद्देश्य से वहाँ आया और छिपकर जब कुमार व पत्नियों की तत्व-वार्ता सुनता है तो चकित रह जाता है जिस धन संपदा को मैं चुराने आया उसे ये छोड़कर जा रहे हैं इसका मतलब है कि प्रवज्या और भी कोई बड़ी वस्तु है । चोर विचार कर जैसे ही मुड़ता है सामने से कुमार की माँ आ जाती है माँ उस चोर से पूछती है तुम कौन हो ? वह कहता है मैं एक चोर हूँ । यहाँ चोरी के उद्देश्य से आया हूँ ।

माँ कहती है क्यों झूठ बोलते हो । फिर भी आज कुमार का विवाह हुआ है मैं बहुत खुश हूँ इसलिए जितना चाहो वह धन ले जा सकते हो । चोर माँ के चेहरे में छिपे दुख को पढ़ लेता है और कहता है माँ अपना दुख मुझे बताओ मैं भी तुम्हारा बेटा हूँ । बेटा ! ये कुमार जिद् करता है मेरा एकलौता बेटा है अत्यन्त वैरागी है प्रातः काल प्रवज्या लेना ठान चुका है मैं इंतजार कर रही हूँ शायद इसका मन बदल जाए । कुमार की ऐसी बाते सुनकर चोर को भी वैराग्य हो जाता है कुमार तो वहीं बैठे रह गये और चोर रात्रि में जाकर ही प्रवज्या धारण कर लेता है । रात्रि भर समझाया परंतु कुमार नहीं माने । अंततः हार मानकर आठों पत्नियाँ निर्णय लेती है कि यदि हमारे स्वामी ही प्रवज्या ले रहे हैं तो हम यहां रहकर क्या करेंगे और वे 8 कन्याएँ कुमार के साथ प्रवज्या धारण कर लेती है । वह दृश्य अनुपम ही है । रागी, राग की दुनियाँ छोड़ वैराग्य के पथानुगामी बन रहे हैं । एक साथ 9 दीक्षाएँ कितना अनुपम दृश्य होगा ।

बंधुओं ! यह कहलाता है चिंतन, मंथन, मनन । जंबूकुमार ने मात्र तत्व को जाना ही नहीं अपितु चिंतन मंथन मनन भी किया और मात्र तत्व जाना ही नहीं अपितु उसे पाने कदम बढ़ा लिये और पंचमुष्ठी लौंच कर जब वे महाव्रत धारण करते हैं तो ध्यान में लीन हो जाते हैं और जिसे पाने निकले थे उस शिवरमणी का वरण कर लेते हैं मुक्ति वधु को प्रिय हो जाते हैं और अंतिम अनुबद्ध केवली बन जाते हैं ।

बंधुओं ! आचार्य भगवान हमें यही शिक्षा दे रहे हैं कि हे भव्य ! तुम मात्र तत्व को जानों ही नहीं, चिंतन मंथन भी करो तो तुम अवश्य ऐसा नवनीत प्राप्त करोगे जो तुम्हारे अंतरमनों को उज्जवल, सौम्य व सुंदर बना देगा। जब चिंतन मंथन होता है तो चर्या में सुधार स्वयं होता जाता है जीवों की रक्षा हेतु विवेक उत्पन्न हो जाता है कि नहीं ऐसा कार्य नहीं करना जिससे प्राणियों को भी पीड़ा हो । और प्रमाद दूर हो जाता है चर्या निष्प्रमत्त हो जाती है । इसलिए चिंतन/मंथन मनन कीजिए क्योंकि उससे ही एक दिन शीघ्र ही आपको निर्वाण सुख की शाश्वत सुख की प्राप्ति हो सकेगी ।

इसी भावना के साथ- "1008 आदिनाथ भगवान की जय"

मत भूलो तुम माँ को

(प्रवचन नं. 16)

★ *जीवन में सब कुछ पाना आसान हैं परंतु सब पाकर भी वह अधूरा है जो अपने उपकारी के प्रति कृतज्ञता के भाव नहीं रख पाता।*

"बच्चे" शायद एक माँ का सुखद स्वप्न होता है । हाँ एक ऐसी ही माँ थी जिसके गर्भ में एक बालक था परंतु जीवन का यही रूप है कभी खुशी तो कभी गम । जीवन में कभी पहाड़ आते है तो कभी खाई । उतार-चढ़ावों से जीवन भरा हुआ है । बालक के गर्भ में आते ही पिता की मृत्यु हो गई । माँ के ऊपर तो मानो दुख का पहाड़ ही टूट पड़ा हो । परंतु बच्चे के लिए जीवन जीना अनिवार्य था । माँ ने 9 माह बहुत कष्ट उठाये बालक को जन्म दिया । परंतु अब उस माँ के जीवन के जीने का आधार वह बालक ही था माँ उसे हर खुशी देती । स्वयं दूसरों के घर काम करती और बालक का पोषण करती थी । धीरे-धीरे बालक थोड़ा बड़ा हुआ वह स्कूल जाने लगा । जब वह स्कूल जाता तो माँ स्वयं उसे स्कूल तब छोड़ने जाती थी । परंतु एक दिन अचानक बच्चों के साथ खेलते हुए उस माँ के नन्हें सुकुमाल की आंख में गिल्ली लग गई परिणाम एक आंख से रहित हो गया । माँ बहुत रोयी उसके पास बहुत सा पैसा भी नहीं था इसलिए उसने पास में रखा सारा सोना बेच डाला और उससे जो पैसा मिला उसे बच्चे के इलाज में खर्च कर डाला परन्तु आँख तो दूसरी चाहिए थी जिसका transplantation किया जा सके । पहले कोई नेत्र दान नहीं होता था ।

इसलिए माँ ने अपनी एक आँख उस बच्चे को दे दी । operation सफलतापूर्वक हो गया । बच्चे की तो दोनों आँखें सुन्दर हो गई पर माँ कानी हो गई । माँ का हृदय इतना विशाल होता है कि वह अपने पल्ले में सारे दुख समेट कर भी अपनी संतान को दुनियाँ की वे तमाम खुशियाँ देती है जो संसार की सर्वश्रेष्ठ होती है । माँ पहले की तरह आज भी बच्चे को स्कूल छोड़ने जाती थी परंतु आज और कल में बहुत बड़ा अंतर आ चुका था कल तो कोई कुछ भी नहीं कहता था परंतु आज सारी दुनियाँ बच्चे को कानी माँ का बेटा कहकर बुलाते थे । बच्चे को बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था इसलिए उसने माँ को कह दिया कि माँ तू मुझे छोड़ने स्कूल मत जाया कर तू मेरे साथ आती है तो मेरे दोस्त मुझे चिढ़ाते हैं और मुझे अच्छा नहीं लगता । माँ को बच्चे के कटु वचन सुन दुःख तो होता है परंतु अपने आंखों में ही अपने आंसू समेट कर बालक से कहती है ठीक है बेटा ! अब मैं नहीं जाऊंगी । माँ ने इस दुख को भी सह लिया क्योंकि उसका सारा जीवन अपने बेटे के लिए ही समर्पित

था । माँ बेटे को खूब पढ़ाती है लिखाती है और पढ़ लिख कर वह एक बड़ा डॉक्टर बन जाता है और नौकरी करने के लिए वह विदेश चला जाता है । माँ से पूछे बिना ही बेटा एक लड़की के साथ विवाह कर लेता है और पत्र के द्वारा माँ को समाचार भेज देता है चूंकि माँ को नहीं बुलाना चाहता था इसलिए माँ को शादी के बाद समाचार दे दिया । जब माँ को पत्र मिलता है तो हतप्रभ रह जाती है । हे भगवन् ! मैंने अपना सारा जीवन बेटे की परवरिश में लगा दिया, और आज मेरे बेटे ने विवाह के विषय में मुझ से कुछ पूछा तक नहीं । माँ, को माँ ही नहीं समझा । माँ ये खून के घूट भी पी जाती है । हृदय पर पत्थर रख लेती है । आंखों में आंसू थे ।

सोचती है शायद मेरी एक आंख नहीं है इसलिए बेटे ने नहीं बुलाया होगा । कोई बात नहीं । अब तो शादी हो ही चुकी है बेटे को पत्र लिखकर कम से कम बहु से तो मिल ही आऊंगी । माँ विदेश जाने की कल्पना से बहुत खुश थी बड़ी जोरों से तैयारियाँ चल रही थी । नये कपड़े सिला लिये अपना बैग तैयार कर लिया और बेटे को पत्र भेज दिया । जब माँ ने अपने आने की बात की तो बेटा घबरा गया अब क्या करूँ मेरे यहाँ तो बड़े-बड़े लोगों का आना जाना लगा रहता है । परंतु माँ ने तो पैसा इकट्ठा कर एयरोप्लेन का वीजा तैयार करवा लिया था और तारीख तय हो चुकी थी । माँ की खुशी का ठिकाना न था बेटा, बहु दोनों से मिलूंगी और अब तो मेरा बेटा मुझे वापस आने ही नहीं देगा इसलिए मुहल्ले में बोलकर जाती है कि भैय्या ! अब मैं लौटकर आऊंगी कोई भरोसा नहीं है । मुहल्ले वाले भी 'माँ' की खुशी देख खुश थे । ठीक है बेचारी माँ ने इतना कष्ट सहा था अब तो वृद्धावस्था सुख से बीत जायेगी । सारा मुहल्ला माँ को एयर-पोर्ट छोड़ने आता है । माँ खुशी-खुशी एयरोप्लेन में बैठ जाती है । पता लगाती-लगाती बेटे के घर पर पहुँच जाती है परन्तु घर पर तो ताला लगा था । बाहर बैठकर इंतजार करती है 2-4 घंटे बाद किसी पार्टी से लौटकर बेटा बहू आ जाते हैं रात्रि के 12 बज रहे थे । माँ को नींद आने लगी थी परन्तु वह सोयी नहीं थी ।

शाम को भोजन भी नहीं किया था । बेटे के आते ही वह प्रसन्नता प्रकट कर देती है परन्तु बेटे का मुख म्लान था । दोनों ताला खोलकर अंदर चले जाते हैं माँ भी अंदर जाती है बेटा तो गुस्से में था तुम्हें यहाँ किसने बुलाया ऐसा शब्द सुनते ही माँ, धक्क रह जाती है बेटा तुझे देखने का मन हुआ तो आ गई । बात खत्म हो जाती है दूसरे दिन प्रातः होते ही बड़े-बड़े लोगों का आना प्रारंभ हो गया । एक बड़े डॉक्टर भी आये उनकी दृष्टि माँ पर पड़ गयी और पूछा - डॉक्टर ! ये लेडी कौन है पहले तो मैंने इसे कभी नहीं देखा । बेटा बोला - सर ! ये हमारी नई नौकरानी है आज ही हमारे गांव से इंडिया से आई है । जब माँ के कानों में ये शब्द पड़ते हैं तो मानों कि उसके ऊपर गाज गिर गई हो माँ का दिल कांच की तरह टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो गया । हे भगवान् ! क्या इस देह में प्राण ये ही शब्द

सुनने के लिए शेष थे । माँ की आँखों से समुद्र ही फूट पड़ता है वह बहुत रोती है और निर्णय ले लेती है कि अब मैं वापिस चली जाऊंगी । आँखों में आंसूओं को समेट बेटे के पास जाती है और कहती है बेटा ! अब मैं वापिस जाना चाहती हूँ । यहाँ विदेश में मन नहीं लग रहा । अपने गांव की याद आती है ।

बेटा खुश हो जाता है सोचता है मुसीबत टली । माँ को तुरन्त छोड़ने चला जाता है एयरपोर्ट जाता है और एयरोप्लेन में बिठा वापिस आ जाता है । माँ का छलनी मन हर पल रो रहा था उस एयरोप्लेन में बैठी आंखों के आंसू पोंछती जाती और एयरोप्लेन की एयर हॉस्टेस का मन कुछ पिघलता है वह 'माँ' के पास जाकर पूछती है - Mother what happend, why are you weeping ? यद्यपि माँ को English तो नहीं आती थी । परन्तु एयर हॉस्टेज के चेहरे के हाव-भाव को देख वह समझ जाती है यह मुझे सहानुभूति दे रही है । और वह बोलती है बेटा कोई बात नहीं मेरी आंखों में रोग है इसलिए आंसू निकलते रहते हैं । एयर हॉस्टेज सोचती है शायद कोई रोग होगा परन्तु उनका मन शंकित था polite heart वाली वह एयर हॉस्टेज अपने office से permission लेकर माँ को घर पर छोड़ने उसके घर तक जाती है माँ को घर पर छोड़कर आती है घर पर आते ही सारा मुहल्ला माँ के चेहरे को देख घटी हुई घटना का पता लगा लेता है । सारे मुहल्ले की आंखें भी भीग गई ।

माँ ! उस दिन से फिर कभी ठीक हुई ही नहीं हृदय पर इतना बड़ा आघात पहुंचा कि वह बीमार पड़ गई । मुहल्ले वालों ने सोचा माँ तो मरने वाली है बेटे को सूचना करनी चाहिए । बेटे को सूचना दी जाती है परन्तु फिर भी बेटा नहीं आता । माँ का मोहित मन बेटे को देखना चाहता था परन्तु जानती थी कि बेटा नहीं आएगा इसलिए जीवन के अंतिम क्षणों में एक पत्र बेटे को लिखती है ।

जिसमें एक माँ की अंतरात्मा की गूंज सुनाई दे रही थी - पत्र में लिखा था बेटा ! जो तुझे यह रंगीन दुनियाँ न दिखानी होती तो मैं क्यों कानी होती । और यदि तुझे जीवन न देना होता तो मैं क्यों जीती । तेरे लिए ही मेरी अंतिम श्वास चल रही है ।

पत्र बेटे के हाथ में पहुंचता है बेटा किसी की surgery करने जाने वाला था सोचा खोल कर तो देखूं क्या है ? जैसे पत्र को खोलता है - एक एक शब्द बेटे के मन को झकझोर रहा था । बेटा सोचता है यह मैंने क्या किया ? जिस माँ ने मुझे पढ़ा लिखाकर एक सम्मान का जीवन दिया मैंने उसकी ममता को ठुकरा दिया । उसने मेरे लिए इतना कष्ट सहा और मैंने उसका अपमान किया । अंतर मन पश्चाताप के आंसूओं को बहा रहा था । बेटा तुरंत india के लिए निकल जाता है । 2 घंटे की अल्प अवधि में माँ के पास पहुँच जाता है जहाँ माँ अपनी अंतिम श्वासे गिन रही थी बेटा ! पहली

बार माँ से मिलने की भावना संजोकर माँ के पास पहुँचता है माँ की अंतिम श्वासे बेटे के लिए चल रही थी । बेटे के पहुँचते ही माँ की दृष्टि बेटे पर पहुंचती है बेटा माँ के पास पहुँचता है और माँ ! बस ये शब्द मुख से निकाल पाता और माँ के प्राण पखेरू उड़ जाते हैं।

बेटे की आंखों से पश्चाताप की अश्रुधारा बह रही थी । सब कुछ वैसे का वैसा ही था, वही घर, वही द्वार बस एक माँ नहीं थी । बेटा सिर धुनता रह जाता है अब माँ नहीं, बस उसकी यादे ही शेष थी।

बंधुओं ! ये कहानी उस बेटे की ही नहीं आपकी भी हो सकती है । इसलिए उठिये ! और निहारिये जीवन के उस पहलु को जो आपकी उन्नति का अहम हिस्सा है जिसके बिना आप कुछ भी नहीं और अपने कदमों को बढ़ा दीजिए कर्तव्य निष्ठा के पथ पर । जीवन में पाना ही सब कुछ नहीं । देना भी महत्व रखता है । जो सहनशीलता, कर्तव्य निष्ठा के पथ पर चलते हैं वे सफलता पाते हैं जीवन में उतार चढ़ाव तो आते ही है परीक्षा के क्षणों में उत्तीर्णता पाना बहुत अनिवार्य होता है । जो परीक्षा में पास हो जाता है वह उपलब्धी लेकर लौटता है ।

हमारे वृद्ध माँ-बाप उन्होंने हम पर कितने उपकार किये । आज हम जी रहे हैं तो उनकी कृपा से ही । इसलिए उनके उपकारों को कभी नहीं भूलना चाहिए और कृतज्ञता का पथानुगामी बनना चाहिए । तभी आप पारलौकिक उपलब्धियों को पा सकेगें ।

इसी भावना के साथ - "1008 महावीर भगवान की जय"

विद्वान और अविद्वान का स्वरूप-

नभश्चर न कश्चित्स्याद्विपश्चिदवि पश्चितोः ।

विनिश्चलशुचोर्भेदो यतश्चन कुतश्चन ॥56॥

अर्थ :- हे विद्याधर ! इधर-उधर से विपत्ति के आ जाने पर निश्चल रहना और शोक न करना बस यही विद्वान की पहचान हैं । इसके सिवाय विद्वान और मूर्ख में और कुछ भी भेद नहीं हैं । विद्वान-विपत्ति आने पर धैर्य धारण करते हैं और विशेष लाभ होने पर गर्व नहीं करते । जबकि अविद्वान/मूर्ख लोग अल्प आपत्ति में ही अधीर हो जाते हैं और अल्प लाभ मे ही फूल जाते हैं । विद्वान व अविज्ञान में यही अंतर हैं ।

- क्षत्रचूड़ामणी

"निर्गंथों की महिमा अपरंपार"

(प्रवचन नं. 17)

★ *सम्यग्दृष्टि जीव के पास ज्ञान और वैराग्य की शक्ति होती है। ज्ञान से हेयोपादेय में त्याग-ग्रहण बुद्धि होती है। और वैराग्य उपादेय भूत में शीघ्रता से चित्त को स्थित कर देता हैं।*

आज हम रक्षा बंधन जैसे महान पावन पुनीत पर्व की पूर्व बेला में बैठे हैं रक्षा बंधन पर्व, वात्सल्य, गुरु भक्ति, प्रेम व धर्मरक्षा की प्रेरणा देता है। 20वें तीर्थंकर मुनि सुव्रतनाथ भगवान के शासन काल में इस पर्व की उत्पत्ति हुई। जब आचार्य अकंपनाचार्य आदि 700 मुनियों ने यत्र-तत्र विचरण कर धरती को धर्ममय बनाया उन्होंने प्राणियों को धर्मोपदेश दे धर्म पथ पर लगाया। धन्य है वें महापुरुष जो राज वैभव, भोगों को जीर्ण तृण सम छोड़ देते हैं। आज हम अभक्ष्यों के त्याग में भी सकुचाते हैं। दान देने में हाथ पीछे कर लेते हैं भगवान को अर्घ चढ़ाने में प्रमाद करते हैं उन्होंने ऐसा छोड़ा कि फिर मुड़ कर नहीं देखा। आत्मा व शरीर का भेद विज्ञान practical कर दिखा दिया। शरीर ही मेरा नहीं तो घर कुटुम्ब मेरा कहाँ हो सकते हैं बस वैराग्य हो जाता है-

उत्तर पुराण में गुणभद्र स्वामी कहते हैं- आत्मज्ञान होते ही वैराग्य हो जाता है।

आचार्य अमृतचंद स्वामी कहते हैं -

सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञान वैराग्य शक्ति

सम्यग्दृष्टि ज्ञान व वैराग्य से भरा होता है उसे निजात्मा का भान हो जाता है मैं तो एकमात्र अखण्ड चैतन्यपिंड हूँ परद्रव्य मैं नही हूँ। अनादिकाल से आत्मा कर्मों से बंधी है। एक-एक कर समय निकलता जा रहा है अनादि की किट्ट कालिमा को धोने के लिए तपश्चरण अनिवार्य है। कपड़ों की किट्ट कालिमा साबुन सोड़े से दूर हो जाती है सोने को 16 ताव दिये जाते हैं जब वह कालिमा से रहित होता है 16 ताव यानि अग्नि में तपाया जाता है आत्मा जब तपाग्नि में तपती है तो सुवर्ण की तरह उज्जवल हो जाती है। धन्य है वह मुनि दशा जिसे आचार्य कुंदकुंद देव ने चलता-फिरता मोक्ष मार्ग कहा है। संत व्यवस्था की नहीं सोचते कुछ लोग कहते हैं सभी दीक्षा ले लेंगे तो आहार कौन देगा ? मैंने कहा संत खाने के लिए नहीं अपितु आत्मा की साधना के लिए जीते हैं तिल तुस मात्र परीग्रह का भी त्याग करने वाले निर्ग्रन्थ संत जगत पूज्य हो जाते हैं। क्योंकि त्याग ही महान बनाता है। यदि आंख से टूटकर एक छोटा सा बाल भी आंख में चला जाए तो बाधा उत्पन्न करता है छोटी

सी चींटी हाथी की सूंड में चली जाए तो हाथी मर जाता है । इसलिए संत थोड़ा सा भी परीग्रह आत्म साधना में बाधक मानते हुए त्याग कर देते हैं ।

संत ऐकीनाथ संपूर्ण वस्त्रों का त्याग कर आत्म साधना में निमग्न थे । एक भक्त आया बोला भगवन् आप नग्न क्यों रहते हैं मैं आपको लंगोटी लाये देता हूँ । संत ने मना किया परंतु भक्त का आग्रह जारी रहा । संत ने सोचा मेरी दिन-रात इतनी सेवा करता है भक्त की प्रार्थना स्वीकार कर लेता हूँ । अतः ! लंगोटी रख ली । कुछ दिन में मैली हो गई, जब मैली हुई तो भक्त ने दो लादी ताकि पहली वाली धुल सके ।

कुछ दिन बाद चूहे ने काट दी । चूहे से लंगोटी की रक्षा हेतु बिल्ली रखी गई । बिल्ली दूध पीती थी इसलिए दूध के लिए गाय रख ली । गाय को खाने के लिए घास चाहिए । घास के लिए खेत बनाया गया । पानी बरसेगा तो गाय कहाँ रहे इसलिए एक घर बनवाया गया । मकान तो बन गया अब दूध कौन निकाले, खेत कौन संभाले इसलिए भक्त ने कहा- संत जी घर है तो घरवाली भी होनी चाहिए । संत सोच में पड़ गये ये सब तो ताम-झाम मेरे पास पहले भी थे । मैं छोड़ कर क्यों आया सारी समस्या की जड़ ये लंगोटी है और वे वापस लंगोटी का त्याग कर देते हैं ।

यही कारण है कि निर्ग्रन्थ संत संपूर्ण परिग्रह के त्यागी होते हैं । एक बार किसी ने पूछा- महाराज नग्न क्यों रहते हो ? महाराज ने कहा- जब आया था तो नग्न ही आया था संसार से जाऊँगा तो नग्न ही जाऊँगा । जब मेरा कुछ है ही नहीं तो व्यर्थ का परिग्रह क्यों लादें । संतों की त्याग, तपस्या साधना की कीमत है देखना है तो उनके गुण देखो- उनके शरीर को या नग्नता को नहीं ।

''जात न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान ।
मोल करो तलवार का, पड़ी रहने दो म्यान'' ॥

साधु का शरीर नहीं ज्ञान को देखो ।

संपूर्ण परिग्रह के त्यागी संतों का मन अति निर्मल होता है ।

एक हिन्दू संप्रदाय में व्यास नाम के ऋषि हुए हैं उनके एक वैरागी पुत्र सुकदेव था वह प्रायः नग्न रहता था । पिता को उसकी साधना पर गौरव था । एक बार पिता व बेटे दोनों देशान्तर में गमन कर रहे थे । रास्ते में सोना पड़ा था व्यास ने तुरंत मिट्टी से ढ़क दिया कि कहीं बेटे का मन चलायमान न हो जाए । बेटे ने यह दृश्य देख लिया वह तो वैरागी था अतः बोला पिता श्री ! आप मिट्टी को मिट्टी से क्यों ढ़क रहे हैं पिता जी बेटे का उत्तर सुन आश्चर्य में पड़ जाते हैं । एक बार व्यास अपने पुत्र के साथ तालाब के किनारे से निकल रहे थे। तालाब में राज कन्याएँ निर्वस्त्र स्नान कर रही थी। जैसे ही वे सामने से व्यास को आता देखती है वे अपना तन वस्त्र से ढ़क लेती हैं । व्यास आगे बढ़ जाते हैं

सोचते हैं मेरा बेटा तो जवान है, नग्न है कहीं उसका मन विचलित न हो जाए इसलिए वृक्ष की आड़ में छिपकर देखने लगते हैं पीछे से सुकदेव आते हैं परंतु वे राज कन्याएँ यथावत् निर्वस्त्र स्नान करती रहती है सुकदेव दृष्टि नीची कर निकल जाते है जब व्यास यह दृश्य देखते हैं तो कन्याओं पर कुपित होते हैं मैं तो वृद्ध हूँ फिर भी मुझे देख तुमने तन ढ़का मेरे जवान बेटे को देख तुमने वस्त्र नहीं ढ़के क्या कारण है ? वे कन्याएँ बोली सुकदेव महान है उसकी दृष्टि में वासना नहीं है इसलिए वे जवान होकर भी वृद्ध, पितृ तुल्य है आप वृद्ध होकर भी नग्नता देखते हैं इसलिए मन आपका वृद्ध नहीं इसलिए हमने तन ढ़का । व्यास लज्जित हुए । बंधुओं ! निर्ग्रन्थ संतो का तन जवान व मन वृद्ध होता है । वे महाराज है जिन्होंने संपूर्ण वासनाओं को अपनी दासी बना लिया, मन पर विजय पा ली है इसलिए वे महाराज है सारी सृष्टि इसीलिए उनके चरणों में नतमस्तक रहती है, सौभाग्य सराहती है । उन्हीं मुनीश्वरों की आज हम आराधना कर रहे हैं । जो सच्चे मन से उन मुनीश्वरों की श्रद्धा, भक्ति, अर्चना करता है वह सब पापों को नाश कर उनके जैसा निर्मल मन वाला बन जाता है अतः आप सच्चे मन से उनकी भक्ति कर अपना जीवन कृत्कृत्य करें ।

इसी भावना के साथ - "1008 वासुपूज्य भगवान की जय"

शरीर का निन्द्य स्वरूप और अज्ञानी का मोह -

पृथक्चेदङ्गनिर्माणं चर्म मांसमलादिकम् ।
सजुगुप्सेऽत्रतत्पुञ्जे मूढात्मा हन्त मुह्यति ॥37॥

अर्थ :- यदि शरीर की रचना का पृथक्-पृथक् विश्लेषण करें तो फिर चमड़ा, मांस और मलादिक को छोड़कर शरीर में और कुछ भी शेष न रहे । बड़े खेद की बात है कि तो भी मूर्ख अज्ञानी पुरुष घृणा सहित चमड़ा और मांसादिक के ढेर रूप इस शरीर में मोहित होते हैं ।

- क्षत्रचूड़ामणी

एक महान व्यक्तित्व

(प्रवचन नं. 18)

★ *मनोरंजन छोड़ मनोमंथन करो तभी मनोभंजन होगा और भगवती आत्मा के दर्शन होंगे।*

★ *सच्चे धर्मात्मा के हृदय में सदैव वात्सल्य के निर्झर फूटते हैं।*

आज हम सभी प.पू. चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर जी महाराज की पुण्यतिथि मना रहे हैं उनकी त्याग-तपस्या की गाथा नहीं गाई जा सकती, वे प्रतिज्ञा में दृढ़ व दयालु प्रकृति के थे । जब फसलों की रक्षा के लिए उन्हें खेत में भेजा जाता था तो वे चिड़ियों को भगाने की बजाय उन्हें पीने के लिए पात्र में पानी भरकर रख देते थे और पीठ देकर बैठ जाते थे ताकि चिड़ियाँ दाना चुग कर पानी भी पी लें । जब फसल आती थी तो सातगौड़ा की फसल सबसे अच्छी आती थी उनकी दयालुता का ऐसा चमत्कार था । पूज्य आचार्य भगवन् अत्यन्त महान थे । परंतु भक्ति में आगम का लोप नहीं करना चाहिए । आप कहते हैं कि शांतिसागर जी से संत परंपरा प्रारंभ हुई है जबकि उनके पहले भी संत थे क्योंकि अभी संत परंपरा विच्छेद नहीं हुई 9वें से 15वें तीर्थंकर के काल में तीर्थ विच्छेद हुआ परंतु भगवान महावीर का तीर्थ अविच्छन्न रहा है यह अवश्य है कि उत्तर में संत कम संख्या में व दक्षिण में अधिक संख्या में थे । आचार्य शांतिसागर जी के पहले सभी मुनि दक्षिणा ही लेते हो, आवरण ही लेते हो ऐसी बात नहीं दक्षिणा की परंपरा भट्टारकों के मठों में रही है यह भट्टारक देवेन्द्र कीर्ति के समय की परंपरा है । परंतु दिगंबर मुनि बनने के बाद मठ, चंदा चिट्ठा नहीं होता था । कुंभोज बाहुबली जब हम पहुंचे तो हमने पूछा यह नाम कब पड़ा ? बाहुबली की प्रतिमा की स्थापना से पहले भी यह था कुंभोज एक ग्राम है यहाँ बाहुबली नाम के महाराज थे उनके नाम से कुंभोज बाहुबली नाम पड़ा वे दिगंबर ही रहते थे । आचार्य आदिसागरजी अंकलीकर आचार्य आदिसागर भौसे, आचार्य आदिसागर बोर गांव आदि और भी मुनि हुए जो तमिल व कर्नाटक के कई स्थानों में रहते थे श्रीमान चंपकलाल जी ने दिगंबर संतों पर पुस्तक लिखी । जिसके अनुसार ब्रिटिश शासन में भी दिगंबर संत थे । मुनि बाहुबली के विषय में उल्लेख मिलता है जब रेत भीषण गर्म होती थी तब सूखी नदी में रेत को तोप, तपस्या करते थे ।

एक बार वे तपस्या कर रहे थे तभी नदी में वहाँ पानी का पूर आया, पानी महाराज के ऊपर तक आ गया । लोग बोल रहे थे- बाबा गेला । कुछ समय बाद पानी चला गया और महाराज ज्यों के त्यों

बैठे पाये गये । ऐसे उत्कृष्ट तपस्वी पहले भी थे अतः आगमिक पद्धतियाँ लोप न हो इसका ध्यान रखें । नहीं तो लोग दिगंबरत्व की प्राचीनता पर प्रश्न चिन्ह लगा देंगे । आप अपनी ही कथनी में स्वयं फंस जाएगें । प. पू. आचार्य शांतिसागर जी सरल प्रकृति के थे एक बार महाराज का विहार निमाज की ओर हो रहा था । जब महाराज का निमाज में प्रवेश होने वाला था । तब वहां के ठाकुर ने मुख्य द्वार बंद कर दिया जब ठाकुर की माँ को यह पता चला तो उसने अपने बेटे को बहुत फटकारा तूने ऐसा क्यों किया ? यदि तूने उनके लिए दरवाजा बंद किया तो दुनियाँ के सारे दरवाजे तेरे लिए बंद हो जायेगें । बेटा घबराया, महाराज तो विपरीत दिशा में गमन कर गये थे, परंतु ठाकुर महाराज के पीछे गया और महाराज के पैर पकड़ लिये, उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर महाराज ने वापिस निमाज के लिए प्रस्थान किया ।

यह महाराज की सरलता का ही परिणाम था । प. पू. आचार्य शांतिसागर जी ने आध्यात्मिक व सामाजिक कार्य भी किये हैं उनके महान उपकारों को हम नहीं भूल सकते । वे वात्सल्य स्वभावी भी थे आचार्य शांतिसागर जी क्षाणी, आचार्य शांतिसागर दक्षिण दोनों के विचार पृथक होते हुए भी वात्सल्य के साथ एक साथ चातुर्मास हुए । साधु एक हैं, समाज एक है धर्म एक हैं । फिर हम भेद क्यों खड़े करें । प. पू.आचार्य आदिसागर जी अंकलीकर की सल्लेखना के समय प.पू. आचार्य शांतिसागर जी भी शेडवाल से ससंघ आयें । उस समय दोनों आचार्यों में परस्पर प्रेम, वात्सल्य की चर्चा आज भी गांव के वृद्ध श्रावकों के मुख से हमें सुनने मिलती हैं ।

प.पू. आचार्य देशभूषण जी के आस्था व चिंतन, नामक ग्रंथ में उल्लेख मिलता है कि आचार्य शांतिसागर द्वारा त्रिकाल वंदनीय आचार्य आदिसागर जी हैं ।

हम लोग भोजग्राम भी होकर आये हैं उसके पास ही के एरगुल में आपका जन्म हुआ तथा भोज में निवास था । सातगौड़ा आचार्य आदिसागर जी को आहार के उपरांत जब वेद गंगा व दूध गंगा से पार कराते थे तो बीच नदी में पहुँच कर सातगौड़ा प्रमोद वश कहते भगवन् मैं आपको यह वेद गंगा पार करा रहा हूं तो आप मुझे भी भव पार लगाना । आचार्य भगवन् ने कुंथलगिरि में यम सल्लेखना धारण की । यद्यपि मुक्तागिरि की भावना थी परंतु समय नहीं होने से कुंथलगिरि को ही समाधि स्थली चुना । हजारों लाखों लोग उपस्थित थे 36 दिन तक सल्लेखना साधना चली ।

उनकी सल्लेखना हमें उदाहरण देती है कि दिगंबर संतों की तपस्या साधना महान होती है । 36 दिन की सल्लेखना में 25 वें उपवास में उनका 22 मिनट का संबोधन हुआ बीच बीच में ॐ नमः सिद्धेभ्यः ! बोलते जाते थे जो उनकी परमात्म भक्ति व सजगता का प्रतीक था । अपने जीवन काल में प.पू.चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांति सागर जी महाराज ने कठोर तप साधना की हैं, लगभग 8-9

हजार उपवास अपने जीवन में किये । साथ ही अनेकों उपसर्ग व परीषहों को भी सहा । एक बार चींटीयों ने उपसर्ग किया लगभग 3 दिन चला । एक बार सर्प उनके सामने अपना भय दिखाने आया परंतु नतमस्तक होकर चला गया । ऐसे महान तपस्वी, वात्सल्य स्वभावी पूज्य आचार्य भगवन् थे । प्राचीन आचार्यों में पारस्परिक प्रेम, वात्सल्य अनुपम था । परंतु आश्चर्य हैं कि हम आज दिगंबरत्व को न देख मात्र वेश और परंपरा को देख रहे हैं और आचार्यों में भेद खड़े कर रहे हैं । जबकि आचार्य शांतिसागर जी एक तपस्वी ही नहीं अपितु वात्सल्यता की प्रतिमूर्ति थे । प्राचीन आचार्यों का मिलन सदैव प्रेम व वात्सल्य के साथ हुआ है तथा पूर्व आचार्य संघ पारस्परिक साधना में एक दूसरे के सहयोगी रहे हैं सल्लेखना समाधि का अवसर हो या अन्य कोई कार्य सदैव पारस्परिक वात्सल्य का ही नीर बहाया है प.पू. आचार्य शांतिसागर जी महाराज ने अपने ज्येष्ठत्व का दंभ कभी नहीं भरा वे तो कहते हैं थे कि हे परमात्मा ! इतनी कृपा करना कि 3 कम 9 करोड़ में मेरा अंतिम नबंर हो यह महान पुरुषों की महानता और लघुता है परंतु आज हम उनके दिये वात्सल्य, एकता, प्रेम व संगठन के सूत्रों को भूलकर बड़े छोटे के झमेले में फंसकर अपने सम्यग्दर्शन को मलीन कर रहे हैं । यदि गहराई से विचार किया जाए तो इन बातों में कुछ भी तथ्य नहीं छिपा, व्यर्थ की संकीर्णताओं में फंसकर हम स्वयं अपने दिगंबरत्व को पीछे धकेल रहे हैं । अपने हाथों हम अपना ही अहित कर रहे हैं । यदि इन संकीर्णताओं को तिलांजलि दे मिलकर हम सब दिगंबरत्व को ऊपर उठाने हेतु कुछ प्रयत्न प्रयास करें तो अवश्य सफलता मिलेगी ।

सम्यग्दर्शन की निर्मलता के साथ-साथ हमारा जिन धर्म सर्वोच्चता के शिखर को छूता नजर आयेगा ।

अंत में, आज के पुनीत अवसर पर त्रय भक्तिपूर्वक प.पूज्य आचार्य भगवन् के चरणों में नमोऽस्तु करते हुए हम भावना भाते हैं कि हम भी आपकी ही तरह दृढ़ता से अपनी साधना को अंतिम लक्ष्य तक ले जाकर कर्मों का क्षय करें ।

इसी भावना के साथ - "1008 महावीर भगवान की जय"

- आत्मा में ज्ञान तो सभी के होते है । परंतु धन्य हैं वे जिनके ज्ञान में आत्मा होती हैं ।
- पापोदय में भी धर्मात्मा वात्सल्य करने योग्य ही हैं ।
- भोगों से नहीं, भोगी बनने से डरो ।

क्षुधा परीषह जय

(प्रवचन नं. 19)

> ★ *समता के सुमन जहाँ खिल जाते हैं वहाँ से उपसर्ग और परीषह वैसे ही पलायन करते हैं जैसे बिल्ली को देख चूहे ।*

कलौ काले चले चित्ते देह चान्नादि कीटके ।
एतत्वित्त चमत्कार: जिन रूप धरा नरा ॥

बंधुओं ! महाभीषण कलिकाल वर्तमान में प्रवर्तमान है और काल दोष से जहां प्राणी का चित्त अतिचंचलता को प्राप्त हो रहा है तथा शरीर जहां अन्न का कीड़ा बना हुआ है । यदि एक टाईम भी खाने को न मिले तो मुखमण्डल की कांति क्षीण हो जाती है, मुख कमल मुरझा जाता है । ऐसे भीषण समय में यदि कोई मनुष्य जिनरूप, यथाजात वेश, दिगंबर मुनि दशा को धाारण कर लें तो इस कलिकाल का चमत्कार ही कहेगें ।

आज का मानव अन्न का कीड़ा है बिन खाये-पीये, दो कदम चलने की भी शक्ति शरीर में नहीं रहती, बिना खाये-पीये कुछ काम भी नहीं हो सकता ऐसे भीषण कलिकाल में भी संतजन जब भिक्षा वृत्ति को निकलते हैं तो एषणा समिति का पालन करते हैं । 46 दोष व 32 अंतराय पाल कर आहार करते हैं । कदाचित् लिया गया अवग्रह पूर्ण नहीं हुआ तो उपवास करते हैं और यदि अवग्रहपूर्ण भी हो गया, आहार शुरू भी हो गया ओर बीच में ही बालचंद जी आ गये अथवा जीवराजा चले आये तो अंजुली खोल कर बैठ जाते हैं । अथवा हो सकता है कोई सामग्री लेना तो चाहते थे, परंतु श्रावक ने नहीं चलायी, ग्रास पर्याप्त नहीं चलाये या पानी पर्याप्त नहीं चलाया तो भी समता से बैठ जाते हैं । अल्प आहार मिलने पर भी खेदखिन्नता मन में नहीं लाते अपितु समता रस का पान करते हैं । यदि आहार की बेला निकल जाए और बहुत क्षुधा भी सता रही हो तो भी अकाल में वे कभी भी आहारार्थ नहीं जाते अथवा जो देश भिक्षा के योग्य न हो, मुनिचर्या को जानने वाले न हो ऐसे देश कालादि में भी वे आहार के लिए नहीं उठते । अंतराय हो जाने पर अथवा पर्याप्त मात्रा में आहार न होने पर भी वे अपने आवश्यकों में प्रमाद नहीं करते । अपने षट् आवश्यकों का निरतिचार, निर्दोष पालन करते हैं । समता, वंदना, स्तुति, प्रतिक्रमण, कार्योत्सर्ग में सदा तत्पर रहते हैं । किंचित् भी प्रमाद भाव मन में नहीं लाते । कि आज भोजन तो हुआ नहीं इसलिए आज मैं भगवान के दर्शन नहीं करूंगा अथवा स्तुति नहीं बोलूंगा, प्रतिक्रमण में नहीं जाऊँगा । इत्यादि प्रमाद भाव को वे संतजन जीत लेते हैं ।

स्वाध्याय व ध्यान भावना में वे सदा लीन रहते हैं हो सकता है महाराज का उपवास हो अथवा अंतराय हो गया हो फिर भी स्वाध्याय व ध्यान में लीन ही हम उन्हें पाते हैं । या तो श्रुताराधना में लीन अथवा आत्म ध्यान में तल्लीन ही मिलते हैं व्यर्थ की गपशप करते उन्हें नहीं पा सकेगें । भोजन का अलाभ होने पर जो ज्ञानामृत भोजन का रसपान करते हैं । कभी-कभी संतजन लंबे उपवास करते हैं । अथवा कई दिनों के अंतराय हो गये हैं । फिर भी आखिर ऐसी कौन सी शक्ति है जिसके बल पर वे टिके रहते हैं तो एक मात्र ज्ञान और वैराग्य शक्ति है जो उन्हें बल प्रदान करती है वे ज्ञान के बल से आत्मा के अनशन स्वभाव का आश्रय लेते हैं । वास्तव में भोजन ग्रहण करना यह आत्मा का स्वभाव नहीं आत्मा अशन नहीं अपितु अनशन स्वभावी है । जिन पुद्गल वर्गणाओं को आहार रूप में हम आज ग्रहण कर रहे हैं वे वर्गणाएँ इस जीव ने अनंतों बार ग्रहण की व छोड़ी है । फिर भी आज तक उनसे यह मन तृप्ति को प्राप्त नहीं हुआ । तो आज यदि मैं इसकी पूर्ति कर भी दूँ तो भी यह मन तृप्त कहा होने वाला है क्योंकि तृष्णा रूपी गड्ढ़ा कभी भरता ही नहीं है । कवि ने पूजा की लाईनों में कहा भी है-

तृष्णा की खाई खूब भरी पर रिक्त रही वह रिक्त रही ।

तृष्णा रूपी गड्ढा तो इतना बड़ा है कि चाहे जितना भी भर लो, विश्व की सारी आहार सामग्री भर दो वह गड्ढा कभी भरने वाला नहीं है । कितना भी खिलाओ पर दो बिलस्त का यह पेट कभी भरता नहीं । यहाँ भरा वहाँ खाली । बस जब ऐसा चिंतन संतजन करते हैं तो आत्मबल जाग्रह हो जाता है कि हाँ, मैं इस क्षुधा को सहन करूँगा और इस प्रकार सोच कर वे स्वकृत व परकृत अनशन व अवमौदर्य तप को करते हैं । नीरस आहार ग्रहण करते हैं आप से कहा जाए कि आज भोजन में सब कुछ है मात्र नमक नहीं है तो एक ग्रास भी आपके गले के नीचे नहीं उतरता क्योंकि नमक सब रसों का राजा है । जिसे 'रसराज' भी कहते हैं । और संतजन अपनी प्रज्ञा की कसौटी पर कसकर तत्वाश्रय लेते हैं । एक ही रस क्या दूध, दही, दही, घी, शक्कर, तेल, नमक सभी रसों का परित्याग बुद्धिपूर्वक, स्वेच्छा से कर देते हैं । अत्यन्त गरम बर्तन में गिरी जल की कतिपय बूंदोंके समान जिनका गला सूख रहा है क्षुधावेदना की उदीरणा हो रही है इतना होने पर भी जो भिक्षा लाभ की अपेक्षा उसके अलाभ को ही गुणकारी मानते हैं वे संत जन यही विचार करते हैं । अनादिकाल से इस जीव ने इतना खाया, इतना खाया कि यदि उस आहार को एकत्रित करें तो कई पहाड़ के पहाड़ खड़े हो जायेगें, इतना आहार भक्षण करके भी आत्मा तृप्त नहीं हुई । तो क्या 1/2 किलो अनाज से तृप्त हो जायेगी । कैसे हो सकती है बस ऐसा विचार कर वे क्षुधा से होने वाली पीड़ाओं को भी समता व निःसंक्लेशता पूर्वक सहन कर लेते हैं यही उनका ''क्षुधापरीषह जय'' है । क्षुधा सही न जा रही हो

जहाँ पर वहाँ क्षुधा की वेदना के विषय में तो सुभाषित कारों ने यहाँ तक कह दिया कि-

''भूख न देखे झूठी पात''

जब क्षुधा की तीव्र उदीरणा होती है और प्राणी क्षुधा वेदना सह नहीं पाता तो वह दूसरों की झूठी पातल को भी चाट लेता है । आपने भिखारियों को देखा होगा जब उन्हें भूख सहन नहीं होती । तो वे पार्टी आदि स्थलों पर जाकर बड़े-बड़े लोगों की झूठी प्लेटों में पड़े अन्न को भी खा जाते हैं । क्षुधा की असहनशीलता भी तो अधिक है । क्षुधा सहन न हो सकने पर एक प्राणी दूसरे प्राणी का भक्षण कर लेता है । यह तो आपने सुना होगा परंतु एक प्राणी जिसे "ribbon-worm" कहते हैं ।

उसे जब तेज भूख लगती है और वह भूख को सहन नहीं कर पाता तो वह अपने आपको ही खा लेता है । यह तो क्षुधा वेदना की पराकाष्ठा मालूम पड़ती है कि प्राणी स्वयं को ही खा जाए ।

परंतु ऐसी तीव्र से तीव्रतम वेदना को भी संतजन समता व ज्ञान रूप जल का आश्रय लेकर सहजता से सह लेते हैं । 1-1 माह के उपवास कर आज के विज्ञान को भी चुनौती दे देते हैं । कि हाँ, हम इस भीषण पंचम काल में भी ज्ञान व ध्यान के बल से ''क्षुधा परीषह जयी'' हैं । धन्य है वे महासंत जो ऐसी कठोर साधना कर सबको विस्मय में डाल देते हैं तथा जिनधर्म की महिमा का प्रकाश सब ओर फैलाते हैं । हम उनके आदर्शों पर चलकर उन्नति के पथ के पथानुगामी बनें ।

इसी भावना के साथ - ''1008 महावीर भगवान की जय''

शरीर संबंधी मोह का कारण -

अज्ञानमशुचेर्बीजं ज्ञात्वा व्यूहं च देहकम् ।

आत्मात्र सस्पृहो वक्ति कर्माधीनत्वमात्मनः ॥39॥

अर्थ :- अज्ञान स्वरूप अपवित्र मल-मूत्रादिक का कारण तर्कणारहित विचारशून्य शरीर को जानकर भी इसमें चाह होना आत्मा का अपनी कर्माधीनता को ही बताता है अर्थात् शरीर से मोह करने वाला अज्ञानी जीव स्वयमेव ही प्रसन्नतापूर्वक कर्म के आधीन हो रहा हैं । कर्म ने जीव को अपने आधीन नहीं बनाया हैं ।

- क्षत्रचूड़ामणी

प्रज्ञा परीषह जय

(प्रवचन नं. 20)

★ अभिमान कृतघ्नता की ओर ले जाता है जबकि विनय कृतज्ञ बनाती हैं। विनयवान ही ऊचाईयों को पाता है। लघुता ही प्रभुता प्रदान करती हैं।

मुक्ति पथ अनुरागी परम दिगंबर संत जब अपनी आत्म साधना में उतरते हैं तो जीवन में कष्टों, मुसीबतों, दुखों को स्वयं आमंत्रण देते हैं और इसलिए अविपाक निर्जरा करते हैं । हम तो उन कष्टों का प्रतिकार कर देते हैं । परंतु संत कष्टों का प्रतिकार नहीं करते अपितु समता के साथ सहन करते हैं । वे सदा ज्ञान, ध्यान व तप में लवलीन रहते हैं । कभी माला तो, कभी स्वाध्याय तो कभी उपवास । एक पल भी व्यर्थ में गपशप में गंवाते नहीं, प्रयोजनवशात् ही उनके श्री मुख से वचन प्रवृत्ति होती है अन्यथा मौन ही रहते हैं उनकी ज्ञानराधना के प्रभाव से कभी-कभी विशेष क्षयोपशम प्रकट हो जाता है । अंग पूर्व का ज्ञान भी प्रकट हो जाता है ।

यद्यपि यह बिल्कुल सत्य है ज्ञान को झेलने के लिए भी शक्ति चाहिए । यदि वीर्य/बल नहीं हो तो ज्ञान का संरक्षण भी संभव नहीं । विशेष क्षयोपशम के बल से न्याय, व्याकरण, आगम, अध्यात्म, सिद्धान्त के पारगामी प्रकाण्ड विद्वान हो जाने पर भी वे उस ज्ञान का अभिमान नहीं करते । उनके अंदर की यह निरभिमानता व सहजता ही "प्रज्ञा परीषह-जय" का हेतु बनती हैं ।

बंधुओं ! प्रायः देखा जाता है कि व्यक्तियों को थोड़ा सा ज्ञान हो जाता है चार शास्त्रों को रट लेते हैं तो आपस में बातें करने लगते हैं मैं तो बहुत बड़ा ज्ञानी, ध्यानी हूँ । मेरे जैसा प्रज्ञावान कोई दूसरा नहीं तथा दूसरे की ओर ईशारा कर बोलते हैं यह तो निरा-अज्ञानी है, कुछ भी नहीं जानता । परंतु ऐसे लोग भूल जाते हैं कि तुम्हारें पास है ही क्या ? और जो कुछ है भी वह सब पराया माल है । आप ने कहाँ से सीखा जो तीर्थंकरों की वाणी न होती, शास्त्रों में न लिखा होता और गुरुओं ने प्रतिपादन न किया होता । तो तुम कहाँ से सीख जाते । अभिमान कृतध्नता की ओर ले जाता हैं मिथ्याभिमान में आकर व्यक्ति अपने पूज्यों के उपकारों को भूल जाता है और कृतघ्नी बन जाता है सोचिए आप पहले क्या थे ? और आपके पास क्या था ? जो गुरु चरणों में न आये होते तो ज्ञान कहाँ से प्राप्त होता, आज जो आपके पास है उसका स्त्रोत क्या है ? स्त्रोत महत्वशाली होता है आपने पहाड़ों पर बहती जल की धारा अवश्य देखी होगी water journey आपने की होगी देखने में सुंदर, मनमोहक लगता है परन्तु वह water fall कहाँ से हो रहा है तो अवश्य ही कोई न कोई चट्टान पत्थर से होता है जहाँ से पानी फूटता है यदि पानी अभिमान करें कि मैं सुंदर हूँ दुनियाँ मुझे देखना पसंद करती है तो पानी

को नहीं भूलना चाहिए कि तुम आये कहाँ से हो ? तुम्हें किसने अपने गर्भ में रखा, उसकी ही महिमा है । हे पानी ! तुम अपनी जननी को कैसे भूल गये । यदि जननी के अस्तित्व को विस्मृत किया तो तुम्हारी कुछ भी कीमत नहीं रहेगी ।

बस ! अज्ञानियों की दशा भी कुछ ऐसी ही है । वे भी ज्ञान का मिथ्याभिमान कर बैठते हैं जबकि जो वास्तविक ज्ञानी, आत्म विज्ञानी होते हैं वे मिथ्याभिमानी नहीं होते, अपितु लघुता व विनयवान होते हैं ऐसे आत्म विज्ञानियों के पास आप बैठेगें तो यही कहेगें कि मैं तो कुछ नहीं, गुरु चरणों की धूली ही बन जाऊँ तो बहुत है । आज आप को जो दिख रहा है सब गुरु का है हम तो मात्र संदेश आप तक पहुँचाते रहते हैं । जो गुरु न मिलते तो राह की मिट्टी से अधिक कुछ नहीं था गुरु रूपी कुम्हार की दृष्टि पड़ गई उन्होंने उठा लिया और आज जो मूर्ति दिख रही है वह कुम्हार की ही कला कौशलता का परिणाम है । जो प्रज्ञा दिख रही है वह गुरु का ही प्रसाद है और कुछ नहीं ।

संत जन चिंतन "प्रज्ञा-परीषह" को सहने हेतु इस प्रकार करते हैं कि अक्षर-अक्षर से मिलकर शब्द बनते हैं, शब्द-शब्द से मिलकर वाक्य बन जाते हैं । वाक्यों के परस्पर मेल से शास्त्र बन गया है। मैंने किया ही क्या है ? ऐसा उत्कृष्ट चिंतन बड़े-बड़े ग्रंथों का लेखन करने वाले आचार्य भगवन्तों का होता है । तीसरे चिंतन की धारा में वे जब उतरते हैं तो सोचते हैं यह क्षयोपशमिक ज्ञान क्षण भर का है कब तक रहेगा, कब चल देगा कोई भरोसा नहीं । क्षयोपशमिक ज्ञान कभी एक सा नहीं रहता घटता-बढ़ता रहता है । जो अपना वास्तविक स्वभाव ही नहीं है उसका क्या अभिमान करना । अपना तो स्वभाव क्षायिक ज्ञान है । क्षयोपशमिक ज्ञान विभाव दशा है और विभाव तो नियम से छूटता ही है जो छूटता ही है उसका क्या अभिमान करना और जिस दिन केवलज्ञान की प्राप्ति होगी उस समय क्या तो ज्ञानी क्या अज्ञानी सभी का ज्ञान समान हो जाता है । चाहे तीर्थंकर केवली हो या सामान्य केवली, मूक केवली हो या उपसर्ग केवली । केवलज्ञान की अपेक्षा सब समान है उनके अनंत गुणों में रंच मात्र भी अंतर नहीं होता । सभी समान हो जाते हैं आज छद्मस्थ अवस्था में थोड़ा क्षयोपशम विशेष होने से कुछ प्रज्ञा प्रकट भी हो जाए तो क्या बड़ी बात है ।

और उसका अभिमान करने वाला ज्ञानी कैसे हो सकता है वह तो अज्ञानी की कोटी में ही आयेगा । क्योंकि वास्तविक ज्ञानी की यही पहचान है कि वह सत्य को जानता है इसलिए अभिमान से रहित होता है । ऐसा अनुपम व उत्कृष्ट चिंतन करने वाले वे 'आत्म-विज्ञानी' ही "प्रज्ञा-परीषह जयी" होते हैं । वे जानते है अभिमान नियम से गिराता है अभिमान करने से सारी कला-कुशलता, प्रज्ञा कपूर की भाँति उड़ जाती है इसलिए वे संत मिथ्याभिमान का त्याग कर देते हैं । ऐसे "प्रज्ञा-परीषह जयी" महासंतों के चरण कमलों में हम अत्यंत भक्ति से बारंबार नतमस्तक होते हैं और यही भावना भाते हैं कि आप जैसी पवित्रता व निर्मलता हमें भी प्राप्त हो ।

इसी भावना के साथ - "1008 महावीर भगवान की जय"

रोग परीषह जय

(प्रवचन नं. 21)

> ***★ सच्चा वैराग्य ही आत्मा को उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर ले जाता हैं। मोक्षमार्ग पर उठाया वैरागी का हर कदम प्रशस्त होता है और शीघ्र निर्वाण की यात्रा कराता हैं।***

'शरीर' अशुचिता की खानि है । विभिन्न प्रकार के रोगों का घर हैं । इसका संरक्षण भी स्थायी रूप से संभव नहीं है । पूरण व गलन इसका स्वभाव है । प्रायः संसारी प्राणी इस अशुचि देह के श्रृंगार, साज-सजावट में लगा रहता है, पोषण करता है । परंतु संत जन शरीर से निस्पृह होते हैं वे शरीर का नहीं आत्म-पोषण करते हैं ।

चरक संहिता में कहा है-

''देहस्य माध्यम खलु धर्म साधनम्'' ।

संतजन आत्म ज्ञान के लिए धर्म साधना के लिए शरीर को माध्यम बनाते हैं । साधुओं की आहार चर्या को 1. अक्षमृक्षवृत्ति कहा जाता है जिसका तात्पर्य है कि जिस प्रकार वाहन ग्रीस आदि लगाने पर आसानी से चलता है उसी प्रकार साधु जन शरीर चलाने ओघन के रूप में आहार ग्रहण करते हैं 2 व्रण पर लेप के समान- जैसे घाव पर लेपन किया जाता है क्योंकि उसकी अन्य कीड़े आदि से रक्षा करना है उसी प्रकार संत जन आत्म साधना में शरीर सहयोगी बने इसलिए आहार लेते हैं।

यदि आत्म-साधना का प्रयोजन न हो तो संत कभी आहार ही न लें परंतु धर्म साधन रूप महा-प्रयोजन की सिद्धि के लिए आहार लेते हैं । दुनियाँ की अवस्था तो ऐसी है कि जिव्हा पर control ही नहीं है ऐसे लोगों के लिए कहा जाता है-

''अचत नईया, पचत नईया आ जाए तो बचत नईया'' ।

सामग्री पच भी नहीं रही परंतु जिव्हा इंद्रिय के लोलुपी अपच सामग्री को भी ले लेते हैं । यद्यपि संत तो जिव्हा इंद्रिय विजेता होते हैं परंतु कभी-कभी दाता प्रकृति विरूद्ध आहार भी दे देते हैं । तो शरीर से निस्पृह संत उस विरूद्ध आहर के सेवन से वातादि रोग के शिकार हो जाते हैं । और मात्र कोई एक रोग नहीं अपितु सैंकड़ों व्याधियों का प्रकोप होने पर भी जो उनके आधीन नहीं होते । जल्लौषधी आदि ऋद्धि विशेष के उत्पन्न हो जाने पर भी जो रोग का प्रतिकार नहीं करते ऐसे वे महान

निस्पृही संत 'रोग परीषह जयी' होते हैं । पीड़ा होने पर भी वे उसके कारण संक्लेश को प्राप्त नहीं होते अपितु समता का आश्रय लेते हैं सनत कुमार चक्रवर्ती ने जब जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की तब पाप कर्मों के उदय वशात् अचानक उनके शरीर में गलित कुष्ठ व्याधि हो गई । सारा शरीर गलने लगा, शरीर से मवाद-पस निकलने लगी, दुर्गंध युक्त सारा शरीर हो गया । इतनी वेदना होने पर भी महाराज के चेहरे पर वेदना की पीड़ा नहीं अपितु वीतरागता की मुस्कान नजर आती थी । स्वर्गो के देवों में जिनके "रोग परीषह जय" की प्रशंसा चल रही थी । उन महामुनि की परीक्षा करने के लक्ष्य से एक देव, महाराज के चरणों में वैद्य का रूप बनाकर आया है और जहाँ महाराज ध्यान करने बैठे थे वहाँ जाकर जोर-जोर से चिल्लाने लगा हर रोग का शर्तियन इलाज, सौ रोगों की दवा, यहाँ लीजिए वहाँ रोग हवा, यद्यपि महाराज तो ध्यान कर रहे थे परंतु शब्द तो कान में पड़ ही रहे थे । कुछ समय बाद महाराज का ध्यान विसर्जन हुआ जैसे ही वैद्य जी ने देखा महाराज ने आंखें खोल ली है वैद्य ही पहुँच गये महाराज के चरणों में और बोले- नमोऽस्तु महाराज-3 महाराज ने आशीर्वाद दिया । वैद्यजी ने अपनी बात कहना प्रारंभ की महाराज मैं देख रहा हूँ आपको बड़ी पीड़ा हो रही है मेरे पास ऐसी-ऐसी विशेष औषधियाँ है जिनसे पल भर में सारे रोग नष्ट हो जाते हैं । आप कहें तो आपकी भी सेवा कर सकता हूँ । महाराज ने वैद्य जी की ओर देखा भी नहीं । परंतु वैद्य का आग्रह-प्रतिआग्रह तो जारी ही रहा । महाराज ने कहा- वैद्यराज जी आपकी प्रार्थनाएँ तो मैं काफी देर से सुन रहा हूँ । परंतु रोग एक हो तो बताऊँ तीन-तीन रोग मुझे है वे भी सामान्य नहीं, महारोग है । वैद्य जी ने कहा- महाराज आप 3 की बात करते हैं मैं तो एक साथ 3000 भी ठीक कर सकता हूँ । परंतु आप रोगों के नाम तो बताएँ । हाँ, एक रोग जो कि महाभयंकर है वह तो कुष्ठ है, शेष दो रोगों का नाम आप ही बता दीजिए । महाराज ने कहा- वैद्य जी जो एक रोग आपको आंखों से दिख रहा है वह महारोग नहीं है छोटा सा चर्मरोग है। जिसे ठीक करना कुछ कठिन नहीं आसान है । वैद्य जी को कुछ अचंभा हुआ । फिर भी बोले महाराज आप कृपा कर रोग तो कहें । महाराज ने कहा- जन्म, जरा और मृत्यु ये तीन महारोग मुझे अनादि काल से सता रहे हैं । यदि तुम इनसे छुटकारा दिला दो तो तुम्हारी महानता समझूं । वैद्य जी चरणों में माथा टेक लेते हैं । महाराज नमोऽस्तु आपके इन महाभंयकर रोगों का शमन करने में, मैं असमर्थ हूँ । इन रोगों का इलाज तो आप जैसे- निस्पृही 'रोग परीषह जय' महामुनीश्वर ही कर सकते हैं । देव अपने असली रूप में प्रकट होकर महाराज की भूरी-भूरी प्रशंसा करता है । महाराज तो अपनी तपस्या के बल से क्षण भर में संपूर्ण कुष्ठ से रहित हो जाते हैं । तब देव कहता है- कि हे महायति ! यह रोग तो आप पहले ही तपबल से ठीक कर सकते थे परंतु आपने वैसा क्यों नहीं किया तब महाराज बोले- हे वैद्यराज !

हमारे 22 परीषहों में एक 'रोग परीषह जय' भी है । जिसमें न तो रोग पर अपना उपयोग ले

जाते हैं न ही उसका प्रतिकार करते हैं अपितु आने वाली बाधाओं को समता से सहते हैं ।

बंधुओं ! धन्य है वे संत महात्मा जिन्होंने संपूर्ण इंन्द्रियों, उनके विषयों व शरीर को अपना दास बना लिया है और अब सबने जिनकी दासता स्वीकार कर ली है । ऐसे वे संतजन ही रोगों व कष्टों के आने पर मुस्कुराते हैं । सामान्य व्यक्ति तो कष्टों के आने पर हाय-हाय करता है, छाती पीटता है रोता-धोता है, कर्मों को कोसता है, अथवा पर को दोष लगाता है कि इसने मेरा ऐसा बिगाड़ कर दिया । परंतु संत तो पूर्व कर्म के विपाक का ध्यान करते हैं कि हमने जो भी कर्म पूर्व में किए हैं आज उनके विपाक होने पर उसका फल तो हमें भोगना ही पड़ेगा, चाहे हंस के भोगे या रो कर जो ऋण हमने दूसरे से लिया है वह ऋण तो चुकाना ही है । ऐसा सोचकर वे समता धारण कर लेते हैं। इसीलिए संत "रोग परीषह जयी" होते हैं । जबकि गृहस्थ संक्लेशता में समय बिताता है और कर्मों से बंधता है । संत "परीषह-जय" मानकर सहते हैं समता रखते हैं इसलिए शीघ्र कर्मों पर विजय प्राप्त कर लेते हैं । उन वीतरागी संतों के चरणों में शत्-शत् वंदन ।

इसी भावना के साथ - "1008 अजितनाथ भगवान की जय"

अनुकूलता में दीर्घकाल भी क्षण जैसा -

यापितोऽपि महाकालस्तस्य नोद्वेगमातनोत् ।
वत्सलैः सह संवासे वत्सरो हि क्षणायते ॥3॥

- क्षत्रचूड़ामणी 8वाँ लम्ब

अर्थ - बीते हुए बहुत समय ने भी उन जीवन्धर कुमार को कुछ भी खेद भाव नहीं किया । निश्चय से प्रियजनों के साथ रहने में एक वर्ष भी क्षण के समान बीत जाता हैं ।

विशेषार्थ - बाह्य अनुकूलता होने पर रागी जीव को दीर्घकाल भी कुछ क्षणों जैसा ही लगता हैं । इसी कारण स्वर्ग और भोगभूमि में असंख्यात वर्षों का दीर्घ काल कब व्यतीत हो जाता है - इसका कुछ पता ही नहीं चलता । प्रतिकूलताओं में जीवों को अल्प समय बिताना भी कठिन प्रतीत होता हैं ।

यज्ञोपवीत: आज की नहीं प्राचीन परंपरा

(प्रवचन नं. 22)

★ *एक सुसंस्कारित नारी नरक को भी स्वर्ग बना देती है।*
संस्कारवान मनुष्य जहाँ भी जाता है सर्वत्र खुशहाली छा जाती हैं।

यज्ञोपवीत आज की नहीं अपितु शाश्वत व प्राचीन परंपरा है । विदेह क्षेत्र में यह परंपरा प्रचलित है । श्री आदिनाथ पुराण में ऐसा उल्लेख मिलता है कि विदेह क्षेत्र की प्रचलित परंपरानुसार इंद्र ने प्रथम तीर्थेश ऋषभ कुमार को यज्ञोपवीत पहनाया था तथा ऋषभदेव ने भी पंरपरानुसार अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को यज्ञोपवीत संस्कार दिया । महाराज ऋषभदेव ने असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प इन षट् कर्मों का प्रवर्तन किया और क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र इन तीन वर्णों की स्थापना भी की । चौथे ब्राह्मण वर्ण की स्थापना ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र 'भरत चक्रवर्ती' ने की । भरत- चक्रवर्ती के मन में एक दिन किमिच्छिक दान देने का भाव जागृत हुआ । परंतु योग्य पात्र के चुनाव हेतु उन्होंने प्रवेश द्वार पर ही अंकुरण पैदा करवा दिया, घास उगवा दी । अब दान लेने वाले बहुत से लोग तो उस पर पैर रखकर ही आ गये परंतु कुछ लोग ऐसे भी थे जो हरी दूब को देख बाहर ही खड़े रह गये क्योंकि हरी पर वे पैर नहीं रखते थे । क्योंकि दूब में असंख्यात जीव पाये जाते हैं । 'भरत चक्रवर्ती' ने उन लोगों के प्रवेश के लिए दूसरा द्वार खोल दिया । वे दया-करूणा की मूर्ति अष्टमूल गुणों के धारी थे । भरत चक्रवर्ती ने उन्हें किमिच्छिक दान दिया तथा यज्ञोपवीत से सम्मानित भी किया । आदिनाथ भगवान का 82-83 वाँ वर्ष पूर्व के बाद भी 60,000 वर्षों तक यह क्रियाविधि चलती रही परंतु जैसे-जैसे समय बीता धीरे-धीरे यह परंपरा लुप्त सी हो गई । यद्यपि ब्राह्मणों ने इस परंपरा को आज भी कायम रखा है । भरत चक्रवर्ती द्वारा दिया यज्ञोपवीत रत्नत्रय धर्म का प्रतीक चिन्ह था । ब्राह्मणों का तिलक, सिक्खों की चोटी, क्रिश्चियन्स का cross, मुस्लिम की टोपी आदि उन-उन धर्मों के प्रतीक चिन्ह हैं । उसी प्रकार हमारी देव-शास्त्र गुरु के प्रति श्रद्धा के चिन्ह रूप में यज्ञोपवीत होता है ।

सोचिए ! जब अन्य धर्मानुयायी अपने धर्म चिन्हों को नहीं छोड़ते तो हम कैसे छोड़े ? क्या उन्हें चोटी रखने में शर्म नहीं आती, क्या कुछ परेशानी नहीं होती ? होती है परंतु अपनी जाति व परंपरा के संरक्षण हेतु कष्ट सहना मंजूर है । धर्म के संरक्षण में शर्म कैसी ? यदि हम भी अपनी आर्ष परंपरा का संरक्षण करना चाहते हैं तो हमें अपने प्राचीन प्रतीक चिन्ह यज्ञोपवीत को नहीं छोड़ना चाहिए ।

यज्ञोपवीत सदाचार का प्रतीक है 5 उदम्बर, 3 मकार का त्याग ऐसे 8 मूल गुणों के धारण

पूर्वक इसे ग्रहण किया जाता है । यज्ञोपवीत संयम का प्रतीक है । यज्ञोपवीत धारण करने से और भी अनेक लाभ है-

1. मंत्र साहित्य के अनुसार यज्ञोपवीत धारण करने से भूत-प्रेत बाधा नहीं होती, टोना-टोटका का असर नहीं होता तथा नजर भी नहीं लगती हैं ।

2. यज्ञोपवीत धारण करने से hornia जैसी बीमारी भी नहीं होती ।

यज्ञोपवीत धारण, परिवर्तन विधि:-

1. नया यज्ञोपवीत जब धारण करते हैं तो बह्मगांठ को अनामिका व अंगुष्ठ से पकड़ बांयी ओर के हाथ को ऊपर व दाहिना हाथ नीचे कर मंत्रोच्चारण पूर्वक धारण किया जाता है ।

2. नया यज्ञोपवीत हमेशा ऊपर से डाला जाता है ।

3. पुराना यज्ञोपवीत यदि बदलना है तो उसे नया यज्ञोपवीत धारण करने के बाद नीचे से निकाल दिया जाता है । यज्ञोपवीत को छोड़ने का भी मंत्र होता है ।

4. यज्ञोपवीत जीवन पर्यन्त के लिए भी धारण किया जा सकता है और अवधि बनाकर भी धारण किया जा सकता है ।

5. शौच या लघुशंका जाते समय यज्ञोपवीत को कान में लगा दिया जाता है क्योंकि वह रत्नत्रय का प्रतीक व पवित्र माना जाता है । कान में लगाने से कान की कोई नस दबती है जिससे hornia नहीं होता ।

परम पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री 108 विमल सागर जी महाराज ने लगभग 10 प्रांतों में विहार किया तथा सभी जगह जाकर लोगों को यज्ञोपवीत संस्कार दिये । प.पू. आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज जो कि आचार्य विद्यासागर जी के गुरु हैं । उनके बारे में अजमेर के ही एक श्रावक ने बतलाया कि- ज्ञान सागर जी ने उन्हें तथा अन्य लोगों को जनेऊँ परिवर्तन का आशीर्वाद दिया था । कहने का तात्पर्य है कि वे भी इस परंपरा के पोषक रहे हैं ।

पाश्चात्यता में बहकर यदि हम निरंतर ऐसे ही अपनी आर्ष परंपरा की उपेक्षा करते जायेगें तो एक दिन ऐसा आयेगा कि हम अस्तित्व विहीन हो जायेगें और हमारी धर्म संस्कृति ही समाप्त हो जायेगी । इसलिए यज्ञोपवीत की प्राचीन परंपरा की उपेक्षा मत कीजिए अपितु उसके संरक्षण संवर्धन हेतु प्रयत्न व प्रयास कीजिए ।

''धर्म धरती पर स्वर्ग लाता है''

'धर्म' विश्व की सर्वोत्तम उत्कृष्ट कृति हैं, मंगलों में उत्तम मंगल व शरणों में उत्तम शरण है ।

कोई पूछे-परमात्मा बढ़े कि धर्म, परमात्मा प्रधान कि धर्म । तो धर्म की विशिष्टता अलग ही हैं क्योंकि आत्मा से परमात्मा तक की यात्रा धर्म से पूरी होती है धर्म सुख, शांति, आनंद का स्थान हैं ।

गणधर परमेष्ठी प्रतिक्रमण में कहते हैं -

'धर्मः सर्व सुखा करों' ।

अर्थात् धर्म ही संपूर्ण सुखों की खानि है । धर्म से ही सुख मिलता है । धर्म संपूर्ण दुःखों से बचाता है और उत्तम सुखों में पहुँचा देता है ।

धर्म संपूर्ण सुखों को प्रदान करता है । जिनवाणी स्तुति के बाद कहा जाता है -

धरम करत संसार सुख धरम करत निर्वाण ।

धरम पंथ साधे बिना नर तिर्यंच समान ।।

धर्म से संसार सुख तो मिलते ही है निर्वाण सुख तक मिल जाता है । किसान फसल पाने खेत में बीज बोता है । परंतु भूसा सहज ही मिल जाता है वह कितना श्रम करता है । उसके श्रम को देखते हुए नारा लगाया जाता है-

''जय जवान जय किसान''

'किसान'अपने खेत को उर्वरा बनाता है उस हेतु अथक परिश्रम करता है । जमीन जोतता है, दिन-रात एक करता है । यहाँ-वहाँ के खरपतवार को दूर करता है पैरों के कांटे, भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी सब सहता परंतु परिश्रम से हटता नहीं, परिश्रम करता जाता है फिर खेत में खाद, बीज, पानी डालता है फसल की रक्षा के लिए रात्रि जागरण करता है, बार-बार देखता हैं कहीं पानी की कमी तो नहीं हो रही है कीट पतंगे तो फसल को नुकसान तो नहीं पहुँचा रहे । वह सावधानी रखता है एक दिन वह भी आता है कि परिश्रम सार्थक हो जाता है लहलहाती फसल देख वह फूल की तरह फूल जाता है फूला नहीं समाता । और हर्षित मन से बाजार में जाता है चेहरे पर आनंद की चमक होती है बस बंधुओं ! जब हमारे जीवन में धर्म रूपी जमीन को जोत कर उसमें धर्म के बीज को रोपण किया जाता है तो प्रारंभिकता में बहुत मेहनत करनी पड़ती है और बाद में जब वह बीज अंकुरित होता है और धीरे-धीरे पौधे से वृक्ष रूप में परिणत होकर फलीभूत होता है तो जीवन में आनंद व हर्ष की हिलोरे उठने लगती है तथा जिसने वे धर्म के बीज बोये हैं वह बीज बोने वाला लहलहाते वृक्ष को देख फूला नहीं समाता ।

जिस घर में धर्म के बीज का वपन हो चुका है वह घर फिर घर नहीं स्वर्ग बन जाता है । धर्म से ही सदाचार, शिष्टाचार, विनय, मर्यादा आदि गुण विकसित हो जाते हैं तथा धर्मात्मा व्यक्ति को 'देव' आदि प्रशंसनीय शब्दों से सम्मानित किया जाता है ।

एक ऐसा ही धार्मिक परिवार था । उस परिवार में एक बालिका भी थी जो बचपन से ही धार्मिक संस्कारों में पली-बड़ी थी । धार्मिक संस्कारों के कारण न केवल वह बच्ची अपितु उसके माता-पिता भी प्रशंसा पाते हैं । बुंदेलखंड में कहा जाता है-

जहाँ के जैसे नाली-नरदा ताके वैसे भरका ।

जाके जैसे बाप मतायी ताके तैसे लरका ।।

बच्चे का व्यवहार, परिचर्या माता-पिता का दर्शन करा देते हैं जैसे मां बाप होते हैं वैसे बच्चे होते हैं जब बच्चे ऊँचाईयों पर उठ जाते हैं तो माता-पिता का नाम सर्वप्रथम सम्मान से लिया जाता है । वह बच्ची टी.वी., लड़ाई-झगड़ा, गाली-गलौच आदि बुरे संस्कारों से बहुत दूर थी । उठते ही णमोकार जपती थी पंचगुरुओं की भक्ति करती थी फिर माता-पिता के चरणस्पर्श करती थी । जब बेटा सुसंस्कारित होता है तो मां बाप के चरण छूता है और मां बाप का आशीष हाथ भी उस पर रहता है । जब वह बालिका बड़ी होती है तो उसकी शादी हो जाती है परंतु उसके शायद कोई पाप कर्म का उदय था इसलिए धार्मिक परिवार नहीं मिला । वह ऐसे परिवार में आ गयी जहाँ धर्म का नामोनिशान तक नहीं था ।

धर्म तो खोजने-खोजने क्या खोदने-खोदने से भी नहीं मिल रहा था । सास-ससुर धर्म की परिभाषा तक नहीं जानते थे । वह घर की सबसे छोटी बहु थी । वह सातवें नम्बर की बहु थी । जब घर की हालत देखी तो सोचा संस्कारों से रहित घर किसी नरक से कम नहीं । घर के लोगों का पारस्परिक व्यवहार, बर्ताव अच्छा नहीं था । प्रातः काल का शुभांरभ गालियों से होता था मंगल स्तुति की जगह लड़ाई-झगड़े होते थे । एक कहती थी- तू लगा झाड़ू मैं नहीं लगाती । घर में मैं-मैं, तू-तू होती रहती थी । घर क्या था- पहलवानों का अखाड़ा नजर आता था । घर के सारे सदस्य एक से बढ़कर एक नमूने थे कोई तबला तो कोई हारमोनियम बन जाता था । और निरंतर बर्तनों के बाजे बजते रहते थे । और ऐसा ड्रामा होता था कि दर्शक मुफ्त में ही देखने एकत्रित हो जाते थे । भोजन के समय छीना-झपटी होती थी अपशब्दों की बौछार होती थी । वे घर के सदस्य मंदिर, भगवान, गुरु दर्शन, प्रवचन आदि से बिल्कुल अनभिज्ञ थे । संस्कार आये भी तो कैसे ? यदि उस घर के सदस्यों के सामने कोई धर्म चर्चा करे तो कान बंद कर लेते थे । कोई कहता कि यदि धर्म नहीं करोंगे तो नरक जाओगे तो वे कहते कोई बात नहीं हम नहीं गये तो नरक खाली रह जायेगा । किसी न किसी को जाना चाहिए महाभारत तो रोज उस घर में देखने मिलती थी ।

जब उस धार्मिक कन्या ने ऐसा माहौल देखा तो बहुत दुःखी हुई और बिना दर्शन के भोजन नहीं किया । बस घर के नजारे ही देखती रही कि क्या चल रहा है देखते-देखते वह थक गई । परंतु वह

बहु कमजोर नहीं थी इसलिए रोई धोई नहीं और न ही पड़ौसियों से शिकायत ही की । घर की बात घर में रखी अपने माता-पिता से कुछ नहीं कहा वह तो सुसंस्करों में पली बड़ी, सुशिक्षित व साहसी थी । दूसरों को दुःख देना गंवारा नहीं था समझ में नहीं आ रहा है इसलिए माता-पिता से नहीं कहा । ऐसी बात नहीं थी । वह समझदार तो थी ही सोचा कोई बात नहीं यदि जैसे ये हैं ऐसी ही बहु आ जाती तो इनका उद्धार कैसे होगा ऐसा सोचकर उसने मन को शांत किया और युक्ति को खोजा- वह देखती है कि जिसका भोजन बनाने का नंबर है वह तो अपने लिए अच्छी पतली-पतली रोटियाँ बनाता है और दूसरों को मोटी जली खराब बनाता था । अपने कपड़े, अच्छे, दूसरों के पानी में से निकाल देते थे । स्वार्थ वृत्ति एक-एक सदस्य में थी । उसने सोचा इनको लाईन पर लाना है तो इनके मन की संकीर्णताओं को दूर करना होगा इस हेतु वह स्वयं झुक जाती है ।

बंधुओं ! ध्यान रखना जो झुकता है उसकी झोली नियम से भरती है । सबसे पहले वह सासू के चरणों में झुक जाती है पैर दबाती है तथा माँ का सारा काम स्वयं अपने हाथ में ले लेती है । सास को बड़ा आश्चर्य होता है कि आज तक किसी बहु ने ऐसा नहीं कहा कि आपका कुछ काम कर देती हूं यह पहली बहु है जो इतनी नरम हैं । सास का प्रेम छोटी बहु पर बढ़ता जाता है एक दिन बहु कहती है माँ क्या आप मेरी एक बात मानेगी सास तो बहु से बहुत खुश थी बोली- बेटा ! तेरी न मानूंगी तो किसकी मानूंगी । एक तो बहु के हाथ आया । अब बहु का दूसरा निशाना बड़ी जेठानी थी । वह बड़ी जेठानी के पास पहुँचती है पहले उसकी बहुत प्रशंसा करती है फिर कहती है दीदी आप क्यों इतना परेशान होती है मुझे सेवा का अवसर दें आपके कपड़े धोने का काम अब मैं करूंगी । जेठानी स्वार्थी थी सोचा- अच्छा है मुफ्त की नौकरानी मिल गई । उसने हाँ बोल दिया । छोटी बहु खुश हो गई सबके कपड़े आज तो चमक रहे थे । जेठ हो या जेठानी सबके चेहरे प्रसन्नता से खिले थे । उसने भोजन बनाने का काम भी स्वयं पे ले लिया और उसके हाथ का भोजन करने वाले अंगुलियाँ चाटते थे । रोज-रोज साफ कपड़े और स्वादिष्ट भोजन खाने मिलने लगा और झुकने का परिणाम झोली भर गई हर एक के मुख पर छोटी बहु की प्रशंसा जेठानियाँ कहती- हमारी छोटी देवरानी तो लाखों में एक है जेठ कहते- साक्षात् सरस्वती है । सब उससे खुश थे । इतनी पढ़ी लिखी है फिर भी अभिमान की एक रेखा भी नहीं ।

'विनय' ऐसा गुण है जो सबके दिलों पर राज करता है । छोटी बहु सोचती है परिवार मेरे अनुकूल हो चुका है तो एक दिन उसने सबके बीच अपनी बात रख दी आप मेरे जेठ हैं पूज्य हैं क्या आप मेरी एक बात मानेंगे सबने एक स्वर में हाँ कर दिया क्योंकि उसने सबके दिलों को जीत लिया था । उसने कहा- मैंने 8 जोड़ी कपड़े सोले में डाल दिये है । आप सबको प्रातः काल नहा धोकर सोला पहनकर मंदिर चलना है मंदिर सब एक दूसरे का मुंह ताकने लगे क्योंकि पहले कभी गये नहीं

थे । परंतु बहु का कहना नहीं टाल सकते इसलिए सब तैयार हो गये । प्रातः काल 8 जोड़े यानि कि 16 जन सोला पहन चल दिये मंदिर । मंदिर में प्रवेश करते ही बहु बोली- जैसा-जैसा मैं करूं वैसा-वैसा करते जाना । उसने घंटा बजाया और ॐ जय जय जय, नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु, निःसही निःसही निःसही बोली सब ने अनुसरण किया बहु ने चावल वेदी पर चढ़ाये भगवान को धोक दिया सबने वैसा ही किया बहु ने देव दर्शन स्तुति पढ़ी । कायोत्सर्ग किया सबने स्तुति सुनी । बहु ने भक्ति से भगवान की पूजन की सबने ध्यान से देखा और पूजन पहली बार सुनी । कोकिला कण्ठ से पूजन सुन सारे सदस्य प्रमुदित हुए । उसी मंदिर में महाराज भी थे । वह बहु सबको महाराज के दर्शनार्थ ले गई महाराज को धोक दिया महाराज ने आशीर्वाद दिया । सबने प्रवचन सुने पश्चात घर आ गये । बहु ने उन्हें पुनः दूसरा सोला दिया सबने पहन लिया और वापिस मंदिर ले गई 8 ही जोड़े महाराज के पड़गाहन को खड़े हो गये । बहु ने पड़गाहन की विधि बोली- हे स्वामिन् नमोस्तु- नमोस्तु- नमोस्तु अत्र अत्र अत्र, तिष्ठ तिष्ठ तिष्ठ तभी सामने से आते महाराज दिख गये सभी ने बहु के वचनों को दुहराया यद्यपि पड़गाहन विधि नहीं जानते थे बस बहु की नकल करते जा रहे थे सबके सिर पर 1-1 श्रीफल सहित कलश था । महाराज की विधि भी यही थी 8 जोड़ो से पड़गूंगा । जैसे ही महाराज-छोटी बहु के पास खड़े हो गये सभी ने परिक्रमा लगाई । बहु ने शुद्धि बोली सब ने वापिस बोली और महाराज को घर ले गये । नवधा भक्ति पूर्वक आहार कराया । चूंकि आहार सबने पहली बार दिया था इसलिए आनंद की सीमा नहीं थी । निरंतराय आहार हुए महाराज ने सबको नियम दिये । हर्ष से सबने नियम लिये । महाराज को छोड़ने के बाद जब वे घर आये तो एक साथ बैठकर पहली बार सबने भोजन किया । आठों जोड़ों के चेहरों पर प्रसन्नता थी । आज जैसा तो स्वाद भोजन में कभी नहीं आया ।

बहु ने कहा यह दाल रोटी का नहीं धर्म का स्वाद आ रहा है धर्म ऐसी ही वस्तु है जो हमारे नीरस जीवन को सरस बना देती है अब वह नरक धर्म के प्रवेश होते ही स्वर्ग में बदल गया । महाभारत की जगह रामायण की कथा होने लगी । तथा सुप्रभात णमोकार से होने लगा । घर की काया पलट हो गयी ।

बंधुओं ! एक सुसंस्कारित धार्मिक नारी नरक को स्वर्ग बना देती है जो घर अब तक श्मशान घाट था । वह गुरु चरण पड़ते ही स्वर्ग में बदल गया । धार्मिक संस्कारों से सुवासित यदि घर की नारी है तो वह नरक को भी स्वर्ग बना देती है अतः अवश्य ही ऐसे धार्मिक संस्कारों को आप अपने जीवन में उतारते हुए बालिकाओं को दें । नारी एक मध्य दीपक है जो दोनों कुलों को प्रकाशित करती है और धरती पर जन्नत को ला देती है । अतः धर्माचरण कर जीवन को सफल बनायें ।

इसी भावना के साथ- "1008 श्री मुनिसुव्रत नाथ भगवान की जय"

वात्सल्य पर्व : रक्षा बंधन

(प्रवचन नं. 23)

★ *जहाँ दृष्टि रत्नत्रय पर होती है वहाँ भेद नहीं होता मात्र निर्ग्रंथतता व वीतरागता दिखती है । जब दृष्टि संत पथं, परंपरा पर होती है तो भेद/फूट होती है । और धर्म का विनाश होता हैं ।*

विशाल संघ के नायक पूज्य आचार्य भगवन् अकंपनाचार्य महाराज एक बार विहार करते हुए अवंती देश के अंतर्गत उज्जैयनी नगरी में पहुँचे । वह समृद्धशाली नगरी थी वहां के राजा श्रीवर्मा थे उनकी रानी श्रीमती थी उनके चार मंत्री बलि, बृहस्पति, नमुचि, प्रहलाद थे । यद्यपि राजा धर्म परायण थे । साधु संतों के परम भक्त थे वे संपूर्ण प्रजा के प्रिय थे क्योंकि न्यायवंत, सरल, धार्मिक थे । परंतु नीति विरूद्ध चलने वालों को यथायोग्य दंड देते थे एक बार उज्जयनी में 700 मुनिराजों का आचार्य भगवन के साथ उद्यान में आगमन हुआ । उनके प्रभाव से षट् ऋतु के फल व फूल पल्लवित पुष्पित हो गये । वन माली यह दृश्य देख प्रसन्न था वह खुशी-खुशी श्रीवर्मा राजा को समाचार देने पहुँचता है संतों की चरण रज जहाँ पड़ जाती है वहाँ हर दिन त्यौंहार बन जाता है ।

महाराष्ट्र में कहते हैं- ''साधु संत जेती घरा, होली दिवाली दशहरा'' ।

वह घर धन्य हो जाता है जहां संतों की चरण रज पड़ती है हर पल होली दिवाली सा अनुभव होता हैं ।

वन माली फल-फूलों से लदी टोकरी श्री वर्मा के चरणों में रख देता हैं । श्रीवर्मा आश्चर्य से कहते हैं कि हे वनमाली ! यह क्या चमत्कार है हाँ-हाँ महाराज चमत्कार ही तो हो गया है । वही चमत्कार दिखाने ये षट्ऋतु के फल-फूल एक समय में आपके पास लाया हूँ ।

यद्यपि आज तो केमिकल्स के प्रयोग से सब संभव है परंतु पहले कोई केमिकल्स नहीं होते थे ।

वनमाली कहता है- हे भगवन् ! हमारा भाग्योदय हुआ है, हर्ष आनंद वृष्टि हो गई है हमारे उद्यान में अकंपनाचार्य सहित 700 मुनिराजों का संघ पधारा है ।

पद्मिनी स्त्री, राजहंस पक्षी व निर्ग्रन्थ संत जहाँ विचरण करते हैं वहाँ दुर्भिक्ष नहीं होता सदैव सुभिक्ष, शांति व घर-घर में मंगलाचार होता हैं वे जिस राज्य में जाते हैं उस राज्य में विजय पताका फहराती रहती है जब श्रीकृष्ण, अर्जुन के साथ युद्धस्थल में जा रहे थे तब उन्हें सामने से आते निर्ग्रन्थ संत दिखायी देते हैं । उन्हें देख श्रीकृष्ण विजय श्री की शुभ घोषणा कर देते हैं संतों के दर्शन मात्र से

कार्य सिद्धि हो जाती है ।

निर्ग्रन्थ संत साधना, त्याग, तप की मूर्ति होते है । आजीविका को छोड़कर जो जीर्णोद्वार में लगे रहते हैं, निरतिचार ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं । उत्तम त्याग के हिमालय हैं । वे परम दिगंबर संत हमारे उद्यान में पधारें हैं । उनके शरीर का आभामण्डल उद्यान में व्याप्त हो गया है सर्वत्र हरियाली व आनंद है वृक्ष का पत्ता-पत्ता खुशी से नाच रहा है । फूलों के होठों पर मुस्कुराहट है कि ये यतिवर हमारे उद्धार हेतु पधारे हैं । राजा श्रद्धा, भक्ति से आविर्भूत होकर परोक्ष में ही 7 कदम बढ़ा साष्टांग नमस्कार करता है । श्रद्धा है तो प्रत्यक्ष व परोक्ष होने में कोई अंतर नहीं परोक्ष होने पर भी इष्ट के प्रति माथा स्वयंमेव झुक जाता है । राजा श्रीवर्मा प्रसन्न होकर वनमाली की प्रशंसा करते हैं तू धन्य है जो श्री गुरु का प्रथम दर्शन तूने पाया । राजन् सुखद समाचार से प्रसन्न हो वनमाली को धन धान्य दे मालामाल कर देते हैं । यह राजा श्री वर्मा की श्रद्धा बोल रही थी । सच्ची श्रद्धा अंतरंग में निर्मलता उत्पन्न करती है । सम्यग्दर्शन की ज्योति जहाँ जलती है वहाँ भक्ति की झड़ी लग जाती है ।

राजा श्री वर्मा सारे परिकर को दर्शनार्थ सूचित करते है । जहाँ फूल है वहाँ कांटे भी होते हैं चंदन के वृक्ष पर सर्प भी होते हैं राजा श्री वर्मा जितने गुरु भक्त श्रद्धालु थे । मंत्री उतने ही विपरीत धर्म विद्रोही कुमति थे । महाराज श्री वर्मा तो आनंद विभोर थे । परंतु चारो मंत्रियों के मुख मंडल म्लान हो गये संतों का आगमन विपत्ति की तरह मालूम पड़ रहा था ।

मंत्रियों के मस्तिष्क में बैठा मिथ्यात्व काम कर रहा था । परंतु छल कपट के हाथ पांव नहीं होते हैं सारी दुनियाँ मंत्रियों के दुर्भावों से अनभिज्ञ थी । मिथ्यात्व कर्म के उदय में धार्मिक लोगों का सत्संग नहीं सुहाता । राजा ने मंत्रियों को भी प्रेरित किया । वे राजाज्ञा को ठुकरा नहीं सके । परंतु महाराज को विपरीत विचारों से उन्होंने प्रेरित करना चाहा । ये नग्न संत अभिमानी हैं, दुनियाँ को गुमराह करने संत बनकर बैठे हैं -

मूढ़ मुढाये तीन गुण, सिर की मिट गई खाज ।
खाने को लड्डू मिले, लोग कहे महाराज ॥

खाने के लिए, सम्मान पाने ये सब त्याग कर बैठे हैं ।

परंतु क्या कौवे का समूह हंस को विचलित कर सकता है नहीं । मंत्रियों का प्रयास चिकने घड़े पर डाले गये पानी की तरह निष्फल ही रहा ।

सम्यग्दृष्टि को कोई कितना भी विचलित करना चाहे परंतु वह अपनी सम्यक् श्रद्धा से चलायमान नहीं होते । राजा श्री वर्मा मंत्रियों को फटकार देते हैं बंद करो अपना अनर्गल वार्तालाप । सावधान ! जो संतों के लिए कुछ भी कहा ।

मंत्री कुपित हुए परंतु दबाव के कारण चल दिये संतों के दर्शन करने । जैसे ही वे संतों के चरणों में पहुँचे महाराज श्री वर्मा का चेहरा तो फूलों सा खिला था । जबकि मंत्रियों का चेहरा ग्लानि भाव से ग्लान हो रहा था कहा जाता है-

"Face is the index of heart"

चेहरा सब कुछ कह देता है । कि आपके मन में क्या है । मंत्रियों का मुख ग्लानि प्रकट कर रहा था तथा राजा श्री वर्मा प्रसन्न थे । और जो प्रसन्न होता है वह-

''प्रसन्न चित्ता वसुधैव कुटुम्बकम् '' ।

प्रसन्न चित्त व्यक्ति का सारा संसार कुटुम्बी बन जाता है । राजा को देख आचार्य भगवन् को कुछ प्रसन्नता हुई। परंतु दूरदृष्टा तत्वज्ञ, ज्ञानी, गंभीर आचार्य भगवन् ने आगामी समस्या को जान लिया क्योंकि आचार्य प्रागेवदृष्टोत्तरा होते हैं आगे क्या होने वाला है वह उनके निर्मल ज्ञान में झलक जाता है । आचार्य भगवन अकंपन स्वामी अपने शिष्यों को कुछ नहीं कहते मात्र आज्ञा प्रदान करते हैं कि हे शिष्यों ! आज राजा अपने मंत्री परिकर के साथ दर्शनार्थ आयेगा परंतु आप सभी को आंखें बंद कर मौन धारण कर बैठना है । उस समय आचार्य महाराज ने अधिक कुछ नहीं कहा । शिष्यों ने सोचा गुरु ने ऐसी आज्ञा दी है तो अवश्य ही कोई रहस्य छिपा है वे गुरु आज्ञा शिरोधार्य कर ध्यान में लीन हो जाते हैं ।

गुरु आज्ञा श्रेष्ठ होती है आचार्य कहते हैं -

शिष्य वे प्रशंसनीय है जो विनय व प्रीति से युक्त होते हैं अपने से ज्येष्ठों के प्रति आदर व छोटों के प्रति वात्सल्य रखते हैं तथा जो निरंतर गुरु वचनों के पालन में तत्पर रहते हैं । वे शिष्य ही सुशिष्य हैं इससे विपरीत चलने वाले गुरु आज्ञा नहीं मानतें, ज्येष्ठों के प्रति, छोटों के प्रति वात्सल्य नहीं वे कुपुत्र की तरह निंदनीय हैं । गुरु आज्ञा पाकर सारे मुनि मूर्तिवत शुद्ध चैतन्य एक ज्ञायक पिंड आत्मा राम में लीन हो गये । ध्यान में बैठते ही बाह्य जगत शून्य हो गया था ।

आचार्य भगवन् के साथ सभी शिष्य ध्यानस्थ थे । वे मूर्तिमान परमात्मा की तरह दिखाई दे रहे थे । उनकी यह मुद्रा भव्यों के सम्यग्दर्शन का हेतु बन रही थी । राजा श्री वर्मा जब वहाँ पहुँचे उन्होंने नमोऽस्तु किया परंतु सभी मौन व ध्यान में लीन थे । राजा श्री वर्मा उनकी वीतरागता को देखकर प्रसन्न हुए **''ज्ञान, ध्यान, तपो, रक्तः तपस्वी स प्रशस्यते''** ज्ञान, ध्यान व तप में लीन रहने वाले तपस्वी प्रशंसनीय हैं । सर्वार्थसिद्धि में पूज्यपाद महाराज कहते हैं-

अवागविसर्गा वपुषा निरूपयन्तम् ।

बिना कहे ही वे संत अपने शरीर से ही मोक्षमार्ग का निरूपण कर देते हैं । वैसे ही वे संत

महात्मा थे । परंतु कुमति के धारी वे मंत्री साधुओं से द्वेष रखते थे अतः वे बोले महाराज ! लगता है ये नग्न संत निरा अज्ञानी हैं, मूर्ख है कुछ जानते नहीं तभी तो राजा का भी सम्मान नहीं किया कम से कम आर्शीवाद तो दे देते । राजा श्रीवर्मा समझाते है मंत्री ! ऐसा मत कहिए क्योंकि ये संत रागी नहीं, वीतरागी है वे आत्म निरीक्षण में तत्पर हैं । उन्होंने राजा व रंक में भेंद नहीं किया, गरीब अमीर में भेद नहीं । ये तो समताधारी होते हैं लौकिक प्रयोजन वशात् व्यक्ति जी हुजूरी करते हैं इन्हें कोई लौकिक प्रयोजन नहीं । भव-भव के पुण्य से इनका दर्शन मिलता है मंत्री बोले - राजपाट, धन-वैभव छोड़कर पराश्रित जीवन जीना क्या श्रेष्ठ है । ऐसी वार्ता करते हुए वे मंत्री रास्ते से चले जा रहे थे । सामने से मुनिराज श्रुत सागर चले आ रहे थे । **''पश्य ! अयं तक्र पीतोऽयं'' !**

यह तक्र छाछ पीकर आया है । पीत यानि पीला भी होता है अतः महाराज ने कहा तक्र पीला होता है या सफेद । तात्पर्य कि निर्गंथों को देख उनकी अच्छाई नहीं देख बुराई देख रहे हो इसमें दोष तक्र का नहीं तुम्हारी दृष्टि का है ।

महाराज से वे शास्त्रार्थ करते हैं, नीति, न्याय, आगम, व्याकरण में, कुशल मुनिराज से वे शास्त्रार्थ में हार गये ।

राजा श्रीवर्मा ने मुनि पांडित्य देख अपने मंत्रियों को फटकारा । मंत्री अपने पराभव को जान कुपित हो जाते हैं श्रुतसागर जी आहार करके आ रहे थे । अतः गुरु आज्ञा से अनभिज्ञ थे इसलिए मौन नहीं रह सके । मुनि श्रुतसागर सारी घटना गुरु को सुनाते हैं अकंपनाचार्य सुनते ही कहते हैं - यह तुमने अच्छा नहीं किया । गुरुदेव ! मैं तो जय पताका फहरा कर आ रहा हूँ । बस ! तुमने सारे संघ को संकट में डाल दिया । **''नास्तिक व मूर्ख को दिया उपदेश विपत्ति का हेतु बनता है ।''** श्रुतसागर मुनि संघ पर विपत्ति का भविष्य सुन घबरा जाते हैं । गुरु से प्रार्थना करते हैं गुरुवर प्रायश्चित दीजिए । गुरु कहते हैं - जाओं जहां शास्त्रार्थ हुआ था वहां जाकर ध्यानस्थ हो जाओ । मुनि श्रुत सागर गुरु आज्ञा शिरोधार्य कर वैसा ही करते हैं । वे सारे मुनिराजों को सबक सिखायेंगे ऐसा सोचते हैं परन्तु चलते-चलते रास्ते में ही श्रुत सागर महाराज मिल गये इन्होंने ही राजा की दृष्टि में गिराया है पहले इसे ही सबक सिखायेंगे । वे तलवार निकाल लेते हैं परन्तु यति हत्या महापाप है जिसका कोई प्रायश्चित नहीं होता अतः निर्णय करते हैं कि हममे से एक नहीं अपितु चारों एक साथ वार करेंगे । वे तलवार निकाल लेते हैं परन्तु जिसका कोई नहीं होता है उसके भगवान होते हैं नगर देवता उन सबको कीलित कर देता है वे तलवार उठाये वैसे के वैसे खड़े रह गये । यद्यपि मुनि प्रतिकार कर सकते थे । मंत्र पढ़कर उन मंत्रियों का अहित कर सकते थे परन्तु वे निर्ग्रंथ मुनि श्रुत सागर आत्म ध्यान में लीन थे नियम सल्लेखना धारण किये थे । जब प्रातः काल होती है तो बिजली की तरह यह समाचार सारे

नगर में फैल जाता है राजा सहित सारी प्रजा देखती है राजा बहुत दुखित होते हैं नगर देवता से प्रार्थना की जाती है, नगर देवता कहता है पहले मंत्री संतों से क्षमा मांगे राजा मंत्रियों को मृत्युदंड देता है परन्तु आकाशवाणी होती है कि यति के ऊपर इन्हीं हत्या का दोष नहीं आना चाहिए ।

इसलिए मंत्रियों को काला मुख कर नगर से निकाल दिया जाता है । वे मंत्री वहां से हस्तिनापुर के कुरू जांगल देश में गये । वहां के राजा महापदम की पत्नी लक्ष्मीवती तथा पुत्र पदम कुमार व विष्णु कुमार थे । राजा महापद्म अपने ज्येष्ठ पुत्र विष्णु कुमार को राज्य सौंप दीक्षा लेने प्रयाण करते हैं परन्तु विरागी विष्णु कुमार कहते हैं हे तात ! जिसे आप छोड़ रहे हैं वह मुझे क्यों दे रहे हैं आप जिस मुक्तिपथ पर चल रहे हैं मैं भी चलूंगा क्योंकि जो धारण करके छोड़ना पड़े उसे धारण ही क्यों करूं । मैं भी आपके साथ चलूंगा । **'कीचड़ में पैर देकर धोने की अपेक्षा कीचड़ में पैर न देना श्रेष्ठ है।''** अतः मैं तो आपके साथ ही दीक्षा धारण करूंगा । क्योंकि तप योग्य ऐसा योग फिर मिले न मिले भरोसा नहीं । महापद्म के साथ विष्णुकुमार दीक्षा ले लेते हैं । विष्णुकुमार धरणीधर पर्वत पर दुर्द्धर तप करने लगे । राजा पद्म राजभार संभालते हैं । परंतु पड़ौसी सिंहबल राजा छोटे पद्मराजा के राज्य को हड़पना चाहते थे । पिता व ज्येष्ठ भ्राता की अनुपस्थिति का लाभ उठाना चाहते थे । पद्मराजा चिंतित रहते थे । सिंहबल पराक्रमी था । उसे विजित करना कठिन था ।

उसी समय चारों मंत्री अपनी कला कुशलता से राजा पद्म को प्रभावित कर लेते हैं कुशल मंत्रियों को पाकर राजा पद्म उन्हें मंत्री मंडल में शामिल कर लेते हैं । राजा पद्म को उदास व व्याकुलित देख वे मंत्री राजा से आग्रह करते हैं कि आप हमें कहे हम हर समस्या सुलझा देगें । राजा पद्म शत्रु राजा सिंहबल की सारी बात बता देते हैं मंत्री राजा को आश्वासन देते हैं कि आप चिंता छोड़िए उसे जीतना तो हमारे बांये हाथ का खेल है हम क्षण भर में उसे जीत लेगें । मंत्रियों के साहस भरे वचन सुन राजा कुछ प्रसन्न हो जाता है तथा सेना तैयार कर युद्ध में वे सिंहबल को जीत कैदी बना लेते हैं राजा सिंहबल को क्षमा प्रदान करते हैं ।

''राजनीति कहती है हाथ में आये शत्रु को छोड़ना नहीं चाहिए ।'' मंत्रियों के ऐसे वचन सुन राजा पद्म उन्हें कारागार में डाल देते हैं । राजा प्रसन्न होकर मंत्रियों को वर प्रदान करते हैं बोलो मंत्रियों क्या चाहिए ? महाराज ! आपकी प्रसन्नता ही वरदान है अब हम क्या मांगे आप यदि देना ही चाहते है तो धरोहर के रूप में रख लीजिए कपटी मंत्रियों की नजर तो पूरे राज्य पर ही थी । भोले भोले राजा पद्म वरदान सुरक्षित कर देते हैं ।

यहाँ यत्र-तत्र विहार करते हुए हस्तिनापुर में उन्हींअकंपनाचार्य आदि 700 मुनिराजों का आगमन होता हैं ।

मुनिभक्त राजा पद्म 7 कदम आगे बढ़ साष्टांग नमस्कार करते हैं तथा मुनियों के दर्शनार्थ वन की ओर हम जायेगें ऐसा मंत्रियों से कहते हैं मंत्रियों को जब यह ज्ञात होता है कि ये वे ही महाराज है जिन्होंने हमें अपमानित करवाया था । तो वे बदले की आग में जलने लगते हैं कब व कैसे, इनका काम तमाम करूं उनके अंतर मन खौल रहे थे प्रतिशोध की ज्वालाएँ जल रही थी । तभी सुरक्षित वरदान को याद कर वे राजा पद्म के पास पहुँचते हैं तथा वरदान का स्मरण कराते हैं राजा पद्म कहते हैं जो मांगोगे दिया जायेगा । महाराज 7 दिन के लिए राज्य दे दीजिए । वचन राजा का प्राण होता है अतः राजा पद्म को वह वरदान देना पड़ा उन्होंने सोचा ठीक है 7 दिन बाद तो वापिस राज्य मिल ही जायेगा । यहाँ मंत्रिगण बदला लेने हेतु षड्यंत्र रचते हैं तथा **'नरमेघ-यज्ञ'** का प्रारंभ करते है प्राणियों की हिंसा, आहूति की जाती हैं सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच जाती हैं प्राणी मौत के घाट उतारे जा रहे थे । सड़े गले माँस व अग्नि की ज्वालाओं के बीच संत तो अपने ध्यान में निमग्न थे । संत उपसर्ग के आने पर प्रतिकार नहीं करते हैं अपितु उपसर्गों के आने पर ध्यान मग्न हो जाते हैं । आचार्य सागर सेन महाराज श्रावण सुदी पूर्णिमा में आकाश में श्रवण नक्षत्र को कंपायमान देखते हैं रात्रि में ही मुख से हाय ! शब्द निकल जाता है यद्यपि मुनि रात्रि में बोलते नहीं अतः जब क्षुल्लक पुष्पदंत गुरु के मुख से ये शब्द सुनते है तो पूछते हैं हे पूज्यवर ! इस खेदपूर्ण वचन का तात्पर्य-

आचार्य भगवन् कहते हैं हे वत्स ! हस्तिनापुर में अकंपनाचार्य आदि 700 मुनिराजों पर घनघोर उपसर्ग हो रहा है भगवन् ! आज्ञा प्रदान करें । हे क्षुल्लक ! तुम हमारे शिष्य विष्णुकुमार के पास जाओ जो धरणीधर पर्वत पर तपस्या कर रहे हैं, उन्हें विक्रिया ऋद्धि उत्पन्न हुई है जाओ उन्हें मेरा आदेश सुनाओ । क्षुल्लक जी तुरंत विद्या बल से पहुँच जाते हैं और आह्वान करते हैं हे पूज्यपाद ! आंखे खोलिए आज अवसर ध्यान का नहीं संत रक्षा का है मैं पूज्य गुरुदेव सागर सेन का समाचार लाया हूँ । हस्तिनापुर में हुए अंकपनाचार्य आदि 700 मुनिराजों का उपसर्ग आपको निवारण करना है वह कैसे ? गुरुदेव ने कहा है आपको विक्रिया ऋद्धि उत्पन्न हुई है विष्णुकुमार उस ऋद्धि सेअनभिज्ञ थे । साधना के प्रभाव से संतों को सहज सिद्धियाँ हो जाती है । वे न तो उनका प्रयोग करते हैं न अभिमान रखते हैं परंतु संत रक्षा में तत्पर रहते हैं, विक्रिया ऋद्धि के धारक विष्णुकुमार मुनि ने ऋद्धि परीक्षा हेतु हाथ फैलाया तो सुमेरू पर्वत तक चला गया । संयम संतों का प्राण होता है परंतु करूणा से जिनका हृदय भर आया था ऐसे वात्सल्य मूर्ति विष्णुकुमार मुनि विद्या बल से हस्तिनापुर पहुंच जाते हैं पहले राजा पद्म के पास पहुंचकर फटकारते हैं हे राजन् ! यह तूने क्या किया सारे कुल पर कलंक लगा दिया । जिस कुल में सदा संतों का सम्मान हुआ है आज उन पर यहां घनघोर उपसर्ग हो रहा है और तुम शांत बैठे हो । राजा पद्म आंखों में अश्रु भरकर क्षमा याचना करते हैं और कहते हैं भगवन् ! क्षमा कीजिए मैं वचन बद्ध था मजबूरी में मुझे वरदान देना पड़ा । 7 दिन के लिए मेरे हाथ

बंधे हैं मैं चाहकर भी कुछ नहीं कर सकता । विष्णुकुमार वात्सल्य के धनी थे । संत मात्र रत्नत्रय धारी होते हैं वे अपने पराये हमारे तुम्हारे नहीं होते । वे सबके होते है जो सम्यग्दृष्टि होते है वे संतों में भेद नहीं करते मात्र रत्नत्रय को देखते हैं रत्नत्रय धारी का कोई पंथ नहीं होता है वे पंथ परंपरा से परे होते हैं आज का रक्षा बंधन तभी सार्थक होगा जबकि आप प्रतिज्ञा लेगें कि हम किन्हीं भी संतो का अपमान नहीं करेगें अपितु सेवा में तत्पर रहेगें । विष्णुकुमार मुनि संयम की परवाह न करते हुए 52 अंगुल का ब्राह्मण का वेश धर कर उस नरमेघ यज्ञ में पहुँचते हैं ब्राह्मण उसे देख प्रसन्न हो जाते हैं और उन्हें किमिच्छिक दान हेतु प्रार्थना करते हैं आप यज्ञ में शामिल हो । विप्र कहता है पहले दक्षिणा लूंगा । मांगिये ! आप को क्या चाहिए । ब्राह्मण कहता है जलांजलि ले लीजिए तो वर मांगू । ठीक है मुझे तीन पग जमीन चाहिए । मंत्री यह वर सुन हंसते हैं कि जैसा यह विप्र छोटा है वैसे ही बुद्धि भी छोटी अभी भी सोच लो और कुछ चाहिए तो मिल सकता है विप्र ! कहता है देना है तो दो नहीं तो मैं चला । मंत्री कहते हैं नहीं-नहीं । विप्रवर ! आप ठहरिये हम आपको तीन पग जमीन अवश्य देंगे । बताइए कहाँ की जमीन दें । विप्र विक्रिया से शरीर की अवगाहना को बढ़ा लेते हैं वे अपना एक पग सुमेरू पर रखते है दूसरा मानुषोत्तर पर दोनों पग में ही सारे ढाई दीप की पृथ्वी नाप ली । बोलो मंत्री तीसरा पग कहा रखूं । विप्र तीसरा पग मंत्री के ऊपर रख देता है मंत्री थरथराने लगता है हे भगवन् ! त्राहि मां ! त्राहि मां ! विप्र कहता है हे दुष्ट ! तूने इन निर्दोष मुनिराजों पर जो उपसर्ग किया है वह निंदनीय है इस अपराध के लिए मैं तुम्हें प्राणदंड दे सकता हूँ । परंतु हम किसी के प्राण लेते नहीं इसलिए क्षमा प्रदान करता हूँ मंत्री चरणों में गिर क्षमा याचना करता है और कहता है कि हे भगवन् ! मैं तुरंत यज्ञ बंद कराता हूँ । मुनियों का उपसर्ग दूर होता है । मुनियों के उपसर्ग से सारे श्रावकों की आंखे भरी थी, वे उपवासे थे उपसर्ग निवारण होते ही सर्वत्र खुशहाली छा जाती है । और खुशी से सभी श्रावक चौके लगाते हैं और मुनिराजों को खीर का मृदु आहार कराते हैं क्योंकि उपसर्ग से मुनियों के कण्ठ अवरूद्ध हो गये थे । वे श्रावक परस्पर में मुनि रक्षा का प्रण कर एक दूसरे को सूत धागा बांधते हैं तभी से यह रक्षाबंधन पर्व वात्सल्य पर्व के रूप में मनाया जाने लगा ।

संत समाज को जोड़ते है तोड़ते नहीं सुई धागा बनते हैं कैंची नहीं । शास्त्र गद्दी तीर्थंकरों की गद्दी है इस पर बैठ दोषों का वाचन न हो अपितु एकता प्रेम वात्सल्य के सूत्र का शंखनाद हो । संतों का तिरस्कार, निंदा, महापाप है यदि धर्म गद्दी पर बैठ संतों की निंदा करोगे तो धर्म की रक्षा नहीं धर्म का विनाश होगा, इसलिए आप ईर्ष्या, द्वेष आदि दुर्भावों को ध्यानाग्नि में जला दें । आपसी संकीर्णताओं को छोड़िए । फोटो विराग सागर की हो या विद्या सागर की । है तो दोनों ही निर्ग्रन्थ संत। आप पुद्गल की सूरत नही वीतरागता की सूरत को निहारिये। निर्ग्रन्थ के दर्शन करो हमारे तुम्हारे की कैंची तुम्हारे समाज को काट-काट कर टुकड़े-टुकड़े कर देगी और धर्म का विध्वंस हो

जायेगा। यदि धर्म प्यारा है तो भेद मत करो सुई धागे से संतों रूपी मोतियों को पिरोकर धर्ममाला बना दें। आपकी धर्ममाला धर्म का सम्मान बढ़ायेगी। यदि दोष दिखें तो पहले उपगूहन करो बाद में स्थितिकरण करों परंतु निंदा कभी मत करो। आज के दिन श्रेयांस नाथ भगवान का निर्वाण हुआ हम भी वह पावन दशा पाये। हे विष्णुकुमार महामुनीश्वर आप हमारे मनों में वात्सल्य का नीर भर दीजिए ताकि रक्षा बंधन पर्व का मानना सार्थक हो जायेगा।

सभी मुनिराजों की धैर्य शीलता वात्सल्य को हम नतमस्तक होकर नमन करते हैं।

इसी भावना के साथ- "1008 श्रेयांसनाथ भगवान की जय"

गुरु की सेवा-शुश्रुषा करने का भाव मंदकषायी जीवों को ही होता है, तीव्रकषायी जीव किसी की सेवा नहीं करता, वह किसी को बड़ा मान ही नहीं सकता। मंद कषाय का दूसरा नाम पुण्य परिणाम है। पुण्य-परिणाम से ज्ञानावरणी कर्म का क्षयोपशम होता है। जिससे ज्ञान में अभिवृद्धि होती है; ऐसा निमित्त-नैमित्तिक संबंध है।

अज्ञानजन्य दुःख के नष्ट होते ही प्राप्त यर्थाथ सुख कभी भी समाप्त नहीं होता; ऐसा तो यर्थाथ सुख का सहज स्वभाव है। अतः जीव का परम कर्त्तव्य है कि वह यर्थाथ श्रद्धा और ज्ञान के द्वारा सच्चा सुख प्राप्त करें- यही महत्वपूर्ण कार्य इस मनुष्य भव में करने योग्य हैं।

- क्षत्रचूड़ामणी

व्यसन (How to Leave bad habits)

(प्रवचन नं. 24)

व्यसन means habits प्रायः जितने भी human beings है सभी की कुछ न कुछ habits होती है । परंतु कुछ habits अच्छी होती है जिन्हें हम good habits कहते है तथा कुछ बुरी होती है जिन्हें हम bad habits कहते हैं । प्रायः लोक व्यवहार में bad habits को ही व्यसन के नाम से जाना जाता है । कुसंगति में पढ़कर प्रायः व्यक्ति bad habits का शिकार हो जाता है, कोई जुआ सट्टा खेलने लग जाता है तो कोई बिड़ी सिगरेट पीने लग जाता है तो कोई drink करने लगता है । इन बुरी आदतों का प्रवेश हमारे जीवन में दबे पैरों से होता है और हमें कुछ पता नहीं चल पाता । बच्चें ने बड़ों को सिगरेट पीते देखा तो मन में विचार आया, क्यों न मैं भी try करके देखूं । बच्चे का आज का कौतुहल कल जान लेवा भी हो सकता है । क्योंकि 'व्यसन' का तात्पर्य ही है कि जिसके बिना न रहा जाये । एक बार नशीले पदार्थों की लत पड़ जाये फिर लाख प्रयत्न करने पर भी छूटता नहीं । इसलिए व्यसनों को जड़ मूल से यदि नाश करना हम चाहते हैं तो पहले-

1. लोगों को इन बुरी आदतों का परिचय करायें ।
2. बताये कि कैसे ये बिन बुलाये मेहमान की तरह आती है ।
3. 'व्यसन' के harmful effects बताये ।
4. 'व्यसन' प्रारंभिकता में तो अच्छे लगते हैं परंतु अंतिम परिणाम खतरनाक होता है ।
5. यदि जीवन में व्यसन आ ही चुका है तो अब उससे कैसे बचें ? ऐसा उपाय बताए ।
6. 'व्यसन' को क्रम-क्रम से कैसे छोड़े । तरीके बताए ।
7. और 'व्यसन-मुक्त' होने के उपरांत होने वाले सुखद अनुभव बतलाए ।

तब आपके द्वारा इस अभियान के प्रति उठाये कदम सफलता को प्राप्त हो सकेगें ।

व्यसन मुक्ति : अभियान है संस्कृति के लिए वरदान

(प्रवचन नं. 25)

★ *जो दया से युक्त है वही सच्चा धर्म है, जो व्यसनों, बुराईयों से परे है वह धर्म हैं । जो उन्मार्ग से हटाकर सन्मार्ग में लगाये वह धर्म है । धर्म की राह पर चलने वाले उन बुराईयों से सदा दूर रहते है जो हमें धर्म से विमुख कर देती*

महापुरुषों ने समय-समय पर भारत की वसुंधरा को सींचा है- सबका लक्ष्य मात्र प्राणी जगत की भलाई है कोई उसे रहम, तो कोई दया, कोई करूणा, तो कोई व्यसन मुक्ति के नाम से पुकारता है । प्रायः हम पशु-पक्षियों की रक्षा की बात करते हैं परंतु मनुष्य को भूल जाते हैं । मनुष्य के दुख, पीड़ा का कारण उसकी स्वयं की बुरी आदतें हैं । इन्हीं bad habits का नाम व्यसन है । ''व्यसन'' का तात्पर्य है जिसके बिना क्षण भर भी नहीं रहा जा सके । व्यसन अच्छे व बुरे दोनों हो सकते है । किसी की good habits होती है भगवान की भक्ति में किसी का मन लगता है कोई परोपकार करके सुखी होता है कोई वृद्ध सेवा कर प्रसन्न होता है । good habits बनाये रखना चाहिए । good habits तो उन्नति का द्वार है । परंतु bad habits गिराती है । आज व्यसन शब्द अधिकतर प्रयोग bad habits के लिए किया जाता है । व्यसन महापाप है । ये व्यसन मूल रूप से 7 है । सप्त व्यसन शास्त्रों में गिनाए गए हैं-

द्यूतमाँस सुरा वेश्या, चौर्या खेट परांगना ।
महापापानि व्यसनानि सप्तानि त्यजेत् बुधाः ॥

द्यूत-जुआ । जब हम कौरव व पांडवों के इतिहास को देखते हैं पांडव जुआ में सब कुछ हार गये और अंततः अपनी पत्नी द्रोपदी को दांव में लगा देते हैं और हार जाते हैं महाभारत के पृष्ठों में यह दृश्य उल्लेखित है दुःशासन द्रोपदी का चीर हरण करना चाहता है । द्रोपदी एक-एक को पुकारती है परंतु पांचों पांडवों का मुख नीचे था । युधिष्ठिर कहते हैं- व्यसन ने सत्य की शक्ति को क्षीण कर दिया हैं ।

अर्जुन का गांडीर यूं ही पड़ा रह गया । भीम का गदा भी रखा रह गया । क्योंकि व्यसन में द्रोपदी को खो चुके थे ।

मद्य में सारी नशीली सामग्रियाँ विद्यमान है आज के जगत के लिए व्यसन काल है । किसी

cancer hospital में जाकर देखिए उनकी जीवन गाथा सुनिये तो नेत्र सजल हो जाते हैं cancer पीड़ित 1/3 रोगी तंबाकू सेवन करने वाले हैं । जगह-जगह कितने Quotation पड़ने मिलते हैं शराब करती, जीवन खराब तंबाकू खाओ, गाल गलाओ । छिपकली की पूछ व सुअर के मांस का powder पाउच में होता है तंबाकू सेवन बहुत हानि कारक है जीवन में बहुत सी बीमारियाँ हो जाती है एक डॉक्टर ने अनवरत शोध के बाद यह सिद्ध किया है कि तंबाकू मस्तिष्क को सुखाता है आँखों की दृष्टि कमजोर करता है । मुख में बदबू पैदा करता है, शरीर को आघात पहुँचता है । स्नायुओं में कंपन पैदा करता है और खून को दूषित करता है । अतः तंबाकू का सेवन वर्ज है । तंबाकू में अनेक प्रकार के जहर पाये जाते हैं जिनमें से चार प्रमुख है-

1. निकोटीन 2. कोलतार 3. आर्सेनिक 4. कार्बन मोनो ऑक्साइड ।

ये चारों ही मानव शरीर के लिए महान विष के समान है निकोटीन मनुष्य के सूंघने की शक्ति को क्षीण कर देता है । धूम्रपान से हर समय उसका धुआँ नाक से बाहर निकलते रहने के कारण नाक के पतले परदों पर उसका हानिकारक प्रभाव पड़ता है । इससे आँखों की ज्योति भी क्षीण हो जाती है । बी.पी. भी हाई हो जाता है । शरीर की त्वचा शून्य हो जाती है और त्वचा में अनेक रोग उत्पन्न होने लगते हैं । धूम्रपान के माध्यम से निगली गई निकोटीन खांसी को जन्म देती है । उससे श्वास के रोग व टीबी भी हो जाती है ।

तंबाकू के खाने से भूख भी मिट जाती है । मुख, गला, स्वर की नाड़ियों तथा श्वास की बड़ी छोटी नलियों की श्लेष्मिक झिल्लियों में अनावश्यक उत्तेजना आती है । जिससे केंसर की संभावना बढ़ जाती है । small intestine मे हार्मोन्स का secretion घट जाता है मलान्त्र में सिकुड़न आती है रक्त के लाल कणों की औसतन वहन शक्ति घट जाती है । श्वास फूलने लगता है । एक जलती सिगरेट उतनी ही जीवनदायिनी प्राणवायु [O_2] पी जाती है । जितनी चार व्यक्तियों को उतने ही समय के लिए पर्याप्त होती है ।

सिगरेट का कश लगाते समय किनारों से जो फीका धुंआ निकलता है वह सेल्युलोज (कागज) का होता है । जिसमें तंबाकू भरकर सिगरेट बनायी जाती है । यह फीका व अत्यन्त विषैला होता है । सिगरेट के ऊपरी कवर में [cl] क्लोरीन व other chemicals भी होते हैं जब सिगरेट जलती है तो इन रसायनों का जहरीला धुँआ गले पर बुरा असर डालता है बीड़ी, सिगरेट, गुटखा, पाउच सब केंसर की उत्पत्ति के घर हैं ।

एक जानकारी के अनुसार धूम्रपान के कारण भारत में प्रतिवर्ष डेढ़ लाख व्यक्ति अकाल मौत मर जाते हैं । इन डेढ़ लाख लोगों की कष्टकर बीमारियों पर प्रतिवर्ष 7 करोड़ रूपये खर्च होते हैं । और

इन बीमारों के लिए दस हजार पलंग अस्पतलों में सुरक्षित रहते हैं तथा धूम्रपान से होने वाले रोगों के कारण सैकड़ों मजदूर कारखानों में अनुपस्थित रहते हैं जिससे प्रतिवर्ष देश को 260 करोड़ रूपये की वित्तीय हानि उठानी पड़ती है ।

निकोटीन के अलावा सिगरेट के हर एक कश में-कार्बन मोनो ऑक्साइड [co] भी होती है । यह गैस पूरे शरीर के सेल्स पर O_2 पहुंचाने वाले हीमोग्लोबिन को बेकार कर देती है । अगर कार्बन मोनो ऑक्साइड से अधिक मात्रा में हीमोग्लोबिन बेकार हो जाए तो निश्चित रूप से मृत्यु तक हो सकती है । एक सिगरेट 20 मिलीग्राम कार्बन मोनो ऑक्साइड फेफड़े में भर देती है । सिगरेट पीने के दौरान ऑक्सीजन लेने की क्षमता में 3-9 प्रतिशत तक की कमी आती है यदि तनाव के दौरान आप सिगरेट पीते हैं तो ऑक्सीजन लेने की क्षमता में दस प्रतिशत तक की कमी हो सकती है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चाहे वह बीड़ी हो, सिगरेट हो, तंबाकू हो अथवा गुटखा या पाउच सब स्वास्थ्य के न केवल हानिकारक है अपितु प्राणघातक भी । आप व्यसनी के घर जाकर आए तो व्यसनी का घर परिवार रोता बिलखता नजर आता है । व्यक्ति महामारियों का शिकार है, तंबाकू में निकोटीन नामक जहरीला पदार्थ होता है उसकी एक बूंद बिल्ली, 2 बूंद कुत्ता, व 8 बूंद घोड़े के खाने में आ जाए तो वह मर जायेगा । एक समय वह था जब कृष्ण राज्य था । उस समय घी दूध की नदियाँ बहती थी । पहले का खाया-पिया 75-80 वर्ष का व्यक्ति दौड़ लगा दे तो आश्चर्य ही क्या है । महात्मा गांधी ने लाठी के सहारे सारी दुनियाँ नाप ली । आज का व्यक्ति मंदिर तक जाने के लिए स्कूटर, कार रखता है । पुराने समय में मेहमानों का अतिथि सत्कार दूध के गिलास अथवा घी शक्कर से किया जाता था । समय धीरे-धीरे बदलता गया और दूध से चाय का समय आ गया है क्योंकि दूध महंगा हो गया । अंग्रेजों के समय में चाय कॉफी की संस्कृति प्रारंभ हुई । धीरे-धीरे समय और बदला घी गया, दूध गया चाय गयी और आ गयी शराब । मुझे डर है कि वह प्याला समाज में न आ जाये धार्मिक लोगों पर न छा जाए मुझे डर है कि कही हमारे बीच वह परंपरा प्रारंभ न हो जाएं । पहले अपनी बात अपनी समाज में रखी है बाद में दूसरों तक पहुँचाना है आज 4 साल के बच्चे के जेब में टॉफी चॉकलेट के स्थान पर पाउच की पुड़िया नजर आती है वह पापा से कहता है आप खाओगे । माँ मुख खोल ले तो शर्म की बात है छोटी उम्र में ये कुसंस्कार आ गये तो भविष्य खतरे में हैं । तंबाकू में 24 chemicals poision है हर 11 सेकण्ड में तंबाकू खाने से 1व्यक्ति मरता है यह वैज्ञानिक आंकड़ा है । हम इनसे बचने का प्रयत्न करें। व्रत उपवास त्याग करे न करें परंतु तंबाकू, गुटखा पाउच को तो कर ही दें । तो मैं समझूंगा त्याग के पथ पर एक कदम आगे बढ़ गया है । रात्रि भोजन त्याग के पहले गुटके पाउच का त्याग करें । आज श्रीकृष्ण जन्माष्टमी है । 22वें तीर्थंकर नेमीनाथ के

चचेरे भाई श्री कृष्ण थे । समुद्रविजय ज्येष्ठ थे उनके पुत्र नेमीनाथ व 10वें भाई वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण थे । उन्होंने अपने शासनकाल में गौ संरक्षण किया और घी, दूध, मक्खन को बहाया है । वह दिन स्मरणीय दिन है आपने नाच गाकर उत्सव मनाया वह पर्याप्त नहीं अपितु जिसका उत्सव मना रहे हो उनका अनुसरण अवश्य करो ।

"**भगवान को मानो भगवान की मानो**" भगवान कहते हैं मुझे मानते हो तो मेरी भी मानो । कृष्ण के भक्त बहुत है यदि वे श्री कृष्ण को मानने के साथ उनकी भी मानेंगे तो तिर जाएगे ।

एक जलता दीप अनेक बुझे दीपकों को जला देता है आज व्यसन मुक्ति अभियान में एक व्यक्ति भी सक्रियता रखता है तो वह हजारों लाखों का उपकार कर सकता है । अतः इस दिशा में आप अपने कदम अवश्य आगे बढ़ाए।

इसी भावना के साथ - "1008 भगवान महावीर स्वामी की जय"

भारतभूमि पर जब-जब व्यसन, हिंसा, मांसाहार आदि बढ़ता है तथा मानव कर्म विस्मृत हो जाता है, तब-तब युग प्रवर्तक संतों का आगमन होता हैं । ये संत भगवान के पार्षद है ।

- श्री रामभद्र मिश्र (पथरिया)

मैं काफी दिनों से जैन समाज के मंदिरों व घरों में दो सूत्र लिखे पाता हूँ- (1) अहिंसा परमो धर्मः, (2) जियो और जीने दो ।

मुझे लगता है कि यदि व्यक्ति इन दो सूत्रों को अपने जीवन में उतार ले तो किसी शास्त्र और तीर्थयात्रा की आवश्यकता नहीं पड़ेगी ।

- श्रीमान् कृष्ण कुमार दुबे

- यदि हम 10 वर्ष से 15 वर्ष तक की पीढ़ी को सम्हाल लें तो सारे प्रांत ही नहीं अपितु संपूर्ण भारतवर्ष को व्यसन मुक्त बना सकते है क्योंकि यह उम्र पानी जैसी ढलने वाली होती है ।

- श्रीमान् राजकुमार जी, (पथरिया)

व्यसन है विष बेल

(प्रवचन नं. 26)

★ धर्म गुण-दोषों से अवगत कराता हैं। क्योंकि गुण व दोषों को जाने बिना ग्रहण-त्याग की प्रक्रिया की शुरुआत नहीं होती।

कल से जिस विषय का दीप प्रज्जवलन हुआ वह बढ़ता जा रहा है । प्राणी रक्षा व मानवता की सुरक्षा के ऐसे अभियान अनिवार्य हैं । व्यसन के दो भेद हैं अच्छा और बुरा । व्यसन बुरी आदत के रूप में प्रचलन में है जैनाचार्यों ने व्यसनों को महापाप कहा है पापों का राजा व्यसन है । पाप करने वाला तो होश में भी आ जाए परंतु व्यसनाग्रस्त शीघ्रता से होश में नहीं आ पाता । जानना अलग बात है, मानना अलग बात है । जान तो हम बहुत कुछ लेते हैं परंतु जीवन में नहीं उतार पाते । व्यसनों से छूटे बिना मानना संभव नहीं । अब प्रश्न है कि पहले व्यसन को जाने कि त्याग करें । त्याग करें कि जाने। बिना जाने त्याग संभव नहीं । छहढ़ाला की तीसरी ढ़ाल में कहा भी गया है-

बिन जाने ते दोष गुनन को कैसे तजिये, गहिये।

जाने बिना दोषों से छूटना संभव नहीं । अपितु जानने के पूर्व होश में होना अनिवार्य हैं और व्यसन बेहोश कर देते हैं इसलिए पहले कुछ तो त्यागों तब कुछ बात समझ में आ जायेगी । एक सज्जन व्यक्ति मेरे पास आया बोला महाराज प्रभु की यही मर्जी है इसलिए अमुक व्यसन का सेवन करता हूँ । जब ईश्वर चाहेगा तो छूट जायेगा । भगवान न तो स्वर्ग ले जायेगें न नरक । भगवान को तुम से क्या लेना देना वे तो वीतरागी हैं । अपने दोषों को छिपाने भगवान की आड़ क्यों लेते हो । कर्म करो तुम, थोपो भगवान पर । यह तो भगवान के मौन का तुम नाजायज फायदा उठा रहे हो । यदि वे बोलते होते तो कह देते तुम करोगे तुम्हें मिलेगा मेरी ओट मत लो ।

एक छोटा बालक मात्र अपनी भूख को जानता है । कुछ बड़ा हो जाता है तो समझ विकसित होती है फिर कोई खाने दे तो वह आधा स्वयं खाता है आधा मंमी को देगा । धीरे-धीरे सोच बढ़ती जाती है और उदारता बढ़ती जाती है फिर वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना आ जाती है कि प्राणी जगत का कष्ट दुख दूर हो जाए । यद्यपि यह सत्य है कि कोरी भावना से काम नहीं चलता हमारे चाहने मात्र से कुछ नहीं होता । पुरुषार्थ, देव, नियतिं आदि सभी संवाय मिलकर कार्य सिद्धि में हेतु बनते है यदि तुमने दूसरे को पानी पिलाया तो तुम कभी प्यासे नहीं रहोगे । किसी की क्षुधा मिटाई है तो कभी भूखे नहीं रहोगे । दूसरे का भला करोगे तो स्वयं का भला होगा ।

कहा भी है-

कर भला होगा भला नेकी का बदला नेक है ।

दूर कर हिंसा जगत से जीव सबका एक है ॥

जैसे तुम्हें दुःख होता है वैसे ही कष्ट पहुँचाने से दूसरे को दुख होगा । जैसा व्यवहार तुम अपने लिए चाहते हो वैसा व्यवहार तुम दूसरों से करो ।

भगवान महावीर स्वामी ने हमें जीवन जीने की कला सिखलायी है-

पहली बात व्यक्ति व्यसनों से दूर रहे । व्यसनों को जाने बिना उसे छोड़ना सरल नहीं । बड़े-बड़े वैज्ञानिकों, दार्शनिकों ने भी इस दिशा में कदम उठाये हैं हम तो बात को एक कान से सुन दूसरे से निकाल देते हैं परन्तु उन्होंने गहन चिंतन, मनन reserch and discovery की है और उसके harmful facts भी दिये हैं शास्त्रों में व्यसन सात कहे हैं -

जुआ खेलना मास मद वेश्या गमन शिकार ।

चोरी पर रमणी रमण सातो व्यसन निवार ॥

कुटुम्ब परिवार की अर्थव्यवस्था को नष्ट करने वाला मद्य सेवन है । चोरी, शिकार, पर स्त्रीगमन, जुआ, वेश्यागमन, मांस खाना, शराब पीना ये सात व्यसन है ।

यद्यपि हमारे शास्त्रों में गुटखा, पाउच नाम के व्यसन का नाम तक नहीं मिलता और आज यह व्यसन ही सबसे अधिक प्रचलन में है और आश्चर्य तो यह है कि कोई इसे व्यसन मानता ही नहीं fashion की वस्तु बन गई है । तंबाकू में पाये जाने वाले chemicals, cancer रोग उत्पन्न करते है । कॉर्बन मोनो ऑक्साइड हृदय रोग उत्पन्न करता है NH4 liver को नष्ट करता है । पायरीडियन आंतों में खुश्की, कार्बोलिक एसिड सुस्ती स्मरण शक्ति क्षीण करता है चिड़चिड़ापन बढ़ता है ।

टार फेफड़े के नाजुक हिस्से खराब करता है lung cancer की संभावनाएं बढ़ जाती है । 1992 में 3 लाख 72,000 लोग तंबाकू से मरे थे । तंबाकू सेवन से 4 लाख व्यक्ति केंसर के शिकार होते है । 40 लाख 80 हजार मियादी बुखार से पीड़ित हो जाते है । तथा 10 लाख 89 हजार व्यक्ति हृदय रोग से पीड़ित होते हैं। हॉस्पिटल में पड़ा व्यक्ति भी मरना नहीं चाहता । परिस्थिति वशात् मरने के लिये तैयार हो जाए परन्तु फिर भी मरना नहीं चाहता । मरने का उपक्रम करता है परन्तु मरना नहीं चाहता ।

हर व्यक्ति को अपने-अपने प्राण प्यारे होते हैं जब मरना नहीं चाहते तो व्यसनों का सेवन क्यों ? जब व्यक्ति का ज्ञान अंतरात्मा में उतरता है तो त्याग का भाव बन जाता है । मुनिसेवा संघ के अध्यक्ष ज्ञानचंद जी जो कि 1 पल तंबाकू बिना नहीं रहते थे उन्होंने आज आजीवन के लिए त्याग कर दिया ।

त्याग का अर्थ है जिसे छोड़ा जाए फिर मुख मोड़कर न देखा जाए ।

यदि मुख मुड़ जाए तो समझो तन से त्याग किया है मन से नहीं ।

विदेश के एक न्यूज पेपर रॉयल कॉलेज ऑफ फिजिशियन में 1992 के नवभारत टाईम्स में न्यूज आयी थी

1. निकोटीन 2. टार, 3. CO ये तीन तत्व जो कि तंबाकू में पाये जाते है । Central Nervous System को प्रभावित करते हैं इससे Heart Attack हो जाता है । तंबाकू, उन्मूलन कानून बनना चाहिए । संविधान प्रायः पुस्तक, दीवाल, बेनर में लिखे तो जाते हैं परन्तु पालन नहीं हो पाता । व्यसन तो जड़मूल से उखड़ना चाहिए । यदि सरकार कमर कस ले कि हमें तो यह अभियान सफल बनाना ही है तो उपलब्धि मिलेगी । यदि ऐसे लोगों के परिवार को हम व्यवसाय दें तथा व्यसनों से मुक्त कराने हेतु कदम उठाएँ तो आपका यह Effort देश की उन्नति में हेतु बनेगा । इस व्यसन मुक्ति अभियान में माहेश्वरी समाज ने भी भाग लिया । यह प्रशंसनीय कार्य है । आप सभी इस दिशा में सक्रिय बनें ।

इसी भावना के साथ- "1008 महावीर भगवान की जय"

- व्यसन युक्त जीवन साक्षात् नरक का द्वार है व्यसनी का शरीर, जीवन, घर, परिवार सब नष्ट हो जाते हैं ।
- हाथ में सिगरेट लेने वाला अपने नरक गमन की तैयारी कर रहा है ऐसा समझना चाहिए ।
- व्यसनी जीता हुआ भी मृतक के समान हैं ।

व्यसन है मृत्यु के द्वार

(प्रवचन नं. 27)

★ *"बुरी आदते मानव को पतन के गर्त में ले जाकर दुर्गति का पात्र बनाती है, ये बुरी आदतें ही वर्ममान युग में "व्यसन" नाम से जानी जाती है। यदि आप सन्मार्गगामी व स्वर्गादिक के पात्र बनना चाहते हो तो व्यसन को छोड़ो व प्रभु से नाता जोड़ो"।*

जिस धरती को तीर्थंकर ऋषभदेव, भगवान राम, गुरु नानक, श्री कृष्ण, ईशा मसीह, हजरत मुहम्मद आदि ने सींचा है और धरती को धर्ममय बना उर्वरा बनाया है । मानव को दानव से मानव बनाने का प्रयत्न किया है । धीरे-धीरे हम उनके द्वारा प्रदत्त संस्कारों को भूलते जा रहे हैं । पाश्चात्यतता ने दिशा ही बदल दी है । नाम, तरीके, स्तर सब कुछ बदला परन्तु व्यसन नहीं बदला । तंबाकू के विषय में इतने harmful effets बताये कि व्यक्ति तंबाकू से तो घबरा गया परन्तु गुटखा आदि के रूप में प्रयोग होने लगा लोग, दिग्भ्रमित हो गये । जिस स्थान से धर्म सूत्रों का सूत्रपात होना चाहिए वहां हमें 'व्यसन मुक्ति' की बात करनी पड़ रही है । 'व्यसन मुक्ति' के साथ-साथ दूसरा विषय प्राणी रक्षा का भी हैं । हम पशु-पक्षियों के साथ-साथ मानव जीवन के रक्षण का भी ध्यान रखे आज के व्यसन मानव जीवन के प्राण हरण करते जा रहे है । तंबाकू के समान चरस, गांजा, बीड़ी, सिगरेट ये भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं ।

1. लगभग 1992 में अखिल भारतीय संस्थान के R.P. & G.K. घोसला प्रोफेसर ने बतलाया धूम्रपान, जहर का रूपान्तर है । जहर तुरन्त मारता है धूम्रपान तड़फा-तड़फा कर मार रहा है ।

2. एक सिगरेट पीना आयु का 5 मिनट घटाना है यदि आपने पूरे जीवन पिया तो आयु 18-20 वर्ष घट गई ऐसा समझना चाहिए । आपने सिगरेट नहीं, सिगरेट ने आपको पी लिया है ।

3. सिगरेट जीवन में खतरनाक है । सिगरेट की हर डिब्बी में एक लाईन लिखी रहती है सिगरेट स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक है ।

4. विश्व संगठन के अनुसार प्रतिवर्ष 25 लाख व्यक्ति सिगरेट पीने से मरते हैं ।

5. भारत में 8 लाख व्यक्ति प्रतिवर्ष सिगरेट व बीड़ी आदि पीने से मृत्यु को प्राप्त होते हैं ।

6. लगभग 400 अरब सिगरेट खपत प्रतिवर्ष होती है जिसमें लगभग 38 अरब की लागत आती है ।

यह पुराना आंकड़ा है वर्तमान का आंकड़ा इससे दुगना होगा ।

7. सिगरेट से होने वाले रोग के इलाज में भी अरबों खरबों रूपये खर्च होते हैं उतना पैसा यदि देश के कर्ज को दूर करने में लगाये या गरीब उन्मूलन में लगाये तो अधिक श्रेष्ठ होगा ।

8. अमेरिका के जान हाकिन्स सृजन पेस्ट की शोध के अनुसार सिगरेट कैंसर के अलावा आंखों पर bad effects मोतियाबिंद भी उत्पन्न करता है ।

9. 7/12/1991 के आंकड़ों के अनुसार पीने वाली गर्भवती महिलाओं में बच्चे मरने के 20 प्रतिशत chance होते हैं । ग्रामीण महिलाएँ बीड़ी पीती है ।

10. गर्भवती महिला यदि बीस से अधिक बीड़ी पिये तो 35 प्रतिशत बच्चे की मरने की आशंका बढ़ जाती है ।

11. तंबाकू खाने से तो हानि है परन्तु उससे संसर्गज व्यक्तियों को भी हानि है उससे विभिन्न रोग उत्पन्न हो जाते हैं ।

12. America cancer socity के आंकड़ों से ज्ञात हुआ है कि 70 प्रतिशत lung cancer तंबाखू से, smoking से होता है ।

13. एच.एस. हेंगर्स ने बताया कि मोतिया व कांचिया बिंदु smoking से होता है । कांचिया बिंदु का तो operation भी नहीं हो सकता है ।

14. जर्मनी क्लासेस में बतलाया है कि smoking से चिल्ड्रन brain dies होती है । America servey के अनुसार 1 लाख 88 हजार लोग smoking से मरते हैं । 22,000 आंकड़े एकत्रित किये ।

15. धूम्रपान करने वालों की अपेक्षा धूम्र सूंघने से मरने वालों की संख्या 80 प्रतिशत अधिक है । तथा अन्य बीमारियों के होने के chance 110 प्रतिशत, 50 प्रतिशत, 116 प्रतिशत अधिक है ।

16. liver Gall bladder से मरने वाले 352 प्रतिशत लोग अधिक है । ये आँकड़े विश्वास को मजबूत करते हैं । विज्ञान के शोध महत्वपूर्ण होते हैं ।

17. विश्व स्वास्थ्य संगठन के द्वारा प्रकाशित चित्र ध्रूमपान के दुष्परिणामों को बताते हैं वे खतरनाक फोटो दिल दहलाने वाले होते हैं धूम्रपान जीवन में कितना हानिकारक है बात उनकी नहीं जो बीमारियों से ग्रसित है वे तो जीते जागते उदाहरण है बात उनके लिए है जो व्यसनों तक अभी नहीं पहुँचे ।

W.H.O. (world health organization) के अनुसार - अमेरिका में 6 लाख, व यूरोप में 10 लाख लोग प्रतिवर्ष व्यसनों से मरते हैं ।

18. heart report यदि धूम्रपान को रोक दिया जाए तो Heart-atteck - से मरने वालों की संख्या कम हो जायेगी धूम्रपान त्यागने पर death rate कम हो जाती है । एच.सी.एफ. के उपाध्याक्ष के.के. अग्रवाल ने बताया कि धूम्रपान के त्याग से हार्ट अटैक, लकवा, गुप्त रोगों, पेट का अल्सर, पुरुष शक्ति सुरक्षित, महिलाओं की बांझ शक्ति कम हो जाती है ।

19. lung cancer से मरने वालों की संख्या धूम्रपान करने से बढ़ जाती है । धूम्रपान कोनडाइसिस - धूम्रपान से विभिन्न बीमारियों की दर बढ़ जाती है । न्यूयार्क कमीश ऑफ हेल्थ - से अन्य बीमारियों से मरने वालों की अपेक्षा सिगरेट से मरने वालों की संख्या कई गुना अधिक है ।

प्रथम विश्व युद्ध - जितने अमेरिकन मरे उससे भी अधिक लोग धूम्रपान से मरण को प्राप्त हो रहे है ।

20. कस्तूरबा - दिनेश भाई ने बताया कि धूम्रपान का धुंआ harmful है, इससे लोग mouth cancer के शिकार हो रहे है धूम्रपान व तंबाकू के सेवन से cancer के आसार बढ़ जाते है ।

21. 3/3/1992 की report के अनुसार lung dise 8.0 प्रतिशत धूम्रपान से बढ़ जाती है धूम्रपान से 65 से कम उम्र वाले लोग 40 प्रतिशत अधिक मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं । bronchitis से 80 प्रतिशत मृत्यु तंबाकू से होती है एच.टी. 6/6/1992 के अनुसार विश्व के 30 लाख लोग प्रतिवर्ष धूम्रपान से मरते हैं धूम्रपान हानिकारक है ।

22. मेनस्ट्रीन smoke मुख से खींचे गया धुँए से मरने वालों का प्रतिशत ज्यादा होता है क्योंकि smoke श्वसन से लिए धुँए में Co, nikotene, 46% Amonialderivative, nitous, bengene, Amine अधिक होते हैं ।

धूम्रपान करने वाले से सूंघने वालों को अधिक रोग होते हैं ।

23. Tobacco smoke - कान, नाक, गले, लंग केंसर, कम वजन व लंबाई वाले बच्चे, घातक हृदय रोग, असमय बाल गिरना आदि बीमारियों को उत्पन्न करते हैं । फ्रांस की एक रिपोर्ट के अनुसार स्वयं धूम्रपान न करने वाले लंग केंसर के मरीज 20-30 प्रतिशत अन्य रोगों के रोगी हो ही जाते हैं ।

24. Doctor प्रेम सोमवती ने बताया बंद कमरे में बैठने से सभी व्यक्ति धूम्रपान के धुएँ से लंग केंसर के शिकार हो जाते हैं ।

25. न केवल धार्मिक गुरुजन, अपितु वैज्ञानिकों की रीसर्च चल रही है जो व्यसन मुक्ति में

प्रयत्नशील है उनका शोध महत्वपूर्ण है ।

26. इनफ्लूएंजा - ऑस्ट्रेलिया में धूम्रपान से होता है ।

27. धूम्रपान निषेध - ब्लूगारिया एक ऐसा देश है जहां 1 भी व्यक्ति धूम्रपान नहीं करता ।

28. धर्मस्थल पहुंचे - डॉक्टर वीरेन्द्र हेगड़े ने सारी दुकानों में धूम्रपान निषेध है । ऐसा सख्त नियम बनाया है । बीड़ी सिगरेट तंबाकू गुटखा नहीं बिकता । यदि नियम पालन नहीं किया तो शासकीय दंड दिया जाता है ।

29. कनाड़ा - अपंगता बढ़ाता है धूम्रपान । फेफड़े देकर धूम्रपान न खरीदे ।

30. न्यूचायना न्यूज के अनुसार धूम्रपान से 1 लाख 40 हजार व्यक्ति प्रतिवर्ष मरते हैं ।

31. डेनमार्क - धूम्रपान से संबंध रखने वालों में दिल के दौरे की दर बढ़ जाती है ।

32. इंग्लैण्ड - सिनाटेर की खपत 50,000 प्रतिवर्ष होती है । दुर्घटना व आत्म हत्या करने वालों से कई गुने लोग धूम्रपान से मरते है ।

33. भारत - सिगरेट हानिकारक है पैकेट्स पर देखें । 18 प्रतिशत अधिक लोग धूम्रपान के शिकार होते हैं ।

कुछ नारे -

(1) कुबैत - सिगरेट को तलाक दो ।

(2) मलेशिया - कैंसर बेचना बंद करो ।

(3) न्यूजीलैण्ड - सिगरेट पीना कम करो ।

(4) नार्वे - धूम्रपान से लंग, गले का कैंसर हो जाता है ।

(5) हॉलैण्ड - शीघ्र मृत्यु लाने वाला धूम्रपान है ।

(6) स्कॉटलैण्ड - धूम्रपान में जन्मते बच्चे Abnormal पैदा होते हैं ।

(7) U.U.R. - टीवी फिल्म में स्मोक सिखाते हैं जो कि अभिशाप है ।

(8) U.S.P. - 80 प्रतिशत फेफड़े की बीमारी, 80 प्रतिशत दिल की बीमारी, 80 प्रतिशत ब्रांकोइटिस धूम्रपान से होता है ।

हम कभी-कभी ऐसी भी विचारधारा रख लेते हैं दूसरा पीता है तो हम क्या करें । दूसरों को मना नहीं कर पाते । हम इसके तरीके बदले । मेरे यहाँ सौंफ सुपारी मिलेगी धूम्रपान नहीं ।

officers के सामने ही सौंफ रख दीजिए । व्यसनों का निषेध कर दीजिए । ऐसा प्रयत्न किया तो स्वयं उपकार हो जायेगा । भगवान महावीर का जिओ और जीने दो का नारा सार्थक होगा । मनुष्य

जीवन दुर्लभ है -

रामायण में कहा है -

बड़े भाग मानुष तन पावा ।

सुर दुर्लभ ग्रंथन नहीं गावा ॥

व्यसनों में कीमती मानव जीवन को नष्ट मत कीजिए । जितने भी लोग मरते हैं वे सभी स्वर्गवासी होते हैं ऐसा नहीं है, वे सभी स्वर्ग जायेगे तो फिर नरक वासी कीड़ा होगा । स्वर्गवास आर्य भाषा है परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि आप पाप करो और स्वर्ग जाओ यदि ऐसा होगा तो पुण्यात्मा कहां जायेगा । पापी बुरा नहीं पाप बुरा है । इसलिए पापी को नहीं पाप को नष्ट करो । इस पंचम काल में नरकगामी सर्वाधिक है । स्वर्गगामी कम है । व्यक्ति दुर्व्यसनों से मुक्त हो ताकि अस्वस्थ न हो, नरक न जाना पड़े उनका जीवन व परिवार खुशहाल हो। वे स्वयं अपना व्यक्तित्व निर्माण करें । हमारा सारा देश व्यसन मुक्त हो जाए । 100 प्रतिशत सफलता मिले न मिले कुछ न कुछ प्रयास होता रहे तो प्रतिशत बढ़ता रहेगा । विज्ञान, धर्मगुरु इस दिशा में प्रयत्नशील हो तो देश व्यसन मुक्त हो सकता है आप मात्र सुनकर ही संतुष्ट न हो अपितु स्वयं त्यागे व आस पास के पड़ौसियों को प्रेरित करें । व्यसनों को त्याग कर जीवनोत्थान करें ।

दो संतों का मिलना दो संस्कृतियों का मिलन है यह मिलन एकता संगठन के सूत्रों को विकसित करता है ।

'युवा शक्ति' इन कार्यों में अंतिम अंजाम दे सकते हैं ।

अपने-अपने स्तर पर ऐसे अभियानों को प्रारंभ कर देश में दया, करूणा के सूत्रों का सूत्रपात करें ।

एक संगठन बनाना यानि पू. गुरुदेव विमलसागर जी के सूत्रों को साकार करना है । सदैव-सदैव सुई धागा बनों व एकता संगठन के सूत्रों को विकसित करो ।

इसी भावना के साथ - "अहिंसा के मसीहा 1008 भगवान महावीर स्वामी की जय"

- ये व्यसन तुम्हें नरक के द्वार ले जायेगे ।
- व्यसन करने वाला स्वयं के लिए स्वयं ही मृत्यु का यमदूत है ।
- ये व्यसन तुम्हें ही नहीं अपितु तुम्हारे संपूर्ण कुटुम्ब को ले डूबेंगे ।

अहिंसा एवं शाकाहार

(प्रवचन नं. 28)

★ *अहिंसक हृदय में ही दया व करूणा के स्त्रोत फूटते हैं।*

★ *जो दूसरों के प्राणों को अपनी तरह समझता हैं, वह किसी पर अत्याचार नहीं करता।*

बंधुओं ! सौभाग्य इस बात का है कि हमने ऐसी पावन वसुंधरा पर जन्म लिया है जहां पर अनेक संस्कृतियों का संगम हैं जहां अनेक दर्शन व उनके संस्थापकों ने अपने विचारों से देश, राष्ट्र व समाज को उर्वरा बनाया है । मानव को दानवता से हटाया है । उन्होंने ऐसा-ऐसे प्रयास किये है कि मानव में मानवता का भी संचार हो । मनुष्यता से मनुष्य होने का महत्व है शरीर से मनुष्य होना अलग बात है और विचारों से होना अलग बात है ।

आहार निंद्रा भय मैथुनं च, सामान्य मेतत् पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषा मधिको विशेषा, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥

धर्म विहीन को पशु के समान कहाँ गया है दया धर्म का मूल है । यदि धार्मिकता है तो दया अवश्य होगी । तुलसीदास जी कहते हैं -

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान ।
तुलसी दया न छाड़िए, जब लो घट में प्राण ॥

यह हमारे जैनाचार्यों का कथन है कि धर्म दया से विशुद्ध होता है । दया से सहित है वही धर्म है आचार्य कुंदकुंद कहते हैं 'हिंसा रहिये धम्मे' हिंसा से रहित धर्म होता है दया, करूणा में भी कुछ अंतर है नया शब्द नये अर्थ को लिये हुए होता है भगवान महावीर स्वामी ने जिओ और जीने दो का सार्वभौमिक सूत्र दिया । उन्होंने जिसे मात्र चर्चा में नहीं चर्या में उतार कर दिखाया । आत्मा का स्वभाव अहिंसा है परंतु लोगों ने विकृत कर दिया जैसे जल का स्वभाव शीतलता है परन्तु अग्नि का संसर्ग पाकर गर्म हो जाता है । वैसे ही अहिंसा आत्मा का स्वभाव रूप धर्म है परन्तु पाश्चात्यतता ने मानव को आज हिंसा पर उतारू कर दिया । अहिंसा कहने मात्र को है लोगों ने शब्द याद रखें है पर अर्थ तक नहीं पहुंचे । स्थितियाँ देखने में आयी । अहिंसा बाहर से नहीं अंतरात्मा से उत्पन्न होती है । व्यक्ति की परिणति भी बदलेगी व सम्यक् दया होगी । बहुत से लोग जीव दया की बात करते हैं परन्तु

शब्द ही शेष रहे है जितना पढ़ा, रटा, उतना ही पालन करते हैं आप चींटी को मारते नहीं फूल झाडू से झाड़ते हैं परन्तु झाड़ते वहां है जहां पानी पड़ा हो अग्नि जल रही हो या वाहन निकल रहे हो । आपने दया तो की परन्तु यह आपकी विवकेपूर्ण दया नहीं है ।

धर्म ज्ञान व विवेक के साथ हो तो वास्तविक धर्म है ।

समंतभद्र महाराज ने अपने रत्नकरण्डक श्रावकाचार में कहा है -

सद्दृष्टि ज्ञान वृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः ।

यदीय प्रत्यनीकानि भवन्ति भव पद्धतिः ॥2.श्रा.॥

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र धर्म है सच्ची श्रद्धा आत्म रूचि है । पहले विश्वास हो कि हम रक्षा करेंगे । सम्यग्दर्शन के साथ ज्ञान हो, प्राणी रक्षा का भाव हो, फिर विवेक जाग्रत हो कि जीव रक्षा करे कैसे करे तो क्रिया सार्थक हो । अन्यथा बाहर में प्रतिष्ठा मिलेगी परन्तु धर्म नहीं हो पायेगा । आचरण भी हो । धर्म रत्नत्रयमय होता है ।

सभी संप्रदाय सभी धर्मानुयायी सभी धर्म ग्रंथों का दया का सूत्र समान है जो सभी संप्रदायों को एकता के सूत्र में पिरोय रहता है हम प्राणियों की रक्षा कैसे करें । भगवन्तों ने प्राणी रक्षा के लिये विकास के सूत्र दिये हैं भाषा, शैली, शब्द, भाव अलग-अलग हो सकते हैं परन्तु बात एक ही होती है समझाने का तरीका भी अलग हो सकता है परन्तु प्राणी रक्षा का सूत्र समान है ।

हमें देर लग सकती है परंतु परिश्रम करना होगा । 100 प्रतिशत लोग न भी माने परन्तु सफलता अवश्य मिलेगी । सभी संस्थापकों की छोटी बातों से प्रारंभ किया धीरे-धीरे विकास होता है और बूंद सागर बन जाती है हम अपनी सीमाओं में आये लोगों का उद्धार करेंगे तो विश्व संतों का चिरऋणी रहेगा । मांस यद्यपि आहार है ही नहीं ।

जिसका अहरण किया जाए वह आहार कहलाता है । मांस का आहार के रूप में प्रचलन हो रहा है यह अलग बात है परंतु कोई भी मनुष्य जन्म से मांसाहारी नहीं होते । शेर भी जन्मतः मांसाहारी नहीं होता क्योंकि वह मां के दूध पर निर्भर करता है दूध में सबसे अधिक विटामिन और प्रोटीन होते हैं सारे गुण दूध में होते हैं । हमारे शरीर के लिए Adoptation अलग-अलग है । यदि बॉडी में प्रोटीन आदि की मात्र बढ़ जाये तो Hyper Protein Disease हो जाती है ।

चरकसंहिता में कहा- मनुष्य अपनी मर्यादा में रहकर संतुलित आहार करता है तो बीमार नहीं पड़ता । प.पू. तपस्वी सम्राट सन्मति सागर जी महाराज मात्र छाछ, पानी लेते थे । अस्वस्थ होने पर औषधी नहीं लेते थे । मात्र छाछ, पानी से स्वस्थ हो जाते थे ।

मन व विचारों की पवित्रता आचरण को शुद्ध करते हैं । आचरण से विचार शुद्ध होते हैं ये एक

दूसरे के पूरक हैं Coin के Head And Tale की तरह यदि विचार पवित्र है तो आचार पवित्र हो गया समझो। संत आचरण पवित्र रखते हैं और पवित्र आचरण ही विचारों को पवित्र बना देते हैं । महात्मा गांधी जब विदेश शिक्षा हेतु जाने वाले थे तो माँ उन्हें मुनिराज के पास ले गई । साधु ने कहा विदेश गमन करो पर मेरी तीन बातों याद रखना । 1. माँस, अंडा नही खाना, 2. शराब का सेवन नहीं करना, 3. परस्त्री पर खोटी दृष्टि नहीं रखना ।

महात्मा गांधी वहाँ जाकर बीमार पड़ गये डॉ. ने अंडा खाने को कहा- गांधी जी बोले- मैं तो प्रतिज्ञा बद्ध हूँ मरना पसंद करूंगा परंतु अंडे नहीं खाऊँगा ।

ये प्रतिज्ञाएँ उन्नति का कारण बनती हैं यहाँ आचार से विचार शुद्ध हो गये । परंतु यदि कोई गलत संगति में पड़ गया है अब पड़ ही गया है तो अब पहले आचरण की शिक्षा दो कि पहले आचार शुद्ध करो तभी विचार शुद्ध होंगे । जयसिंह पुर नरेश के दीवानपद पर दीवान अमरचंद जी नियुक्त थे । दीवान अमरचंद परोपकारी करूणाशील थे । अहिंसा, दयाशील थे । रात्रि में छुपकर प्रजा के हितार्थ निकलते थे । देश का दीवान भी वीर हो, न कि दया की आड़ में कायरता की चादर ओढ़े हों । ऐसा मंत्रियों ने जयसिंहपुर नरेश से कहा ताकि दीवान को पद च्युत कर दिया जाए । परीक्षा करने हेतु जयसिंहपुर ने 7 दिन के राज्य संचालन की बागडोर सौंपी । नरेश का प्रिय शेर था । जो मांसाहारी था । दीवान ने राजसत्ता हाथ में आते ही मांसाहार पर रोक लगा दी । शेर को शाकाहारी भोजन ही दिया जाए । पकवान दिये जाए । सारे लोग विस्मय में थे कि कहीं दीवान पागल तो नहीं है मांसाहारी प्राणी शाकाहार कैसे करेगा । चूंकि शेर राजा का प्रिय शेर था । यदि वह मर गया तो राजा कुपित होगा । चार दिन हो गये शेर ने कुछ भी नहीं खाया । लोगों में चर्चा का विषय था । अब दीवान ने कहा मैं स्वयं शेर को भोजन कराने जाऊँगा । दीवान जी स्वयं चल दिये । यहाँ सारे लोगों ने बहुत रोका दीवान जी आप वहाँ गये तो भूखा शेर आपको ही शिकार बना लेगा । वे कहते हैं तुम लोग चिंता मत करो ।

दीवान अमरचंद की अहिंसा, दया, करूणा असीम थी । वे भूखे शेर की क्षुधा शमन करने स्वयं जलेबी से भरा थाल लेकर जाते हैं सिपाहियों को आदेश दिया गया दरवाजा खोल दो पहला दरवाजा खोला गया दीवान जी अंदर पहुँच गये । भूखा शेर दहाड़ रहा था दूसरा दरवाजा खुलते ही दीवान जी अंदर प्रवेश करते हैं और कहते है हे वनराज ! आज यह नरराज ! तुम्हारी क्षुधा शमन करने यह जलेबी से भरा थाल लाया है यदि पसंद न हो तो मुझे अपना ग्रास बना लीजिए । शेर दीवान को छोड़ जलेबियाँ खाता है । यह दीवान जी की अहिंसा का ही साक्षात् परिणाम था । एक अभ्यारण्य में शेर को घास खाते देखा गया अखबार में उसका फोटो था । पशु बीमार पड़ते हैं तो

घास वगैरह खाते हैं ।

हमारे विचारों का प्रभाव दूसरों पर भी पड़ता है मुनि महावीर भगवान जहाँ साधना करते थे उनकी पवित्र वर्गणाओं के प्रभाव से जन्म जात बैरी एक ही घाट पर पानी पीते थे यह अहिंसक परिणामों का ही प्रभाव था ।

वैज्ञानिकों ने शरीर से निकलते वाली आभाओं पर Reserch की है । प्राणियों पर अहिंसा का प्रभाव दया, करूणा रूप होता है । संत के सन्मुख पहुंचते है तो शांति महसूस होती है क्रूर व्यक्ति (Criminal person) हो तो खौफ डर उत्पन्न होता है । निर्भयता नहीं रहती है विचार वातावरण को प्रभावित करते है ।

आप अपने जीवन में आचार व विचारों को पवित्र बना लीजिए । उसी पवित्र आत्मा में धर्म का निवास होता है तथा सम्यक् उपलब्धी होती है ।

संत जब आपसी भेद भूल एक ही मंच पर बैठ धार्मिकता का शंखनाद करते हैं तो उपलब्धि अपूर्व होती है प.पू. गुरुदेव आचार्य विमल सागर जी कहते थे सुई धागा बनो, कैंची नहीं । सुई धागा एक दूसरे से जोड़ता है एकता संगठन के सूत्र देता है ।

कैंची तोड़ती है काटती है ।

आज यहाँ विभिन्न समाज, संप्रदायों का संगम है व्यसन मुक्ति, शाकाहार, अहिंसा के विचारों को मिलकर अपनी आवाज बुलंद करेंगें तो हम परमात्मा के सच्चे सेवक कहलाएगें ।

इसी भावना के साथ- "1008 महावीर भगवान की जय"

- शाकाहार सात्विकता का प्रतीक है । शाकाहारी के परिणाम स्वभाव से कोमल ही होते हैं ।
- खान-पीन का हमारे विचारों व आचार पर बहुत प्रभाव पड़ता हैं ।
- सात्विक वृत्ति वाला मसीहा का अग्रदूत हैं ।

करो अहिंसा का शंखनाद

(प्रवचन नं. 29)

★ हिंसा करने वाला दूसरों को कष्ट देकर स्वयं सुख पाना चाहता हैं । परंतु यह कदापि संभव नहीं क्योंकि दूसरों को दुःख देने से पलटकर दुःख ही मिलता हैं ।

हम जिस देश की संस्कृति में पल बढ़ रहे हैं उसका निर्माण- कलाकृति पूर्ण इमारतों ऊँचे महलों से, तालाब या किसी ऊँचे पर्वत से नहीं हुआ अपितु उन महापुरूषों से हुआ है जिन्होंने मानवता का शंखनाद किया, मानवता के सूत्र दिये हैं, हिल-मिलकर रहना सिखाया है । हमारे देश में यदि राम हुए है तो रावण भी हुए, कृष्ण हुए तो कंस भी हुए । यदि राम का नाम जीवंत है तो रावण का भी । अंतर मात्र इतना है कि राम जब दुनियाँ से गये तो उनके नाम के मंदिर बने, उन्हें पूजा गया, अपना आर्दश बनाया गया ।

रावण जब दुनियाँ से गया तो उसके पुतले बने जिन्हें जलाया गया और आज भी क्रम जारी है । निर्णय हमें यह करना है कि हम क्या बने ? राम की रावण ? राम जैसा आदर्श बनाओंगे तो तुम भी राजा बनोगे । पूजे जाओगे ।

अप्पा सो परमात्मा, अर्थात् हे आत्मा ! तू भी परमात्मा बन सकता है । परंतु आदर्श व संस्कारों का यदि ह्रास होता रहा तो तुम राम नहीं रावण बनोगे ।

घर-घर रावण, हर घर लंका ।
इतने राम कहाँ से लाऊँ ।
घर-घर पैदा हो गये कंस इतने श्याम कहाँ से लाऊँ ।।

आज महावीर, पार्श्वनाथ पुनः अवतार ले यह संभव नहीं । इसलिए राम तुम्हें ही अपने पुरुषार्थ से बनना होगा । राम सा आदर्श हो तो राम आज भी हमारे बीच हो सकेंगे । शास्त्रों में जिंदगी की बात आती है "मानव जीवन दुर्लभ है ।" जीवन को भूल जिंदगी याद रखी जो जीविका तक सीमित रह गई।

आज की जिंदगी जीविकोपार्जन तक सीमित है जीविकोपार्जन प्रधान है जीवन गौण है । महानगरों में मनुष्यों का जीवन पशु से भी बदतर है । प्राणों का कोई मूल्य नहीं 100-50 की मृत्यु सहज बात है । लोकल ट्रेन से लोगों की मृत्यु आम बात है । मनुष्य आजीविका की दौड़ में जीवन की कीमत नहीं करता हैं ।

व्यक्ति स्वयं मशीन बनता जा रहा हैं दौड़ पैसों की ओर चल रही है- पैसों के लिए व्यक्ति जीवन को बलि देने तैयार हैं । कहा जाता हैं :-

Money-Money money Money is a sweet honey but without life no money no honey

यदि जीवन ही न हो तो पैसें की क्या कीमत । आज मूल्य जीवन का नहीं, आजीविका का है। परंतु आजीविका मात्र पर्याप्त नहीं क्योंकि आज सर्विस तो मिलती हैं । पर संस्कार नहीं । पैसा मिलता है पर सुख नहीं ।

सोने की चिड़िया कहलाने वाला देश आज माँस निर्यातक हो गया है जिस देश में दूध की नदियाँ बहती थी । आज वहाँ खून की बह रही है । जिस देश को शांति प्रियता के नाम से जाना जाता है आज वह अशांत हो गया है सुख व शांति का lavel घट गया है नैतिकता, शिष्टाचार, सदाचार घटता जा रहा है ।

यदि समय रहते तुम जागे नहीं तो सब खो जायेगा । इसलिए संस्कार व संस्कृति को जीवन्त बनाये रखे । राम राज्य में पशुओं को भी परिवार का सदस्य माना जाता था । सभी तीर्थंकरों के चिन्ह पशु के है । एक भी चिन्ह मनुष्य का नहीं । एक बार प्रश्न आया ऐसा क्यों ? मैंने कहा- पशु अलग-अलग वेश, देश के है परंतु मिलकर रहते है । मनुष्य तो लड़ते रहते है समूह, एकता संगठन से नहीं रहते ।

आज देश में विभिन्न मत, मतान्तर धर्म- संस्थायें हैं । संत, संप्रदाय-संस्कारों को हरा-भरा करने में लगे रहते हैं । शांति बांटोगे तो शांति मिलेगी । सुख बांटोगे तो सुख मिलेगा । दूसरों के कष्ट हरोगे तो तुम्हें कभी कष्ट नहीं होगा । दूसरों को दुःख दोगे तो पलटकर दुःख ही मिलेगा दूसरों को सुख दोगे तो वह पलटकर तुम्हारी ओर आयेगा ।

किसी की वेदना दूर की है तो तुम्हें कभी वेदनाओं का सामना नहीं करना पड़ेगा । महापुरुष तो सब को सुख ही सुख देते हैं- श्रीकृष्ण ने गाय को 'गौ माता' का श्रेय दिया । बैल को महादेव का नादिया बनने का सौभाग्य प्राप्त है । महादेव ने सर्प जैसे विषैले प्राणियों को गले लगाया । एक समय वह था जब "अतिथि देवो भवः" अतिथि को देव माना जाता था । अतिथि का स्वागत सम्मान किया जाता था । आज सब कुछ समापन की ओर है जहाँ प्रातः काल का सुप्रभात घंटा नाद से होता था भगवान की स्तुति से होता था आज वहाँ पशुओं की चीत्कार सुनायी देती है ।

(1) हमारे भारत देश में वर्तमान में लगभग 36000-40,000 - वैध कत्लखाने है । अवैध की तो गिनती ही नहीं है ।

(2) हमारे देश में 10 यांत्रिक कत्लखाने है 2-1/2 लाख पशुओं का वध प्रतिदिन होता है ।

(3) एशिया के एक कत्ल खाने में 1000 गाये, 7000 भेड़ बकरी प्रतिदिन कत्ल किये जाते

है ।

(4) हैदराबाद के कत्लखाने में 6000 पशु प्रतिदिन मौत के घाट उतारे जाते है ।

(5) कोलकाता में 3.1/2 हजार पशु प्रतिदिन कत्लखाने में मृत्यु की गोद में सो जाते हैं । निरंतर बढ़ता पशुधन का हनन, हमें एक दिन दरिद्री बना देगा । घी, दूध, दही का अभाव होगा, खाद नहीं मिलेगा, औषधियाँ नहीं मिलेगी शासन-माँस निर्यात कर पैंसा कमाना चाहता है परंतु जब घी, दूध विदेशों से मंगाना पड़ेगा तो कैसा लगेगा, सोचिए ?

1991 के सर्वेक्षण के अनुसार-

(1) प्रति हजार मनुष्यों के वनस्पत 100 पशु होते है ।

(2) प्रति हजार मनुष्यों में वर्तमान में 176 पशु है । परंतु यदि जीवों की हिंसा निरंतर होती रही तो यह प्रतिशत और भी कम हो जाएगा । पशुधन को आज यदि न बचाया तो तुम्हें दर-दर का भिखारी बनना पड़ेगा । दर-दर की ठोकरें खाना पड़ेगी । क्योंकि श्री कृष्ण की गायें, चीखें और वे तुम्हारा उपकार करें यह संभव नहीं शंभु का नादियाँ चीखे और वे तुम्हें वरदान दें यह संभव नहीं ।

कत्लखानों से अनेक हानियाँ है- (1) 18. लाख गैलन पानी कत्लखाने की सफाई में खर्च होता है । जिससे बड़ी-बड़ी नदियों में Pollution बढ़ता जा रहा है । और वह प्रदूषित पानी अनेक बीमारियाँ खड़ी करेगा । M.K. Jain ने कहा- जैन समाज को अल्पसंख्यक घोषित किया जाए । आंकड़ा जैन समाज का संख्या की दृष्टि से कम है । अतः अल्पसंख्यक तो घोषित होना ही चाहिए । देश, राष्ट्र की शांति के लिए जीव दया, अहिंसा की बात होनी चाहिए । महावीर के सूत्र ही शांति के संवाहक है । उन पर चलना हमारे लिए गौरव की बात है ।

क्योंकि महावीर चर्चा के नहीं चर्या के देवता है वे कहने के पहले आचरण में उतारकर दिखाते हैं संतों के प्रति आपकी आस्था है इसलिए आप धूप में बैठे है वह आस्था आपकी इसलिए है क्योंकि संतों के पास आचरण है । और वे सत्य व अहिंसा के पथ पर स्वयं चलते है वे दूसरों को प्रेरणा देते है । महावीर भगवान के पथानुगामी संतों ने हमेशा अहिंसा को विश्व के कोने-कोने में गुंजायमान किया है । इसलिए आज हमें भी उस अहिंसा के पथ का अनुसरण करते हुए अपने देश को हिंसा मुक्त बनाना है ।

हम लोग प्रतिवर्ष इसी बात को लक्ष्य में रखकर व्यसन मुक्ति व शाकाहार अभियान चलाते है । अजमेर 2011 के चातुर्मास में लगभग 984 स्कूलों के 2 लाख बच्चों ने इस अभियान मे भाग लिया । लाखों लोग शाकाहारी बने । और इस दिशा में हमारे प्रयास सतत् जारी रहेंगे । अजमेर समाज ने जनकल्याण के कार्य में तन-मन-धन से समर्पण किया । आप सब भी उस अहिंसा के पथ का अनुगमन कर अपने देश को हिंसा मुक्त करने में अपना योगदान दें । और अपने आत्महित में प्रवृत हो ।

"Mother's day मनाये सुसंस्कारों के साथ"

(प्रवचन नं. 30)

★ ''माँ''दुनियाँ की सबसे अमूल्य धरोहर हैं।

★ ''माँ''ईश्वर की अनुपम कृति हैं।

★ स्वयं कष्ट सहकर सबको सुख देने वाली होती है माँ।

आज Mother's day हैं। परंतु माँ, को माँ बनाने वाला बेटा होता है। यदि बेटा न हो तो माँ को माँ कौन कहे। माँ व बेटे का गहरा संबंध है। बेटा से यहाँ बेटी भी ग्रहण कर लेना चाहिए। आचार्य अमृतचंद महाराज कहते है-

अस्ति पुरुषश्चिदात्मा- आत्मा पुरुष है। आत्मा को स्त्रीलिंग या नपुंसकलिंग का प्रयोग नहीं करते हैं। मुख्यता से पुल्लिंग को प्रयोग किया जाता है। 'माँ' की महिमा निराली है। धरती को माँ की संज्ञा दी जाती है। एक बच्चे ने मुझसे पूछा धरती को माँ क्यों कहते हैं मैंने कहा- (1) वह सहनशील होती है। (2) सारी दुनियाँ धरती का हृदय छलनी-छलनी कर देती है फिर भी वह क्षमाशील होती है। इसलिए माँ है क्योंकि माँ भी सहनशील होती है 9 माह तक बच्चे को गर्भ में रखती है। कष्ट सहती है, पीड़ा सहकर प्रसव करती है बच्चे का लालन-पालन करती है। क्षमाशील- सहनशील होती है। इसलिए धरती को माँ कहा है।

हमारे भारत को भी 'माँ' की संज्ञा प्राप्त है, 'भारत-माता' कहा जाता है। क्योंकि वह भारत देश सुसंस्कारों की जननी है बड़े-बड़े महापुरुष भारत की माटी में जन्में है। बड़े-बड़े महापुरुषों को भी माँ की संज्ञा दे दी जाती है माँ बच्चे के विकास की आधारशिला है 'माँ' स्वयं साँचा बनती है तब बच्चे को संस्कारों के सांचे में ढ़ाल पाती है। K.G. के Teacher सबसे अधिक मेहनत करते है। हाथ पकड़ कर 1,2,3. अ,आ सिखाते है। इसलिए वह प्राथमिक माँ है। स्त्री वह शक्ति है जो बालक के विकास में अग्रिम भूमिका अदा करती है। जब माँ बच्चे को जन्म देती है और जन्म देते ही मर जाती है तो बालक अनाथ हो जाता है। अब कौन सुसंस्कार दें। हाथ पकड़ कर लिखना सिखाती है। 'माँ' है तो ममता नियम से होती है। चाहे माँ मनुष्य की हो या पशु की माँ कितनी भी क्रूर हो बालक के प्रति ममता मयी होती है।

माँ अपने बालक को गर्भ से ही सुसंस्कारित करती है। माँ मदालसा अपने बच्चों को पालने मे भी लोरी सुनाती थी। तो आध्यात्मिक लोरियाँ सुनाती थी।

सिद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि।
संसार माया परविर्द्धनोऽसि॥

जैसी माँ होती है वैसे बच्चे होते है

Like mother like daughter

Like father like son.

माँ धार्मिक है तो बच्चे भी धार्मिक होते है । 'माँ' मात्र जन्म नहीं देती अपितु संस्कार देती है जन्मदात्री तो बहुत हो सकती है । परंतु जो माँ बच्चे को संस्कार देती है वह अच्छी व सच्ची होती है वह बेटे को भारभूत नहीं उपहार स्वरूप बनाती है । बच्चे को संस्कार दोगे तो ही अच्छा बनेगा आज की मातायें रोते बच्चें को टी.वी. के सन्मुख बिठा देती है वह चुप हो जाता है । परंतु तुमने जो बीज बोये है वे ही फल प्राप्त होगे । कल को जब आप बूढ़े हो जायेंगे तो बेटा भी आपको टी.वी. के सामने बिठा देगा । वह 'माँ' अच्छी है जो बच्चों को णमोकार सिखा देती है, चौबीस तीर्थंकरों के नाम सिखा देती है जिस माँ ने बच्चे को धार्मिक संस्कार दिये है वह भी मृत्यु की बेला में आपको णमोकार सुनायेगा, तीर्थयात्रा करायेगा, गुरुओं के पास ले जायेगा । बेटा कहेगा- माँ ! णमोकार सुनों यही आत्मा का हितकारी है । जो बेटा अच्छा होता है तो माँ की आत्मा से दुआ निकलती है बेटा ! जुग-जुग जिओं । 'माँ' धार्मिक है तो बेटा कहेगा धन्य है मेरी माँ ! माँ बेटे को हाथ की अँगुली पकड़ आज गुरुओं के पास ले गई है तो कालान्तर में बेटा 'माँ' को कंधे पर उठाकर श्रवण कुमार बन तीर्थयात्रा करायेगा । बंधुओं ! यात्रा जब होगी तब होगी बेटे को धार्मिक संस्कार नहीं दिये तो कल को वह आपको चुप कर देगा शांत बैठो ।

जो माँ बच्चों को संस्कार नहीं देती उसके लिए कहा जाता है-

"माता शत्रु पिता बैरी" संस्कार विहीन जीवन पशुवत् होता है । संस्कार विहीन बच्चा दर-दर की ठोकरें खाता है, अपमान का जीवन जीता है । और माँ को दुःख सहना पड़ता है कि काश ! मैंने अपने बच्चे का सुसंस्कार दिये होते । यदि बच्चे माता-पिता को समझने लगे, माता-पिता बच्चे को समझ ले । तो दुनियाँ ही पलट जाये । माता-पिता का सम्मान बेटा करता है । परंतु आज स्थिति दूसरी है । एक दिन मैंने नियम दिया- आज माता-पिता के चरण छूना है । तो लोग आश्चर्य में पड़ गये क्योंकि संस्कार नहीं है । एक ऐसा भी संस्कार होना चाहिए कि बेटे माता-पिता का सम्मान रखे तथा माता-पिता बेटे को आशीष दें ।

माता-पिता के आशीष में बड़ा चमत्कार होता है । अंतरात्मा की दुआ फलीभूत होती है । आप Mother's day मनाये परंतु मात्र बाहर से नहीं अपितु संस्कारों की सुवास से महका कर मनाये, आज वादा करें-

आप ने जन्मोत्सव मनाया है मैं मृत्यु महोत्सव मनाऊँगा ।

"माँ" के प्रति सच्चा समर्पण है तो Mother's day मनाना, सार्थक है । अन्यथा कोरी परंपरा का ही निर्वाह हो पायेगा ।

इसी भावना के साथ- "1008 महावीर भगवान की जय"

मैं तो आत्मा का डॉक्टर हूँ

(प्रवचन नं. 31)

★ *स्वस्थ शरीर में ही चित्त स्वस्थ होता हैं। रोगी व्यक्ति आत्मचिंतन भी नहीं कर सकता। इसलिए चित्त व चेतन की स्वस्थता हेतु देह का स्वस्थ होना भी अनिवार्य हैं।*

(Doctor's seminar एक वार्ता)

आत्मा और शरीर का यद्यपि संश्लेष संबंध है दूध व पानी की तरह संबंध है इसलिए दोनों का एक-दूसरे पर प्रभाव होता है । मन प्रसन्न है तो शरीर की अस्वस्थता होने पर भी आकुलता नहीं होती । सनत कुमार चक्रवर्ती ने जब दिगंबर मुनि दीक्षा ली तो भयंकर गलित कुष्ठ हो गया स्वर्गो में उनके समता भाव की चर्चा हो रही थी । तभी एक देव परीक्षा हेतु आया परंतु महाराज मेरू सम अविचल रहे । और जन्म, जरा, मृत्यु रूप रोगों की औषधी माँगी । देव जो कि वैद्य का वेश धरकर आया था वह शांत रह गया । आचार्य वादीभ सिंह सूरि को भी जब कुष्ठ रोग हो गया था तो एकीभाव स्तोत्र की रचना कर डाली भक्ति के प्रभाव से रोग ठीक हो गया । मन की प्रसन्नता, तन की स्वस्थता पर अपना प्रभाव डालती है । और मन प्रसन्न होने से संतो के आधि व्याधियाँ तो यूं ही शमन हो जाती है ।

जैन शास्त्रों में कहा है कि अंगुल प्रमाण हिस्से में 96-96 रोग होते है । राजवार्तिक में प्रश्न किया - कि जब 1-1 अंगुल में 96-96 रोग है तो पूरे शरीर में कितने होंगे आचार्य शिवआर्य महाराज कहते है कि पूरे शरीर में 5 करोड़ 58 लाख 99 हजार 584 रोग होते हैं । चरक संहिता में भी कहा है -

''देहं व्याधि मंदिरम्''

शरीर तो व्याधियों का मंदिर है । इसलिए साधक शरीर पर तो ध्यान ही नहीं ले जाते । वे तो अनंत आत्मिक शांति की संवेदना करते है । हमारे पूज्य गुरुदेव तपस्वी सम्राट सन्मति सागरजी महाराज विज्ञान के लिए एक बड़ी चुनौती थे । जहाँ विज्ञान कहता है शरीर के लिए फलाने-फलाने Vitamins जरूरी है । इनके बिना शरीर नहीं चल सकता । महाराज का 45 वर्षों से अन्न का त्याग था, 40 वर्ष से संपूर्ण रसों का त्याग व 9 वर्ष छाछ, पानी लेते हो गये । 1 उपवास 1 आहार लेते थे । महाराज कहते थे - क्या वैद्य-वैद्य लगाये रहते हो । आत्मा का ध्यान करो । जब हम लोग मड़िया

जी में थे । तो वहां Medical था वहां बहुत से Doctars आये थे । Seminar था । वे बोले महाराज हम सब Doctors आपके दर्शनार्थ आये हैं मैंने कहा - मैं भी Doctor हूँ । बे बोले - अच्छा, किस Subject के है । मैंने कहा - मैं तो आत्मा का Doctor हूँ ।

आप शरीर का उपचार करते हैं । आगम कहता है जब तक असाता वेदनीय का उदय है दवाई लाभ नहीं देती । साता वेदनीय के उदय में औषधी काम करती है । Doctor's भी जब अपनी पूरी शक्ति लगा कर किसी को ठीक नहीं कर पाते तो भगवान पर छोड़ देते हैं । असाता वेदनीय के तीव्रोदय में साधक समता बनाते है । और समता से ही वे अपने रोग पर विजय पा लेते है साधक न तो शारीरिक चेष्टा करता है न मानसिक, न ही वाचनिक । जिससे Energy Waste होने से बचा लेते है । और आत्म ध्यान, चिंतन, लेखन में उस Energy का Use कर लेते थे । संतजन शास्त्रों व प्रवचन के माध्यम से प्राणियों का दुःख दूर करते है ।

डा. भी हित की भावना से इलाज करता है । इसलिए वह जीवनदाता, भगवान लौकिक दृष्टि से माना जाता है । Doctors चीरा-फाड़ी करता है फिर भी पुण्य आस्रव करते है । गुरु शिष्य को दंडित कर पुण्य आस्रव करते है । जेलर कैदी को डंडे मारकर भी पुण्यास्रव करते है । क्योंकि अंतरंग में हित की भावना छिपी होती है ।

जो Doctors करूणा रखते है वे पुण्य कमाते हैं, सभी नहीं । जो दयालुता नहीं रखते उन्हें **''वैद्यराजस्य नमस्तुभ्यं, यमराजस्तु, सहोदरा । यमराज हरति प्राणं, त्वं प्राण धनानि च''॥** वैद्यराज को यमराज की संज्ञा दे दी जाती है । क्योंकि यमराज तो मात्र प्राण ही हरण करता है । परन्तु वैद्य तो प्राण व धन दोनों का हरण कर लेता है ।

जैन दर्शन में भी शरीरिक स्वास्थ्य हेतु बड़े-बड़े शास्त्र, वैद्यक संबंधी होते है । सभी वैद्यक शास्त्र शराब, माँस आदि को शरीर के लिए हानिकारक मानते है ।

महात्मा गांधी जब विदेश यात्रा पर जा रहे थे तो उनकी माँ जैन मुनि के पास ले गई । कहा - महाराज आशीर्वाद दे । महाराज ने कहा - तीन नियमों का पालन विदेश में करना - 1. माँस नहीं खाना, 2. अंडा नहीं खाना । 3. परस्त्री पर नजर मत डालना । गांधी जी विदेश गये और परीक्षा की घड़ी सामने आ गई । उन्हें कुछ व्याधि हो गई । Doctors ने अंडा खाने की सलाह दी, महात्मा गांधी अपने नियम में अड़िग रहे और बोले मैं मर जाऊंगा परन्तु अंडे कभी न खाऊँगा ।

प्रवचन में कही महाराज की बातें तुम मानो न मानो Doctors की बात मान लेते हो । संत कहते है - रस परित्याग करो Sunday - नमक, Mondy - हरी, Tuesday - मीठा, Wednesday - घी, Thrusday, - दूध, Friday - दही, Saturday - तेल मत खाना । यदि व्यक्ति धर्म की पद्धति से चले तो कभी बीमार ही न हो । High blood pressure हो तो Doctors नमक बंद करा देते

है । विज्ञान कहता है भोजन के उपरांत तीन घंटे तक नहीं सोना चाहिए । जैन दर्शन पहले ही कह रहा है रात्रि भोजन त्याग करो ।

2. खाने पीने का System व्यवस्थित न हो तो बीमारी होती है । संत दिन में 1 ही बार लेते है ।

3. गर्म पानी से पेट संबंधी Problem नहीं होती । ऐसा विज्ञान कहता है ।

आगम भी कहता है । प्रासुक जल पीना चाहिए ।

4. विज्ञान कहता है Filter water, mineral water स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है वह Harmful bacteria free होता है ।

तो आगम कहता है कि छानकर पानी पीना चाहिए ।

5. विज्ञान One drop of water में 36,450 जीव बताता है तो आगम असंख्यात बताता है ।

6. Naturopathy सूर्य चिकित्सा की बात करता है ।

1. नंगे पैर चलोगे ।

2. ब्रह्मचार्य से रहो । सदा स्वस्थ रहोगे। ब्रह्मचारी के पास तेज होता है ।

भवानी निकेतन में कुछ Doctors आये बोले -

1. इतनी भी भीड़ में मत रहिये ।

2. इतने लोगों से अहार मत लो ।

3. इतने लोगों से पैर मत धुलाओं । अन्यथा Infection हो सकता है ।

मैंने कहा - ये तो रोज का काम है । हम लोग अपना आंतरिक संतुलन बना कर रखते है इसलिए वातावरण हमारे ऊपर कम प्रभाव छोड़ता है । Distric lavel के doctor's saminars हुए । आज वर्तमान में 1-1 रोग की अनेकों औषधियां है । जो शुद्ध औषधी है उसका सेवन कर हम अपने संयम के रक्षण के साथ-2 स्वस्थ भी रह सकते है । डॉक्टर्स को माँसाहार के हार्म फुल Effect बताकर लोगों को शाकाहार की ओर प्रेरित करना चाहिए । यदि आपने शाकाहार की दिशा में कदम उठाये है तो ये आपके जनसेवा, मानव कल्याण के कार्य होंगे ।

डॉ. जिनेन्द्र जैन भिलाई ने कहा था - ऐसे सेमीनार होना चाहिए ।

सारे विश्व के Doctor की List, संपर्क सूत्र एक स्थान पर एकत्रित होना चाहिए ।

कुछ लोगों ने कहा महाराज संतों को उससे क्या लाभ ?

मैंने कहा कम से कम रोग का पता तो चल ही जाता है ।

क्षुल्लक अवस्था में जब मेरा स्वास्थ्य खराब हुआ मुझे तपेदिक हो गया था । वैद्यों को दिखाया परन्तु रोग का पता नहीं चला फिर वहां एक चंवरे जी थे वे मेरे पास आये बोले - महाराज ! X-ray करवाना पड़ेगा । उस समय हमें चक्कर बहुत आते थे, भोजन रूचता नहीं था, चिड़चिड़ाहट रहती थी तथा बुखार बना रहता था । हम लोगों ने जब x-ray कराया तो पता चला कि मुझे तपेदिक हैं यद्यपि उस समय लोगों ने दीक्षा छेद व अंग्रेजी दवाईयों के सेवन हेतु दुराग्रह भी किये परन्तु मैं तो अड़िग ही रहा । और चंद्रप्रभु जिनालय में जाकर मैंने प्रतिज्ञा ले ली कि यदि में स्वस्थ हो गया तो दिगम्बरी जिन दीक्षा ले लूंगा और स्वास्थ्य लाभ नहीं हुआ तो सल्लेखना पूर्वक समाधि मरण करूंगा । कुछ श्रावकों ने मेरे संयम मार्ग में सहयोग दिया और कहा कि हम आपका उचित इलाज भी करायेंगे तथा मुनि दीक्षा भी दिलवायेंगे देशी इलाज प्रारंभ हो गया और धीरे-धीरे स्वास्थ्य लाभ होने लगा । 6 महीने का कोर्स था परन्तु 1 ही महिने में आराम लगने लगा ।

कहने का तात्पर्य है कि यदि हम दृढ़ रहे व्रतों में मजबूत रहे तो संयम विघातक स्थितियों से बच सकते हैं । तथा साधु जीवन में ही रहकर इलाज के माध्यम से स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर सकते है ।

हमारे संघ में 1 महाराज को मस्तिष्क ज्वर हो गया, परन्तु समझ में नहीं आ रहा था कि क्या हुआ एक डॉ. शर्मा जो मुझसे प्रभावित थे उन्हें दिखाया गया वे बोले इन्हें मस्तिष्क ज्वर हैं फिर उनका अनुकूल इलाज प्रारंभ हुआ ।

एक बार लोहारिया में जब मुझे फेक्चर हो गया था । तब Doctors ने कहा Plaster संभव नहीं क्योंकि 1 हाथ से आहार नहीं ले सकते । यदि Plaster बाँधोंगे तो आहार के समय हाथ नहीं मोड़ पायेंगे इसलिए Plaster नहीं चढ़ेगा । मैंने कहा - आहार लेना है इसलिए Plaster नहीं लगवाया । मात्र प्रभु भक्ति व भगवान का नाम मंत्र की जाप पर ही मेरी श्रद्धा थी । और जहाँ श्रद्धा होती है वहां चमत्कार अवश्य होता है फलतः मेरी हड्डी धीरे-धीरे स्वयं जुड़ गई । डॉ. कभी-कभी अंग्रेजी दवाई की सलाह देते है । कभी-2 संयम विरोधक स्थितियाँ खड़ी हो जाती है । परन्तु डॉक्टर्स को परस्पर मिलकर कुछ ऐसे उपाय खोजने चाहिए कि संयम की विराधना किये बिना इलाज हो जाए । Jain doctors की भी List होना चाहिए । वैद्यों की भी List हो । ताकि Doctor व वैद्य मिलकर संयम साधक इलाज की खोज कर सके ।

कहा जाता हैं - Health is Wealth.

स्वास्थ्य ही धन है । क्योंकि शरीर स्वस्थ है तो हम निर्विघ्न रूप से धर्म साधना कर सकते है ।

आपके संपर्क में जो भी वैद्य हो संपर्क करके एक New ऐसी मंडली तैयार करना चाहिए । जिसमें Doctors, वैद्य मिलकर संयम साधक इलाजों की Discovery करें ।

इसी भावना के साथ - "1008 महावीर भगवान की जय"

"महावीर जयन्ती"

(प्रवचन नं. 32)

★ *"जो महावीर को मानने के साथ-साथ महावीर भगवान के सिद्धांतों को जीवन में उतारे वही महावीर का सच्चा भक्त हैं।"*

"जन्म-जयन्ती" की पावन पुनीत बेला हैं । जब हम इस मधुर शब्द में छिपे अर्थ की ओर दृष्टिपात करते है तो जन्म तो प्राणी मात्र लेता है । परंतु जयन्ती जय + अन्त जिस जन्म का अंत जयवंत हो वह जयन्ती हैं । वर्षगांठ तो सबकी मनायी जाती है । 'Birth-day' भी मनाया जाता हैं । परंतु जयन्ती उन महापुरुषों की ही मनायी जाती हैं जिनका जन्म से लेकर अंत(मरण) तक का समग्र जीवन जय-जयकारों से अनुगूंजित रहा हो । आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव से लेकर अंतिम तीर्थेश भगवान महावीर स्वामी पर्यंत चतुर्विंशति तीर्थंकर देव सभी की जन्म जयन्तियाँ मनायी जाती हैं ।

आज हम वर्तमान शासन नायक भगवान महावीर स्वामी की 2640वीं जन्म जयन्ती मना रहे हैं । चिंतन की गहराईयों में जब उतरते है तो प्रश्न खड़ा होता है । भगवान के जन्म का इतना उत्सव महोत्सव क्यों किया जाता हैं । प्रथम तो मनुष्य पर्याय का मिलना ही अतिदुर्लभता से होता है दूसरी बात कर्मो का क्षय करके निर्वाण सुख की प्राप्ति भी मनुष्य पर्याय से ही संभव है । सभी तीर्थंकर तद्भव मोक्षगामी होते है । इसलिए उनका यह अंतिम जन्म अतिसार्थक होने से जन्म कल्याणक महोत्सव के रूप में मनाया जाता हैं । साथ ही जब तीर्थंकर बालक का जन्म होता हैं । तब संपूर्ण सृष्टि हर्ष से रोमांचित हो जाती है एक पल के लिए नारकी भी शांति का अनुभव करते हैं। ऐसा उत्तरपुराणकार कहते हैं ।

जो तीनों लोक के नाथ बनने वाले हैं । उनका जन्म सबके लिए आनंदकारी होता हैं। क्योंकि पुण्यात्मा का जब जन्म होता है । तो उसकी पुण्य वर्गणाएँ सर्वत्र अपना प्रभाव दिखाती है । उस पुण्यात्मा के स्पर्श से सारी धरती रत्नगर्भा हो जाती है, आनंद, खुशी की हिलोरे उठने लगती हैं ।

हजारों वर्षो के बीतने के बाद भी आज हम भगवान महावीर स्वामी की 'जन्म जयन्ती' हर्षोल्लास से मनाते हैं। इसका प्रथम कारण तो यह है कि हम उनके शासन में ही श्वासे ले रहे हैं । उनका शासन ही आज प्रवर्तमान हैं। दूसरा कारण यह है कि हजारों वर्षो के बीतने के बाद भी उनकी अतिशयकारी पुनीत वर्गणाएँ उनका स्मरण करा मन को आनंदित कर देती है । आज का दिन 2640 वर्ष पूर्व के समय की स्मृतियों को ताजा कर रहा हैं।

हम भगवान महावीर के अनुयायी है यह बड़े गौरव की बात हैं । परंतु उस गौरव को गरिमापूर्ण बनाने हेतु आवश्यक है कि हम महावीर स्वामी को मानने के साथ-साथ उनकी भी मानें । परंतु प्रायः देखा जाता है कि 'हम महावीर को तो मानते है परंतु महावीर की नहीं मानते'

यदि अपने आराध्य के सिद्धान्तों को हम मानने लग जाए, उन सिद्धान्तों पर चलने लग जाए तो हमारा आत्मा अवश्य उस शाश्वत शांति को पा सकेगा जिसकी खोज प्राणी जगत करता है । भगवान महावीर स्वामी का सार्वभौमिक संदेश है ''जिओ और जीने दो''

"Live & let Live"

आप स्वयं जीवन जिये व प्राणी मात्र को जीने दे । जीने का अधिकार सभी को हैं । किसी के प्राणों को घात करना महापाप हैं । जो मूक प्राणी निरीह, निरपराध हैं उन्हें भी जीने का हक है । उन्हें मारो नहीं अभय प्रदान करो । हम अपनी सुविधा के लिए प्राणियों का घात करते हैं -

1. मच्छरों से बचने D.D.T. का छिड़काव करते हैं ।

2. चूहों को मारने, गोलिया डाल देते हैं।

3. चीटे व चींटियों को मारने लक्ष्मण रेखा खींच देते हैं ।

4. फसलों में कीटनाशकों का छिड़काव कर देते हैं । हमने स्वयं के जीवन को सुखमय बनाने हेतु हिंसा का तांडव मचा रखा हैं ।

नेलपॉलिश, लिपिस्टिक, क्रीम, पाउडर, स्नों सेंट के निर्माण में लाखों प्राणियों की हिंसा होती है संज्ञी पंचेंद्रिय तक के जीवों का जीवन स्वाहा हो जाता हैं ।

सोचिए ! क्या ये हिंसा तुम्हे महावीर का अनुयायी स्वीकारेगी ? नहीं ! कभी नहीं ! !

जो तुम महावीर के अनुयायी होते तो जैसे तुम्हे तुम्हारे प्राण प्रिय है वैसे ही अन्य प्राणियों को उनके ।

सोचो ! तुम्हें कोई सुई भी चुभा दें तो कराहते हो दूसरा प्राणी तुम्हारी तलवारों के प्रहार कैसे सह सकेगा ?

कोई तुम्हें थप्पड़ मारे तो तुम्हारे नेत्र लाल-लाल हो जाते हैं ।

दूसरे प्राणी पर कोड़े बरसाओगे तो वह कैसे सह सकेगा ?

तुम्हें कोई गाली दे तो भौहें चढ़ जाती हैं ।

दूसरे के प्राण हरोगे तो वह कैसे सह सकेगा ?

जो व्यवहार तुम्हें अपने लिए पसंद न हो वह व्यवहार दूसरों के साथ करना उचित है क्या ?

भगवान महावीर के अहिंसा के सूत्रों को जीवन में अपनाइएँ ।

भगवान महावीर कहते है-

1. दूसरे का दिल मत दुःखाओ वह भी हिंसा है ।
2. दूसरों की बुराई मत करो वह भी हिंसा है ।
3. किसी से ईर्ष्या मत करो वह भी हिंसा है ।
4. किसी की हानि/अहित मत करो वह भी हिंसा है ।
5. किसी पर क्रोध मत करो वह भी हिंसा है ।
6. किसी के साथ छल मत करो वह भी हिंसा है ।
7. किसी का बुरा मत विचारो वह भी हिंसा है ।
8. किसी की हंसी मत करो वह भी हिंसा है ।
9. किसी को संकट में मत डालो वह भी हिंसा हैं ।
10. परस्पर में झगड़े व विघटन वह भी हिंसा हैं ।

हिंसा से बचना चाहते हो ? पापमय पंक से उवरना चाहते हो ? दुर्गति से बचना चाहते हो ? तो-

1. दूसरों की राहों में फूल बिछाते जाइए यही अहिंसा हैं ।
2. गिरते को हाथ का सहारा दे दो यही अहिंसा है ।
3. आत्म निंदा पर प्रशंसा भी अहिंसा है ।
4. क्षमा भाव धारण कीजिए यह भी अहिंसा हैं ।
5. सरलता, दया, करूणा, प्रेम के अविरल स्त्रोत जहाँ प्रवाहमान हो वही अहिंसा हैं ।
6. जहाँ वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना है वही अहिंसा है ।
7. प्राणी मात्र के प्रति मैत्री भाव अहिंसा है ।
8. तू, तेरे व मैं, मेरे से परे हम व हमारे का सूत्र अहिंसा हैं ।
9. सर्वत्र शांति हो, कुशल क्षेम हो, प्राणी जगत सुखी हो ऐसी पवित्र भावनाएँ ही अहिंसा हैं ।
10. पारस्परिक एकता व संगठन ही अहिंसा हैं ।

और जहाँ अहिंसा का समावेश हो जाता है । वहाँ सत्य, अचौर्य, बह्मचर्य व अपरिग्रह स्वयमेव चले आते हैं ।

भगवान महावीर के पंचशील सिद्धान्तों को यदि तुम अपने जीवन में अपनाना चाहते हो तो तुम्हें अहिंसा का शंखनाद करना होगा ।

अहिंसा का समावेश हमारे जीवन में कैसे हो ?

इसका प्रथम सूत्र हैं-

1. धारणा व भावना का परिवर्तन

2. प्रेम का परित्याग

3. घृणा का परित्याग

अहिंसा आज यदि तेजस्वी नहीं बन रही है तो उस का कारण यही है कि उसके प्रति सच्चे मन से प्रयत्न नहीं हो रहा है । आज हिंसा के पीछे जितनी मानवीय शक्ति व अर्थ शक्ति खर्च हो रही है । उसका 1% भी अहिंसा के लिए खर्च नहीं हो रहा हैं।

अहिंसा का प्रयन्त पूरे मन से किया जाए तो सफलता अवश्य मिलेगी ।

अहिंसा शांति और नैतिकता में विश्वास रखने वाले लोग परस्पर मिले ।

दूसरा पारस्परिक विचारों का विनिमय करें ।

मिलकर विचारों का क्रियान्वयन करें ।

हृदय परिवर्तन, संयम तथा चित्त व चेतना की शुद्धि ।

जहाँ करुणा है वही दया है वहाँ ही अहिंसा भी होती है ।

और अहिंसक ही सत्यान्वेषी होता है । आत्म तत्व की खोज करता है । अहिंसा, अचौर्य की उत्पादक है अहिंसक ही परम ब्रह्म स्वरूप में लीन हो ब्रह्मचर्य धर्म को पाता है । अहिंसक ही अंतरंग व बहिरंग परिग्रह का त्याग कर अपरिग्रही बन सकता हैं ।

यदि हम भगवान महावीर स्वामी के अनुयायी है तो उनके जिओ और जीने दो के शाश्वत सिद्धान्त को अपनाना होगा और इसका प्रारंभ हमें व्यक्तिगत भावना व धारणा में सुधार करके करना होगा । जिसकी स्वयं की भावनाएँ अहिंसक है वही अपने घर, मोहल्ले, समाज, नगर, देश, राष्ट्र व विश्व को अहिंसक बना सकेगा । इस सर्वप्रथम समन्वयवादी भावनाओं को अपनाइए, एकता, प्रेम, संगठन की मजबूत दीवारे अहिंसा के महल को मजबूती देगी ।

तभी भगवान महावीर स्वामी की जन्म-जयन्ती सही मूल्यों में सार्थक होगी ।

इसी भावना के साथ- "1008 भगवान महावीर स्वामी की जय"

“संस्कृति व संस्कारों में समाज की अहम् भूमिका”

(प्रवचन नं. 33)

★ *संस्कृति ही धर्म के प्राण हैं। अतः धर्म रक्षार्थ संस्कृति का संरक्षण व संवर्धन भी अनिवार्य हैं।*

★ ***"Old is Gold"** अतः जिनालयों की प्राचीनता को नष्ट नहीं करना चाहिए।*

जैनागम कहता है- कई हजार मूर्तियों का निमार्ण कर लो व प्राचीन का प्रतिमा का जीर्णोद्धार बराबर है। क्योंकि हजारों वर्ष प्राचीन संस्कृति का रक्षण एक जीर्णोद्धार कार्य से होता हैं। आगम में अनेक उद्धरणों में जीवन में कम से तुम 1 मंदिर बनाओ इस हेतु प्रेरित किया हैं। जो श्रावक जौ बराबर मंदिर बनाकर एक राई बराबर भी प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराता है तो वह तीर्थंकर जैसी पुण्य प्रकृति का बंध करता है। क्योंकि एक मंदिर का निर्माण कराने पर दर्शन करने वाले हजारों सम्यग्दर्शन को प्राप्त करते है कितने ही लोग पूजन, भक्ति करके अक्षय पुण्य का संचय करते है।

पन्नालाल पापड़ीवाल ने लाखों प्रतिमाओं की स्थापना करवायी हैं। एक बार प्रवचनों में उन्होंने सुना कि प्रतिमा व मंदिर निर्माण से अक्षय पुण्य का संचय होता हैं। उनके पास उस समय इतना धन नहीं था। वे रागा बेचने हेतु आगे बढ़ रहे थे उनकी श्रद्धा भक्ति से वह रागा चांदी का हो गया, उन्होंने अपने संकल्प की पूर्ति हेतू प्रतिमा निर्माण का कार्य प्रारंभ कर दिया।

मूढ़बिद्री प्राचीन प्रतिमाओं के संग्रह के कारण प्रसिद्धि को प्राप्त है। सिद्धान्त के रक्षण से अपूर्व पुण्य संचय होता है। खजुराहों में हमारी प्राचीन संस्कृति का रक्षण किया गया हैं। पाहुल श्रेष्ठी ने उस मंदिर का निर्माण करवाया था।

आज भी बहुत मंदिर व प्रतिमाएँ हैं। परंतु पाहुल श्रेष्ठी ने कहा- भले एक ही प्रतिमा हो परंतु जिनालय बहुत आकर्षक बनायेंगे। पाहुल श्रेष्ठी ने विश्व प्रसिद्ध पार्श्वनाथ मंदिर बनवाया जिसमें बाहरी दीवाल पर प्राचीन संस्कृति संबर्धक चित्र बनाये। साथ ही कुछ लौकिक चित्रों का अंकन किया है। जिसके पीछे यह उद्देश्य था कि यदि तुम्हारे अंदर राग है तो मंदिर बाहर से देखो। मंदिर जी के भीतर कोई भी कलावृत्ति नहीं थी मात्र वीतराग प्रभु विराजमान थे। एक वेदी पर 1 ही प्रतिमा थी। उद्देश्य था यदि राग को जीत तुम विरागी हो गये हो तो वीतराग प्रभु के चरणों में आ सकते हो।

वेदी निर्माण में उसने बहुत खर्च किया । अंत में प्रशस्ति में उन्होंने लिखा कि जो इस मंदिर की पूजन सेवा करेगा यह मंदिर उसी का है व इस मंदिर का रक्षण करने वाले का मैं दसानुदास रहूँगा । पाहुल के अंतरंग में जिनालय के रक्षण व संवर्धन का भाव था ।

पाहुल का व्यवहार कहता है कि दुनियाँ झुक सकती है परंतु झुकाने की कला तुम में होना चाहिए । जो स्वयं झुकता है, सरलता प्रेम, वात्सल्य रखता है वह दूसरों को झुका भी सकता हैं । झुको और झोली भरो ।

जिसके पास लघुता है वह सबको अपना बना लेता हैं । प्रेम से सहयोग चार गुना मिलता हैं । आपको सहयोग मिलेगा यदि आपके पास सरलता हैं ।

दरवाजे के बाहर के पत्थर पर उन्होंने ये पंक्तियाँ लिखी थी जो हमें हमारी संस्कृति की सुरक्षा की प्रेरणा देती है । विश्व प्रसिद्धि को प्राप्त खजुराहो का मंदिर उस श्रेष्ठी की श्रद्धा भक्ति का प्रतीक हैं।

'पिसनहारी की मढ़िया' जबलपुर का उदाहरण ज्वलंत उदाहरण हैं ।

पिसनहारी यानि अनाज पीसने वाली । अनाज पीसने वाली वृद्ध अम्मा । बहुत धार्मिक थी। वह पंच कल्याणक महोत्सव देख भावना भाती थी कि मेरे पास पैसा होता तो मैं भी जिनालय बनबाती । पंच कल्याणक कराती । लोग कहते- तू पेट पाल ले यही बहुत है । अम्मा के भाव उत्कृष्ट थे उसका संकल्प था कि जीवन रहते भले ही छोटा मंदिर बनाऊँ अवश्य बनाऊँगी । मंदिर निर्माण हेतु 1 मुठ्ठी अनाज प्रतिदिन एक थैले में डालती थी । लक्ष्य था कि इस अनाज को बेच मंदिर बनबाऊँगी । आप होते तो हतोत्साहित हो जाते परंतु उसके अंदर उत्साह था । बौद्ध साहित्य त्रिपिट्ट में उदा. मिलता है । कि बुद्ध उत्कृष्ट तपस्या में तल्लीन थे ऊनोदर तप के अंतर्गत 1 चावल का दाना लिया । शरीर कमजोर होने से वे गिर पड़े । जिससे विचार बदल गये और तपस्या का मार्ग छोड़ प्यास बुझाने दरिया के पास पहुँचे । परंतु उनकी दृष्टि पत्थर की शिला पर पड़ी । एक गिलहरी पानी में अपनी पूंछ डालकर पत्थर पर झटकारती थी । उसकी यह प्रक्रिया लंबे समय तक चलती रही ।

बुद्ध ने गिलहरी से पूछा- तु यह क्या कर रही हैं । गिलहरी कहती है- मैं समुद्र खाली कर रही हूँ । बुद्ध हंस पड़े बोले- तुझे पता है कि समुद्र में कितना पानी हैं ? हाँ पता है । क्या तुझे पता है तेरी पूछ कितनी है वह कहती - हाँ पता है । क्या तुझे यह पता हैं कि तेरी आयु कितनी हैं । हाँ वह भी पता हैं । यह दरिया सूखे या न सूखे इसने मेरे बच्चे को मारा हैं इसलिए मैं मेरा संकल्प पूर्ण करने अहर्निश प्रयास करुंगी । और इस दरिया को सुखाकर ही रहूंगी ।

जैसे- गिलहरी अपने लक्ष्य में मजबूत थी । उसी प्रकार वह 'पिसनहारी' भी संकल्प में दृढ़ थी । उसने थोड़ा-थोड़ा धन संग्रह किया और एक छोटी सी मढ़िया बना ली । उसकी मढ़िया के सामने

रानी दुर्गावती का महल था जो आज खंडहर बन गया और वह पिसनहारी की मढ़िया बहुत बड़े दिव्य व भव्य तीर्थं क्षेत्र में परिणत हो गई ।

आचार्य विमल सागर जी कहते है- भगवान की पूजन करो, भक्ति ही सारे संकटों से बचाती हैं ।

आचार्य समंतभद्र स्वामी रत्नकरण्डक श्रावकाचार में कहते हैं ।

देवाधिदेव के पावन पुनीत चरण सारे दुःखों का नाश करते है । काम वासनाओं का विनाश प्रभु भक्ति से ही होता है तथा संपूर्ण इच्छाओं की पूर्ति देवाधिदेव की पूजन व सेवा से होती है ।

एक बार जब हम श्रेयांसगिरि में थे । तब वहाँ के विधायक कुसमरिया जी मेरे पास आते थे । वे कहते थे महाराज ! आप अपने भक्तों को कौन सा मंत्र देते हैं । जो उनके पास अपार संपदा होती हैं । मैंने कहा वह मंत्र है- दान । जो जितना धर्मकार्यो में दान देता है उसकी संपदा दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही जाती है । ऐसे-ऐसे महान व्यक्ति हमारे यहाँ हुए है जिन्होंने जीर्णेद्धार करवाकर संस्कृति का संरक्षण किया हैं ।

नवीन जिनालय में खर्चा कम व जीर्णोद्धार में संपदा अधिक खर्च होती हैं । प्राचीन पद्धति से रक्षण में खर्च अधिक आता है । तीर्थो की प्राचीनता की रक्षा करें ।

हमारे क्षेत्र में मूर्ति अधिक है तो दूसरे क्षेत्र में जहाँ मूर्तियाँ कम हो वहाँ भेज दीजिए । क्योंकि हो सकता है नये जिनालयों में उनकी अधिक सुरक्षा पूजन, प्रछालन होगा । पूजा करने वाले पुजारियों की सब जगह मांग रहती है । इसलिए पूजन प्रशिक्षण शिविर' लगाने की भावना मेरे मन मैं जागृत हुई । परिणाम मंदिर में पूजा करने वालों की भीड़ लगी रहती हैं । 1-1 वेदी में पूजन करने वालों का क्रम चलता है ।

हमारे दिगंबर श्रमणाचार्यो ने कहा है-

समय के साथ-साथ, धीरे-धीरे शरीर की कांति क्षीण होती जाती हैं, इंद्रियाँ भी समयानुसार शिथिल होती जाती है । इंद्रियों की शक्ति क्षीण होती जाती है । निरंतर दुःखों का विकास होता है और शरीर विनाश की ओर बढ़ता है । परंतु हे जिननाथ ! कुछ भी हो जाए परंतु आपकी भक्ति में कुछ कमी न हो ।

हम यदि अपने दुःखों का अंत करना चाहते है तो जिनधर्म, जिनालय, जिन प्रतिमा निर्माण करवाइए । जिनभक्ति व गुरुसेवा सुख शांति प्रदान करती है जिनभक्ति पापों की दुःखों की विनाशक होती है । भगवान की शांतिधारा, जिनाभिषेक महापापों की विनाशक हैं ।

सर सेठ हुकुमचंद आदि के महलों की विशेषता यह है कि वहाँ चैत्यालय अवश्य है । उद्देश्य यह था कि प्रत्येक महल में रहने वाले श्री जी का पूजन भक्ति करते रहे ।

जैन सांसद व सभी कॉलोनियों के युवा वर्ग पवन जी आदि ने बहुत प्रयास किया व ससंघ को अपने नगर में ले आये । ग्रजुयेट छात्र-छात्राएँ भी धर्म कार्य में लग समाज के लिए आदर्श बनेंगे ।

शास्त्र, जिनवाणी की सेवा करें । बच्चें भी इन कार्यो में उत्साहित रहते हैं हम उन्हें प्रेरणा व प्रोत्साहन दें। मंदिर की प्राचीनता को भौतिकता की चकाचौंक में न खो दे । प्राचीनता को नष्ट करना आसान है । परंतु प्राचीनता के उसमें पुनः प्राण फूकना अत्यंत दुर्लभ हैं । इसलिए संस्कृति की रक्षा में सदैव तत्पर रहे । कैसी भी परिस्थिति हो प्राचीनता को नष्ट न करें ।

एक बार की बात है - मुझे बनारस में हिंदु संप्रदाय के मंदिर में पुजारी ले गये वहाँ एक गुफा थी । गुफा में जाकर देखा वहाँ सीढ़ी तक नहीं थी । किसी ने कहा-कम से कम सीढ़ी तो लगवा लीजिए । तब वहाँ के मठाधिपति ने कहा-

हमारे पास पैसों की कमी नहीं है । हम सोने की भी सीढ़ियाँ बना सकते हैं । परंतु फिर हमारे मंदिर की प्राचीनता नष्ट हो जायेगी । इसलिए कमेटी ने निर्णय लिया है । कि हम प्राचीनता को नष्ट नहीं होने देंगे । प्राचीनता का अपने, आप में विशिष्ट स्थान है प्राचीन मंदिरों में जो आकर्षण, भव्यता होती है वह भव्यता नवीनीकरण कराने से नष्ट हो जाती है । अतः प्राचीन मंदिरों का जीर्णोद्धार करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि मंदिरों की प्राचीनता नष्ट न हों । संप्रति युग में देखा जाता है- कि बड़े-बड़े प्राचीन मंदिरों को मात्र अपनी प्रशस्ति खुदवाने के लालच में नया बनाया जाता हैं जबकि उनके नवीनीकरण की कुछ भी आवश्यकता ही नहीं हैं । मोटी-मोटी दीवाले तुड़वा दी जाती हैं । परंतु वे स्वार्थी और लालची लोग यह भूल जाते हैं कि हम अपने ही हाथों अपनी प्राचीन आर्ष संस्कृति व दिगम्बरत्व की अर्वाचीनता का हनन कर रहे हैं । ऐसे तथाकथित लोग यह भूल जाते हैं कि जिस प्रकार आज हम दूसरों की प्रशस्ति हटाकर अपनी लगा रहे हैं वैसे ही कल कोई दूसरा शक्ति संपन्न हमारी प्रशस्ति हटाकर अपनी लगा सकता हैं । ऐसा करने से कुछ भी लाभ नहीं अपितु प्राचीन संस्कृतियों का हनन ही हैं । अतः सभी दिगम्बर अनुयायियों को इस विषय में कमर कस लेना चाहिए कि न तो हम स्वयं प्राचीनता को नष्ट करेंगे न अन्य लोगों को करने देंगे । तभी संस्कृति का संरक्षण व संवर्धन हो सकेगा ।

इसी भावना के साथ - "1008 महावीर भगवान की जय"

"शिक्षा और संस्कार"

(प्रवचन नं. 34)

> ★ *संस्कार समन्वित शिक्षा मात्र लौकिक ही नहीं बौद्धिक, आध्यात्मिक क्षमताओं को भी वृद्धिंगत करती हैं।*
>
> ★ *सुसंस्कार उज्जवल भविष्य की अधारशिला हैं।*

जिसमें आचरण, सदाचार, नैतिकता हो वही वास्तविक शिक्षा है । सदाचार नैतिकता से रहित शिक्षा, शिक्षा ही नहीं है ।

आचार्य संमतभद्र महाराज ने न्याय परक दृष्टि से भगवान को नमस्कार करते हुए कहा है- जिनके केवलज्ञान में लोकालोक वर्ती पदार्थ झलकते है जो अंतरंग, बहिरंग लक्ष्मी से सहित है उन वर्द्धमान स्वामी को नमस्कार हो ।

केवलज्ञान अंतिम पायरी है । परंतु उसे पाने प्रथम पायरी पर चढ़ना अनिवार्य है । बच्चे शिक्षा तो पा लेते है परंतु विशेष उपलब्धि नहीं होती । शिक्षा से आप धर्नार्जन कर लेगें परंतु शांति के उस धरातल को शिक्षा नहीं दे सकती जहाँ सुख व आनंदानुभूति होती हैं ।

पहले के समय में पहले सदाचार व नैतिकता की शिक्षा दी जाती थी । आज नैतिकता का पतन हो रहा है शिक्षा प्रणाली गिर गई है । गांधी जी ने देखा- अनपढ़ो के साथ अत्याचार हो रहा है । बेचारा गरीब अंगूठा लगाकर ठगा जाता था । तब गांधी ने देश के पिछड़े होने का कारण अशिक्षा को माना । उन्होंने देखा मजदूर दिन भर मेहनत कर 5000 -7000 कमाता है वही शिक्षित तो महिने में लाखों कमा सकता है । गांधी जी ने 'साक्षरता-अभियान' चलाया । नगर-नगर में स्कूल खुलवाये ।

आज नैतिकता का पतन हो रहा है किसी बच्चे से पूछो- बेटा ! आपके पापा का नाम क्या है ? तो वह कहेगा- रमेश दिनेश, सुरेश इत्यादि । अब हम कैसे पता लगाये कि दिनेश कोई दोस्त है या भाई ।

पहले के समय में आदरणीय शब्दों का प्रयोग किया जाता था । अपने से पूज्य पिता हो, टीचर हो उनके लिए सम्मानीय शब्दो का यथा श्रीमान, पूज्यनीय आदि का प्रयोग किया जाता था । आज बच्चे टीचर्स का भी सम्मान नहीं करते । हम जब स्कूल में पढ़ते थे तो हमारी टीचर जी शब्द का प्रयोग करना सिखाती थी । आज जब हम दूसरे को परिचय देने खड़े होते है तो अपना परिचय पहले प्रारंभ हो जाता है । शब्दों से दिया परिचय- अधूरा या असत्य होता है । व्यक्ति का नहीं व्यक्तित्व का

परिचय हो । व्यक्तित्व को शब्दों का आवरण ओढ़ने की आवश्यकता नहीं होती ।

पारमार्थिक दृष्टि को अपनाकर हम लौकिकता को छोड़ दे तो हमारे अच्छे गुणों, में वृद्धि होगी । नैतिकता के प्रथम सूत्रों में जीवन जीने की कला दी जाती है । बचपन से संस्कार दिये जाए तो वे बिगड़ते नहीं । ऐसे बच्चे देश के लिए उपहार स्वरूप होते है सुसंसकारों से उपलब्धि मिलती है । सन्मति स्कूल शिक्षा ही नहीं संस्कार शाला बन जाए । और यहाँ के बच्चे अपने स्कूल का नाम रोशन करें ।

बच्चों को संस्कारवान बनाने टीचर्स प्रयासरत तो रहते है तमिलनाडु में जब शाकाहार शिविर की बात आयी तो दो परेशानिया थी- 1. भाषा 2. संस्कार मैंने कहा हिन्दी भाषा इन्हें नहीं आती तो कोई बात नहीं । सभी स्कूलों के टीचर्स, प्राचार्य महोदय आये चर्चा से पता चला 2-5% बच्चे ही शाकाहारी है ।

मैंने कहा- पहल तो करिये सफलता अवश्य मिलेगी । प्राचार्य महोदय तैयार हो गये बच्चों के सामने ऐसे विचार रखे जाए । 13 स्कूलों के प्राचार्य तैयार हो गये । जहाँ 1-2% शाकाहारी थे वहाँ के 3000 बच्चों ने इस शिविर में भाग लिया । मुस्लिम टीचर्स ने भाग भी लिया । बच्चे पैर पटके तो पाताल फूट सकता है । अनेक बच्चों ने आजीवन मांसाहार का त्याग किया ।

शिक्षक बच्चों के उज्जवल भविष्य के निर्माता बन सकते है । मात्र रोजगार पर्याप्त नहीं, सदाचारी बनाना भी जरूरी है । बच्चे का जीवन सुखमय बने वे देश का नाम ऊँचा करें । पहले के समय में वृद्धजन आर्शीवाद देते थे बेटा सुखी रहो ।

सुख-

आज का युग Computer, T.V., Mobile, Internet का है । ये सुविधाएँ वरदान भी है अभिशाप भी । यदि Misuse करे तो ये ही अभिशाप है सही दिशा में प्रयोग करें तो वरदान साबित होगें ।

पहले के समय के व्यक्ति अपेक्षाकृत स्वस्थ रहते है । क्योंकि वे भोजन के पहले भजन करते थे । भगवान का नाम लेते थे । सन्मति स्कूल में मैंश में भोजन के पूर्व णमोकार मंत्र के उच्चारण की प्रक्रिया चालू होगी जिससे बच्चे स्वस्थ व होनहार होंगे । ये संस्कार घर-घर में जायेंगे । आज के युग में मांस, अण्डा, शराब का प्रयोग भयंकर बीमारियों को उत्पन्न करता है ।

बच्चे कुसंगति में पड़ दुर्व्यसनों का सेवन करते है । अगर हमने कुछ प्रयास नहीं किया तो बहुत बड़ी समस्या खड़ी होगी । इसलिए इस दिशा में प्रयत्न अनिवार्य है संस्कारों की शुरूआत घर से हो । एक परिवार में मेरा आहार हुआ जहां बच्चों ने कभी रात्रि भोजन किया ही नहीं । राजस्थान के

गवर्नर निर्मल कुमार जैन ऐसे संस्कार वान थे कि गवर्नर होने पर भी आलू-प्याज, लहसुन का प्रयोग नहीं किया । उनके ऑफिस में इन सबका निषेध था ।

श्री विजय लक्ष्मी जी डिप्टी कलेक्टर जो बाल ब्रह्मचारणी थी जिनके अनेक नियम थे । व्यावर के S.P. राहुल जैन जिनका भगवान के दर्शन का नियम था । जब वह मंदिर जाते थे तो लोग उन्हें ही देखते रह जाते थे । ऐसी Higher post पर रहकर भी व्यक्ति ऐसे संस्कारों से सहित होते है यह प्रसन्नता की बात है ।

जयपुर, आगरा, महावीर जी के स्कूल की चर्चा थी । सन्मति स्कूल भी एक बहुत सदाचारी संस्था है । यहाँ बच्चों की Class बहुत व्ययस्थित है । सुन्दर स्कूल व संस्कार वान टीचर हो तो घर की याद ही नहीं आयेगी ।

द्रोणाचार्य के पास उनके गुरुकुल में पांचों पांडव अध्ययन रत थे । गुरु जी ने एक दिन सत्यं वद् युक्तं चर का पाठ पढ़ाया । पाठ याद करना था । सबने याद कर लिया । युधिष्ठर सिर नीचा किये बैठे थे । पूछा गया - क्या बात है पाठ याद किया युधिष्ठर बोले- नहीं गुरु जी मुझे पाठ याद नहीं ।

गुरूजी बोले - क्या तुझे माता-पिता की याद आ रही है ।

वह बोला नहीं गुरु जी ! आपके रहते मुझे किसी की याद नहीं आती ।

फिर तू अस्वस्थ है क्या नहीं गुरुजी । बात यह है कि शब्दों का पाठ तो मुझे तुरन्त याद हो गया था । परन्तु वह आचरण में नहीं था । आज से नियम लेता हूं कि सत्य ही बोलूंगा व युक्त आचरण करूंगा ।

आज के टीचर्स को चाहिए कि बच्चों को सत्य बोलना व युक्त आचरण करना सिखलाए ।

बच्चों को सिखाए कि वे जैन शब्द का प्रयोग अवश्य करें । 'जैन' हमारा धर्म, आदर्श, गौरव हैं ।

हमें प्रसन्नता हैं कि हमारे रमेश कासलीवाल ने जैन पत्रकार वार्ता रखी । बातों को सुन मन गद्‌गद् था । ये चर्चाऐं खुले मंच से हो तो समाज को उन्नतिशील बनाने के उपाए निकलेंगे ।

शिक्षा, स्वास्थ्य व संस्कारों का शंखनाद करना चाहिए ।

बड़े-बड़े उद्योगपति जिनके पास अर्थ शक्ति है । वे जैनों को अपनी कंपनी में काम दें । ताकि समाज की गरीबी का उन्मूलन हो । डॉक्टर्स फीस कम न करें परन्तु उतना पैसे अनुदान के रूप में दे।

हम लोगों ने प्रशिक्षण शिविर लगाया, फ्री में पुस्तके बांटी । परिणाम वे रद्दी में पहुंच गई व शिविरार्थियों की संख्या कम थी । जब शिविर में शुल्क लिया गया तो 400 शिविरार्थी थे । व पुस्तक को संभाल कर रखा गया ।

जैन लोग जो आर्थिक दृष्टि से कमजोर है । हम जो सामान खरीदें जैनों से खरीदे । जीर्णोद्धार - के विषय में कहना है -

प्राचीन मंदिरों को वास्तु के नाम पर तोड़े-फोड़े नहीं ।

वास्तु में दोष टालने के उपाय थी बताये जाते है भगवान की दृष्टि अवरुद्ध होती तो तो सामने दर्पण लगा दें । दोष टल जायेगा । जयसेन जी- सन्मति वाणी के संपादक है । शास्त्र व Class पढ़ाते है । ऐसे आदर्श व्यक्ति समाज की उन्नति में साधक होंगे । पत्रकार है परन्तु नियम से बंधे रहते है । अनुशासन कठोर होता है परिणाम मीठा होता है । अनुशासक को अनेक समस्यायों का सामना करना पड़ता है । वह कठोर हो तो धर्म ध्वज को फहरा सकता हैं ।

'वीर निकलंक' के संपादक - रमेशचंद कासलीवाल कलाकार है । निकलंक की तरह वीर है । वे अनेक निकलंक पैदा करें । संपूर्ण समिति को मेरा आशीर्वाद हैं । यह सन्मति स्कूल संतों का आश्रम जैसा लग रहा है ।

जिस उत्साह के साथ आपने इस स्कूल की नींव डाली हैं उसी उत्साह, लगन व धर्मनिष्ठा के साथ यदि आप आगे बढ़ेगे तो आपका स्कूल आदर्शता के सर्वोच्चतम स्थान पर होगा । और यहाँ से पढ़कर निकलने वाले छात्र-छात्राएँ देश के उज्जवल भविष्य के निर्माता होंगे ।

इसी भावना के साथ- "1008 महावीर भगवान की जय"

हम और हमारे कर्त्तव्य

(प्रवचन नं. 35)

★ *कर्त्तव्य ही सफलता के उत्तुंग शिखर तक पहुँचाते हैं।*

★ *कर्त्तव्य ही सबका प्रेमपात्र बनाते हैं।*

'कर्त्तव्य' करने योग्य कार्य को कर्त्तव्य कहते हैं । कर्त्तव्य हमारे जीवन का अभिन्न अंग है । मानव जीवन की कीमत कर्त्तव्यों से ही होती हैं । कर्त्तव्य मानव जीवन का श्रृंगार हैं । जिस प्रकार वृक्षों की शोभा चंदन के वृक्ष से होती हैं । क्योंकि उसकी सुगंधि संपूर्ण वातावरण में फैल प्राणी मात्र को आनंदित कर देती है । उसी प्रकार जिस प्राणी के जीवन में 'कर्त्तव्य-निष्ठा' है । वह अपने कर्त्तव्यों की सुगंधि संपूर्ण वातावरण में फैलाकर सबका प्रिय बन जाता हैं ।

'कर्त्तव्य-निष्ठ' सदैव प्रशंसा व सम्मान पाता है । दुनियां उसे सम्मान की दृष्टि से देखती है । कर्त्तव्य के पथ पर चलने वाला एक दिन अवश्य बहुत बड़ी उपलब्धि पाता हैं । चाहे प्राण भी जा रहे हो उस परिस्थिति में भी अपने सम्यक् कर्त्तव्यों से हमें कभी विचलित नहीं होना चाहिए । आचार्यों ने कहा भी है -

कर्त्तव्य मेव कर्त्तव्यं, प्राणे कण्ठे गतेऽरपि ।

अकर्त्तव्य नैव कर्त्तव्यं, प्राणे कण्ठे गतेऽरपि ॥

प्राण कण्ठ गत होने तक भी प्राणी को कर्त्तव्य करते ही रहना चाहिए तथा चाहे प्राण ही क्यों न चले जाए तो भी अकर्त्तव्यों को नहीं करना चाहिए । अकर्त्तव्य - यानि न करने योग्य कार्यों को नहीं करना चाहिए ।

कर्त्तव्यों की व्याख्या बहुत विशद हैं । इसे हम दो प्रकार से समझ सकते है -

1. लौकिक कर्त्तव्य, 2. पारमार्थिक कर्त्तव्य

1. लौकिक कर्त्तव्य - बाह्य गृहस्थिक जीवन जीते हुए लोक व्यवहार में कुछ कर्त्तव्य करना अनिवार्य होते है इन्हें हम निम्न बिन्दुओं से समझेंगे -

1. बच्चे के कर्त्तव्य माता-पिता के प्रति

2. माता-पिता के कर्त्तव्य बच्चों के प्रति

3. पिता का कर्त्तव्य पुत्र के प्रति

4. माता का कर्त्तव्य पुत्री के प्रति

5. पति का कर्त्तव्य पत्नि के प्रति

6. पत्नी का कर्त्तव्य पति के प्रति

7. सास का कर्त्तव्य बहु के प्रति

8. बहु का कर्त्तव्य सास के प्रति

9. शिष्य का कर्त्तव्य गुरु के प्रति

10. गुरु का कर्त्तव्य शिष्य के प्रति

11. एक मित्र का सम्यक् कर्त्तव्य दूसरे मित्र के प्रति

ये लौकिक व्यवहार में होने वाले कर्त्तव्य है ।

2. पारमार्थिक कर्त्तव्य - पारमार्थिक कर्त्तव्य आत्म हित से संबंध रखते हैं । आत्मा को पापों से बचाकर पुण्य मार्ग में लगाने हेतु, कर्मों के क्षय करने हेतु जीवन में पारमार्थिक कर्त्तव्यों का होना भी अनिवार्य है ।

धर्म की गाड़ी श्रावक व साधु रूपी दो पटरियों के मध्य चलती हैं ।

श्रावक के पारमार्थिक कर्त्तव्य 6 होते है -

देव पूजा गुरुपास्थि स्वाध्याय संयमस्तपः ।
दानं चेति गृहस्थाणां षट्कर्माणि दिने दिने ॥

आचार्य सोमदेव सूरि ने श्रावकों के 6 आवश्यक कर्त्तव्य कहे है -

1. देव पूजा, 2. गुरु उपासना, 3. स्वाध्याय, 4. संयम, 5. तप, 6. दान ।

साधु के पारमार्थिक कर्त्तव्य आगम में 6 कहे है - पंडित दौलतराम जी ने छहढ़ाला ग्रंथ में मुनियों के षट्‌वश्यक कर्त्तव्य बतलाते हुए कहा है -

समता सम्हारे थुति उचारै, वंदना जिनदेव को ।
नित करे श्रुति रति करे प्रतिक्रम तजे तन अहमेव को ॥

1. समता, 2. वंदना, 3. स्तुति, 4. प्रतिक्रमण, 5. प्रत्याख्यान, 6. व्युत्सर्ग ।

किन्हीं-2 आचार्यों ने स्वाध्याय को भी षट् आवश्यक में गिनाया हैं ।

सबसे पहले हम क्रमशः लौकिक कर्त्तव्यों को समझेंगे ।

1. माता-पिता के प्रति बच्चों के कर्त्तव्य - 'माँ' को जीवन की प्रथम पाठशाला कहा

जाता है । प्रारंभिक दशा में बच्चे को संस्कार देने वाली 'माँ' ही होती है । माता-पिता बड़े लाड़-दुलार से अपने बच्चों का पालन-पोषण करते हैं । पढ़ा-लिखा कर अपने पैरों पर खड़े होने योग्य बना देते हैं । माता-पिता का जीवन में बड़ा उपकार होता है । ऐसे माता-पिता के प्रति बच्चों को अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करना परमावश्यक हैं । माता-पिता की आज्ञा में रहना बच्चों का प्रथम कर्त्तव्य हैं । हमारी 'माँ' जो कह रही है उसी में हमारा हित निहित है जो बच्चे ऐसे विचार रखते है वे सदैव ऊँचे उठते हैं । माता-पिता का आदर, विनय, सम्मान,, सेवा करना ये सब बच्चों के कर्त्तव्य हैं । जो बच्चे अच्छे होते हैं वे सदैव माता-पिता की सेवा में तत्पर रहते हैं ।

उदाहरण के लिये - यदि आपके पापा आफिस से थके हारे आये हैं । तो उन पर अपनी डिमान्ड्स की लिस्ट उड़ेलने से पहले उन्हें शांति से बैठने दो, उन्हें 1 गिलास ठंडा पानी लाकर दो । उनके स्वास्थ्य के विषय में पूछो बाद में अपनी फरमाइश पेश करो । बेचारे पापा तो आफिस से थके हारे चले आ रहे है और आप टूट पड़े उन पर । तो सोचिए ! वे कितने परेशान हो जायगे । इसलिए अच्छा होगा कि आप उनके पैर दवा दें, पानी दे दें । आदि-आदि प्रकार से सेवाकर दें तो वे भी खुश हो जायेंगे ।

2. बच्चियों को चाहिए कि यदि मम्मी कुछ काम कर रही है तो उनका हाथ बटा दे । मम्मी आप रहने दीजिए यह काम मैं करें देती हूँ । यदि आपकी मम्मी काम करते-करते थक गई है तो उनके पैर दबा दो अथवा खाना परोस कर खिला दो ।

यदि बच्चे कर्त्तव्यनिष्ठ हैं । तो माता-पिता को अपने बच्चों पर नाज होता है और उनका मुख अपने-बच्चों की प्रशंसा करते-करते भी नहीं थकता । यदि कभी मम्मी-पापा गुस्सा भी कर दे या एकाद थप्पड़ भी लगा दें तो रोष नहीं दिखाना चाहिए । क्योंकि वह डॉट या थप्पड़ अवश्य हमें किसी न किसी बुराई से ही बचायेगा और हमारी प्रगति में हेतु बनेगा । कभी-भी माता-पिता को जबाव या अपशब्द नहीं बोलना चाहिए और यदि आपसे कोई गलती हो ही गई है तो हाथ जोड़कर क्षमा याचना कर लेनी चाहिए । जो बच्चे अपने कर्त्तव्यों के पालन में लगे रहते है वे आगे चलकर समाज व देश के आदर्श नागरिक बनते हैं ।

2. माता-पिता के कर्त्तव्य बच्चों के प्रति - जन्म लेने वाली आपकी संतान का मात्र जन्म लेना ही पर्याप्त नहीं अपितु संस्कारों के सांचे में ढ़लना परमावश्यक हैं । इस हेतु बचपन से ही माता-पिता अपने बच्चों को सुसंस्कार दें । बच्चों को सुसंस्कारवान बनाना । बुरी आदतों से बचाकर, अच्छे कार्यो में लगाना । यह माता-पिता का अपने बच्चों के प्रति प्रथम कर्त्तव्य हैं । वह माँ सच्ची व अच्छी मानी जाती है जो अंगुली थामकर बच्चों को मंदिर तक ले जाती है गुरुओं के दर्शन कराती है ।

क्योंकि गुरुओं के द्वारा प्रदत्त संस्कार ही बच्चे के सर्वांगणीय विकास में हेतु बनते हैं ।

माता-पिता, बच्चों पर अपने अरमानों का बोझा न लादें । हर बच्चे की अपनी-अपनी योग्यता व क्षमता होती है । और अपनी-अपनी योग्यतानुसार किये गये कार्य में वह अधिक सफलता पा सकता हैं । उदा. के लिए आपकी भावना अपने बच्चें को डाक्टर बनाने की है । परन्तु उसकी रूचि पेंटिंग में हैं । तो आप जबरदस्ती उस पर अपनी भावनाओं का बोझा मत लादिये । हो सकता है कि वह अपनी रूचि के अनुसार कार्य करें तो विश्व का प्रख्यात पेंटर बन जाए । बच्चों को अच्छे संस्कार देने हेतु माता-पिता पहले स्वयं बलिदान दें । आप स्वयं तो टी.वी. देखते है और अपने बच्चे से कहो कि तू टी.वी. मत देख, पढ़ाई कर । तो वह कैसे पढ़ेगा । क्योंकि आप टी.वी. देखेंगे तो उसका मन भी ललचा जाएगा । बच्चे को अच्छी से अच्छी शिक्षा के साथ-2 नैतिकता, सदाचार, धार्मिक संस्कार भी दें । यदि आपने बच्चों के प्रति अपने सम्यक् कर्त्तव्यों का पालन किया है तो बच्चे भी भविष्य में कर्त्तव्यनिष्ठ ही बनेगें । जो माँ बच्चे को हाथ पकड़कर मंदिर जाना सिखाती है वह बच्चा वृद्धावस्था में अपने माता-पिता के हाथ की लाठी बन उन्हें तीर्थयात्रा कराता है । अंत समय में णमोकार सुनाता है । इसलिए माता-पिता को अपने बच्चों के प्रति कर्त्तव्य के निर्वाह करने में तत्पर/सजग रहना चाहिए ।

3. पिता का कर्त्तव्य पुत्र के प्रति - "Like father - like son" प्रायः देखा जाता है जैसे पिता वैसे उनके बेटे होते है ।

चूंकि भविष्य में आगे चलकर पिता की गद्दी बेटे को ही संभालनी होती है अतः पिता का कर्त्तव्य हैं कि बेटे को घर गृहस्थी चलाने, परिवार के उत्तरदायित्व निर्वाह करने की कला भी सिखाये अपने घर-कुटुम्ब की परंपरा से परिचय कराये । क्योंकि जिसे आप अपना कार्यभार सौंपने वाले है उसे उस कार्य में दक्ष व निष्णात बनाना अनिवार्य है । अधिकांशतः देखा जाता है कि पिता डॉक्टर है तो वे बेटे को भी डॉक्टर बना देते है उसी प्रकार आप मुखिया है इसलिए पिता अपने पुत्रों के प्रति विशेष सजगता रखें ।

4. माता का कर्त्तव्य पुत्री के प्रति - माता घर की गृहणी, संचालिका होती है । माता का कर्त्तव्य है की अपनी पुत्री को घर गृहस्थी के कार्यों के साथ-साथ व्यवहारिकता भी सिखायें, कल को बेटी को पराये घर जाना हैं बेटी के हाथों में दोनों कुलों की लाज होती है इसलिए विवाहोपरांत घर से बिदा लेते समय माँ यही शिक्षा देती है कि बेटी तू अपनी सासू को ही अपनी माँ व ससुर को ही अपना पिता मानकर उनकी आज्ञा का पालन करना व खूब सेवा करना । कर्त्तव्य-निष्ठा का यह पाठ बेटियों को माता ही सिखा सकती है । कितनी भी विषम परिस्थिति हो परन्तु सास-ससुर व ज्येष्ठ जनों को

जबाव नहीं देना, अपने पति की सेवा करना यही तुम्हारा वास्तविक धर्म हैं । कितने भी संकट आये परन्तु जिनेन्द्र भक्ति व धर्म को नहीं छोड़ना । ये संस्कार एक सुसंस्कारवान माता ही अपनी पुत्री को दे सकती है इसलिए माताओं का बेटियों के प्रति विशेष कर्त्तव्य होता है ।

5. पति का कर्त्तव्य पत्नी के प्रति - पति व पत्नी का संबंध लौकिक धर्म के निर्वाह हेतु स्थापित किया जाता है । आर्ष परंपरा का निर्वहन व लोकाचार का पालन हो इसलिए विवाह की पद्धतियाँ प्राचीन काल से आज तक प्रचलन में हैं । विवाह वह धार्मिक बंधन हैं जो पति व पत्नी को धार्मिकता के सूत्र में बांधे रखता है व अपने-अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक बने रहने की प्रेरणा देता हैं । 'पति', पत्नी के जीवन का सर्वस्व होता है प्राचीन साहित्य में पति को परमेश्वर का दर्जा दिया गया हैं ।

परन्तु 'पति' वास्तविकता में पति तभी होता है । जबकि वह पत्नी के प्रति अपने कर्त्तव्यों का यथोचित रीति से पालन करता है ।

1. पत्नी के सुख-दुःख में साथ निभाना
2. उसकी जरूरतों को पूरा करना
3. सही दिशा निर्देशन देना
4. उस पर विश्वास बनाकर रखना
5. उचित समय पर, उचित कार्यों में सलाह लेना ।

कभी-कभी कुछ मूड़ी किस्म के लोग पत्नी को नौकरानी बनाकर रखना चाहते हैं वह उचित नहीं है पत्नी आपकी गृहस्थी में संचालिका की भूमिका पूरी निष्ठा के साथ निभाती है परन्तु उसके साथ निम्नवृत्ति का व्यवहार उचित नहीं । कुछ शंकालु वृत्ति के लोग बात-बात में शक करते है कि मेरी पत्नी ने उस पुरुष से बात की थी कही उसका चालचलन खराब तो नहीं । आपकी शंकालु वृत्ति आपके वैवाहिक संबंधों को बिगाड़ेगी स्वर्ग सा जीवन भी नरक सा बन जायेगा । इसलिए विश्वास की मजबूत नींव पति-पत्नी के जीवन रूपी इमारत में होना चाहिए । पति यदि अपनी पत्नी के प्रति यथोचित कर्त्तव्यों का निर्वाह करता हैं । तो दाम्पत्य जीवन सुखी रहता है ।

6. पत्नी का कर्त्तव्य पति के प्रति - कर्त्तव्यों के सेतु पर चलने वाला कभी भव सागर में गोते नहीं खाता । पत्नी के भी पति के प्रति विशेष उत्तरदायित्व व कर्त्तव्य होते हैं ।

1. पत्नी का प्रथम कर्त्तव्य हैं कि सदैव पति सेवा में तत्पर रहें ।
2. कभी भी अनुचित शब्दों का प्रयोग न करें ।

3. यदि पतिदेव बाहर से थके हारे आये हैं तो सेवा सुश्रुषा करनी चाहिए । अपनी सामग्री की लिस्ट या घरेलु समस्याओं का बोझा उन पर नहीं डालना चाहिए ।

4. पति भोजन को बैठे और आप ने बड़बड़ाना शुरु कर दिया तो आपका परोसा भोजन विष का काम करेगा ।

5. पति के प्रति सदैव अपना विश्वास बनाकर रखे इसके लिए उनकी उपस्थिति या अनुपस्थिति में किये गये संपूर्ण कार्यों की जानकारी दें । जानकारी देने से विश्वास में वृद्धि होती है ।

6. कभी भी पति के समक्ष अभिमान या बड़प्पन नहीं दिखाना चाहिए ।

7. उचित समय पर मंत्री बन उचित सलाह देना चाहिए ।

8. कभी कोई विपत्ति आ जाए तो साहस दिलाना चाहिए । आप घबराइए नहीं मैं हूँ न ।

9. पति के सभी कार्यों में सहयोगी बनना चाहिए ।

जो पत्नी 'कर्त्तव्यनिष्ठ' है । वह सदैव अपने पति की प्रेमपात्र होती हैं । प्रेम के लिए याचनाएँ नहीं की जाती कर्त्तव्य निष्ठ तो अपनी कर्त्तव्य-निष्ठा व व्यवहार कुशलता से संपूर्ण जगत की प्रीति का पात्र स्वयं ही बन जाता है ।

7. सास का कर्त्तव्य बहु के प्रति - सास भी एक माँ ही होती हैं । वह बेटे की माँ हैं । तो बहु भी तो किसी न किसी की बेटी हैं । जो सास बहु को भी अपनी बेटी की तरह मानती हैं वह अपने कर्त्तव्यों का दक्षता के साथ पालन कर पाती है ।

सास का कर्त्तव्य है -

1. यदि बहु अधिक कुशल न हो तो सास का कर्त्तव्य है कि उसे डाँटे नहीं अपितु धीरे-धीरे एक-एक काम सिखाते जाए । आपका प्रेमपूर्ण व्यवहार व मधुर संभाषण उसे भी कुशल बना देगा ।

2. बहु को परिवार के प्रति हमारे कर्त्तव्य क्या हैं । बताना चाहिए । घर की परंपराओं से अवगत कराना चाहिए । क्योंकि बाहर से आने वाली बहु आपके घर की परंपराओं से अनिभिज्ञ होती है ।

3. यदि बहु कोई अच्छा कार्य करती है तो उसके सिर पर हाथ अवश्य फेर दीजिए, प्रोत्साहन दीजिए कि हाँ तूने बहुत अच्छा काम किया ।

4. चार लोगों के सामने कभी अपनी बहु की कमजोरियों या बुराईयों का बखान न करें । क्योंकि बुराईयों से सुधार नहीं वैमनस्यता उत्पन्न होती है ।

5. यदि सास ने माँ की भूमिका निभाई हैं । तो बहु भी उसे बेटी नजर आयेगी । और आपका घर स्वर्ग बन जायेगा ।

8. बहु के कर्त्तव्य सास के प्रति - बहु भी किसी न किसी की बेटी होती हैं । उसकी भी अपनी माँ होती है । परंतु बहु का कर्त्तव्य है -

1. सास को शत्रु नहीं अपितु अपनी माँ ही समझना चाहिए ।

2. जिस प्रकार आप अपनी माँ के सुख-दुःख में सहयोगी बनती थी वैसे ही सासू के कार्यों में बनना चाहिए ।

3. यदि सासू बीमार हो तो अपनी माँ समझकर सेवा करनी चाहिए । सासू के सम्मान व विनय का ध्यान रखना चाहिए ।

4. क्योंकि प्रेम से प्रेम व नफरत से नफरत ही मिलेगी ।

5. बहु यदि बेटी बन गयी है तो जीवन जीने का आनंद ही अलग होगा ।

9. शिष्य के कर्त्तव्य गुरु के प्रति - 'गुरु' शिष्य के जीवन की सबसे अमूल्य धरोहर होते हैं । यदि गुरु नहीं तो कुछ भी नहीं । शिष्यों के भी कुछ विशिष्ट कर्त्तव्य अपने गुरु के प्रति होते हैं -

1. सदैव गुरु की आज्ञा व अनुशासन का पालन करना चाहिए ।

2. अंतेवासिन बन गुरु की नजरों में रहने वाला शिष्य कर्त्तव्य परायण होता हैं ।

3. गुरु के पहुँचने के पहले शिष्यों को शास्त्र सभा में पहुंच जाना चाहिए ।

4. सदैव गुरु सेवा में तत्पर रहना चाहिए ।

5. गुरु जी को जो काम पसंद न हो वह नहीं करना चाहिए ।

6. गुरु के ईशारों में चलने की कुशलता होना चाहिए ।

7. सदैव गुरु के पार्श्व भाग में या पीछे चले ।

8. गुरु के समक्ष ऊँचे स्वर में नहीं बोलना चाहिए ।

9. बहस नहीं करना चाहिए ।

10. यदि गुरुदेव किसी बात पर डॉट भी दें तो सहनशीलता का परिचय दें । उस समय गलती स्वीकार लें सफाई देने की कोशिश न करें । अवसर मिलने पर सत्य का अवलोकन करा देना चाहिए ।

11. गुरु के स्वास्थ्य, आहार, विहार, निहार की व्यवस्थाओं का ध्यान रखना चाहिए ।

12. गुरु के कार्यों में सदा सहयोग करना चाहिए ।

13. उनके दिल को ठेस पहुँचे ऐसा कोई काम न करें ।

14. गुरु जी यदि किसी अध्ययन, लेखन आदि कार्यों में व्यस्त हो तो शोरगुल न करें ।

15. गुरु के मन को अपने वचनों व व्यवहार से सदा प्रसन्न/fresh रखें । क्योंकि उनकी प्रसन्नता में ही सबकी प्रसन्नता समाहित होती है ।

16. सदा सेवक बनकर गुरु चरणों में रहना चाहिए ।

17. गुरु के समक्ष लघुता ही रखें अभिमान, बड़प्पन न दिखायें । ये ही शिष्य के प्रधान कर्त्तव्य होते है ।

10. गुरु के कर्त्तव्य शिष्य के प्रति - गुरु का पद बहुत उच्च व उत्तरदायित्व पूर्ण पद हैं । एक श्रेष्ठ गुरु का कर्त्तव्य है कि -

1. जिस शिष्य को मुक्ति तक पहुंचाने का वायदा किया है उसे सम्यक् पथ दिखाये ।

2. क्रियाओं में, कर्त्तव्यों में कुछ कमी दिखे तो तुरन्त सावधान करें । व कर्त्तव्यों का बोध कराये ।

3. शिष्य को अंतेवासिन की तरह, बाहर की लोकेषणा रूपी लू से बचा कर रखें ।

4. शिष्य के स्वास्थ्य व जरूरतों का ध्यान रखें ।

5. शिष्य को समय-समय पर आगमिक, नैतिक, सदाचार की शिक्षा देते रहें ।

6. शिष्य के प्रति बालकवत् वात्सल्य रखें । गलती होने पर दंडित करें तो 'कर्त्तव्य-निष्ठ' होने पर प्रोत्साहित भी करें ।

7. सदैव सद्कार्यों की प्रेरणा देते रहे ।

8. शिष्य की खोटो को डाँट रूपी चोटों से दूर कर मिट्टी से मूर्ति, पत्थर से परमात्मा बना दें ।

9. शिष्य की प्रकृति को देख सुधार के तरीके बदलते रहे । क्योंकि कोई शिष्य एक बार बोलने से संभल जाता है, कोई ईशारे में ही संभल जाता है और कोई डॉटे बिना नहीं संभलता तो डाँटे भी ।

10. निजी स्वार्थों के लिए शिष्य का भविष्य बर्बाद न करें ।

11. यदि डॉट दूंगा तो शिष्य मेरी सेवा नहीं करेगा ऐसा स्वार्थ गुरु नहीं रखते । वे निःस्वार्थ भाव से शिष्य को मुक्ति के पथ का पथिक बना देते हैं ।

जीवन जीने के लिए अनेकानेक रिश्तों का व अनेक भूमिकाओं का निर्वाह प्रत्येक व्यक्ति को करना पड़ता हैं । यदि आप कर्त्तव्य-निष्ठ बनकर कुशलता पूर्वक रिश्तों का निर्वहन करना जानते हैं तो एक अच्छा जीवन जी सकते हैं । सभी के प्रेम पात्र बन सकते है तथा अपने जीवन के साथ-साथ दूसरों के जीवन में भी खुशियों की सुगंध बिखेरकर जीवन को स्वर्ग सा सुंदर बना सकते हैं ।

इसी भावना के साथ- "1008 महावीर भगवान की जय"

"संस्कृति रक्षक संस्कार"

(प्रवचन नं. 36)

★ *दिखावा दुःख की दरिया में पतित कर देता हैं।*

★ *बिना अकल की नकल गड्ढ़े में गिराती हैं।*

★ *कार्य संपादन के पूर्व विवेक और विचार अनिवार्य हैं।*

संस्कृति :- वह परिवेश जिसमें हम पलते व बढ़ते है । अथवा मानव जीवन को व्यवस्थित रूप से जीने की कला का नाम संस्कृति हैं ।

प्रायः हर देश की अपनी-अपनी संस्कृति हुआ करती है । अपने से बड़ों को आदर सम्मान देना, यह भारतीय संस्कृति हैं। मर्यादाओं का ध्यान रखना, सम्मान सूचक शब्दों का प्रयोग करना, पवित्र वेश को धारण करना, लघुता विनय, समर्पण, भक्ति ये समग्र विशेषताएँ, मात्र भारतीय संस्कृति में देखने को मिलती हैं ।

यदि हम पाश्चात्य संस्कृति पर दृष्टि डालें तो-न तो वहाँ कोई मर्यादाएँ है न विनय, न ही बड़ों का आदर-सम्मान, न समर्पण है, न भक्ति । मात्र दिखावा व प्रदर्शन ही पाश्चात्यतता में समाविष्ट हैं । अपने को अच्छा दिखाने के लिए यदि दूसरे के प्राण भी लेना पड़े तो भी व्यक्ति हिचकिचाता नहीं हैं।

भारतीय संस्कृति में अहिंसा, दया, करूणा, प्रेम, वात्सल्य जैसे मानवीय गुणों को अधिक स्थान दिया गया है । कोई बेसहारा है, दीन-दुःखी है, कष्ट व संकट में हैं। तो आप उस बेसहारा प्राणी की वैसाखी बन जाइए, दूसरें के दुःखों को अपना मान उसके दुःख दूर कर दीजिए । कष्टों व संकटों में घिरे प्राणी को सही दिशा दे दीजिए यह हमारी भारतीय संस्कृति हैं ।

परंतु भौतिकता की चकाचौंध में आज का मानव अपने मानवीय मूल्यों को भूल गया है इसलिए नैतिकता का पतन होता जा रहा है । भ्रष्टाचार, घूसखोरी, बालात्कार, दूसरे का अपहरण आदि अमानवीय अपराध दिन व दिन बढ़ते ही जा रहे हैं। कारण है आज के प्राणी के ऊपर पश्चात्यता की काली छाया पड़ गयी हैं । अमर्यादित वस्त्रों का पहनावा शील के लिए बहुत बड़ा खतरा हैं । दूषित व कुण्ठाग्रस्त विचारों से ग्रसित प्राणी अपने हित के बारे में नहीं सोच पाता हैं।

पड़ौसी ने जाली वाले वस्त्र पहने हैं उसने जीन्स पहन रखा हैं इसलिए मैं भी पहनूंगा, ऐसी होड़ में प्राणी अपनी मानवता को फांसी के तखतें पर चढ़ा रहा हैं ।

आज भारत की संस्कृति अंधानुकरण के कारण धूमिल सी होती जा रही हैं । इसलिए उसकी रक्षा की बात सामने आयी हैं ।

सर्वप्रथम संस्कृति को दूषित करने वाले कारणों, पर दृष्टि डालना पड़ेगी । यदि कारण पता है तो उपचार इलाज बहुत से हो सकते हैं । जो रोगमुक्ति के लिए अनिवार्य होते हैं । परंतु रोग की जानकारी अनिवार्य है-

संस्कृति को दूषित करने वाले घटक :-

1. दूसरे की नकल उतारने की आदत
2. दिखावा/प्रदर्शन
3. कुसंगति
4. सन्मार्ग दर्शक का अभाव
5. तत्व की गहराई तक नहीं पहुँच पाना
6. ईर्ष्या आदि दूषित भावों की कुण्ठा
7. जीवन की वास्तविकता को न समझ पाना

1. दूसरे की नकल उतारने की आदत- प्रायः हमें दूसरों की नकल उतारने की आदत होती हैं । परंतु हमेशा ध्यान रखियें कि नकल के लिए भी अकल की आवश्यकता होती हैं । नकल तो उतारे परंतु किसकी उतारें किसकी नहीं यह नीर-क्षीर का विवेक होना चाहिए । यदि विवेक नहीं तो यह नकल आपको नरक के द्वार पर भी ले जा सकती हैं । पाश्चात्यता से प्रभावित व्यक्ति गंदे-गंदे कपड़े पहनता हैं, गंदे-गंदे नाच गाने गाता है । डिस्को, किटी पार्टी में जाता हैं । बतौर शौक शराब पीता है और अपने आप को High Society, High Status का बताता हैं । परंतु ध्यान रखो Status तुम्हारा बड़ा नहीं घट गया हैं। तुम्हारी उन्नति नहीं हुई अवनति हो रही हैं । अपनी ही पतलूम फाड़कर खुश हो रहे हो, तुम्हें मूर्ख भी कहे, तो कम नहीं । नकल तो खूब की परंतु यह नहीं सोचा कि यह नकल नरक ले जायेगी । अंधी दौड़ में दौड़ता प्राणी आगे आने वाली खाई को नहीं देख पाता । और निज संस्कृति को अपने ही हाथों सर्वस्व नाश कर देता हैं।

2. दिखावा/प्रदर्शन- आज का मनुष्य है तो गधा परंतु शेर की खाल ओढ़ अपने गधेपन को छिपाना चाहता हैं। प्रदर्शन का चस्का ऐसा चढ़ा हैं कि माँ खादीं की चादर दे दो, मैं गांधी बन जाऊँगा । सब मित्रों के बीच बैठकर रघुपति राघव गाऊँगा के स्थान पर व्यक्ति कहता हैं ।

माँ बैंगी का पेंट सिला दो मैं हीरो बन जाऊँगा ।
सब मित्रों के बीच बैठकर, ईलू-ईलू गाऊँगा ॥

प्रदर्शन ने संस्कृति का पापड़ बना दिया हैं । प्रदर्शन व दिखावे के नशे में प्राणी सब कुछ भूल गया हैं । अपनी भारतीय संस्कृति/ अपने संस्कारों पर स्वयं कुल्हाड़ी चलाता जा रहा हैं ।

3. कुसंगति- दूषित संगति प्राणी के मन, तन सर्वस्व को दूषित कर देती हैं। जो व्यक्ति कुसंस्कारों से प्रभावित हैं । आप उसके पास उठेगे, बैठेगे तो आप भी वैसे ही बन जायेगे । शराबी की संगति, करने वाला शराबी, बीड़ी, सिगरेट पीने वाले की संगति करने वाला धूम्रपान का आदी हो जाता है । कहा जाता है- "ददाति यत्तु यस्यास्ति सुप्रसिद्ध मिदं वचः । जिसके पास जो होता है वह वही देता हैं । कुसंस्कार वान के पास बैठोगे तो कुसंस्कार ही जीवन में आयेगे । कुसंगति भी हमारी संस्कृति को दूषित करती हैं ।

4. सन्मार्ग दर्शक का अभाव- जब जीवन में सही दिशा देने वाला नहीं मिलता तो हम भटक जाते हैं । कुसंगति हमें प्रभावित करती है । और उससे प्रभावित होकर हम अपना पतन स्वयं करते चले जाते है । इसलिए जीवन में सन्मार्ग दर्शक गुरु अवश्य होना चाहिए । यदि गुरु है तो वे हमें समीचीन राह दिखायेगे और हम अपनी संस्कृति को दूषित होने से बचा सकेगे ।

5. तत्व की गहराई तक नहीं पहुँच पाना- जब व्यक्ति तत्व का गहराई से चिंतन नहीं करता है तो सफल नहीं हो पाता । बाहर में भौतिक चकाचौंध का माहौल हैं । दुनियाँ किसी दूसरी हवा में बह रही हैं। ऐसी स्थिति में क्या सही है ? क्या गलत ? क्या हमारे हित में हैं ? क्या अहित ? व्यक्ति विचार ही नहीं कर पाता और कुण्ठाग्रस्त होकर जैसा चल रहा है चलने दो, हम क्या कर सकते हैं ? आज का जमाना ऐसा ही है । इत्यादि अनमने से विचारों में उलझ कर सत्य तक नहीं पहुँच पाता और संस्कृति का हनन आंखों देखे होता चला जाता हैं ।

6. ईर्ष्या आदि दूषित भावों की कुण्ठा- जब व्यक्ति ईर्ष्या, राग-द्वेष, वैमनस्यता आदि कुण्ठित करने वाले भावों से घिर जाता हैं । तो कार्याकार्य का विवेक खोकर गलत आदतों के शिकंजे में फस व्यसनों का शिकार हो जाता हैं । ईर्ष्या आदि भाव स्वाभिमान को चूर-चूर कर देते हैं । तथा यदवा-तदवा जैसे हो, किसी भी कीमत पर अकार्य में प्रवृत्त करा देते हैं । परिणाम संस्कृति का पतन हो जाता हैं । और प्राणी बुराईयों का पिण्ड बन जाता हैं ।

7. जीवन की वास्तविकता को न समझ पाना- हमने इस संसार में जन्म क्यों लिया हैं ? हमारे जीवन जीने का लक्ष्य क्या हैं ? मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? मुझे कहाँ जाना हैं ? मुझे क्या करना योग्य है इत्यादि प्रश्न हमारी अंतरात्मा को झकझोर देते हैं । और हमें जीवन की वास्तविकता की ओर ले जाते हैं । परंतु आज के समय में व्यक्ति को सांस भी लेने की फुर्सत नहीं तो जीवन की वास्तविकता के बारे में वह क्या विचारेगा ? यह जीवन मात्र खाने-पीने, सोने के लिए नहीं कुछ कर

गुजरने के लिए मिला हैं। ऐसा विचार प्रगति की दहलीज पर रखा पहला कदम हैं। परंतु जिसके पास समय नहीं वह तो बाहर की उलझनों में उलझा हुआ अपनी संस्कृति से भी हाथ धो बैठेगा ।

जो व्यक्ति इन घटकों को अच्छी तरह समझ लेता हैं । वह रोग को समझ चुका है । और जिसे रोग पकड़ में आ गया हैं । उसके लिए उपचार बहुत से मिल जायेगे । अब बात आती है उन संस्कारों को जगाने की जिससे संस्कृति का रक्षण हो सके । तो वे संस्कार है-

1. हम नकल उसकी उतारें जो हमारी प्रगति में हेतु बनें ।
2. दिखावे को छोड़ वास्तविकता को अंगीकार करें ।
3. कुसंगति को छोड़ अच्छी संगति को अपनायें ।
4. जीवन में उचित मार्गदर्शक का चयन अवश्य करें।
5. तत्व की गहराई में उतरने का प्रयत्न करें ।
6. ईर्ष्यादि भावों का परित्याग करें ।
7. जीवन के वास्तविक पहलु को समझने का प्रयास करें ।

यदि हमने पुरुषार्थ किया तो हम अपने संस्कारों को बदल सकेगे ।

1. सदैव बड़ो के नाम के आगे श्री व पीछे जी अवश्य लगायें ।
2. प्रातः काल उठकर पंचपरमेष्ठियों का स्मरण करें पश्चात् माता-पिता के पैर छूये ।
3. सदैव बड़ों के प्रति विनम्रता का व्यवहार रखे उन्हें योग्य आदर-सम्मान दें ।
4. सदैव अपने से छोटों के प्रति वात्सल्य भाव रखे ।
5. कभी भी अपशब्दों का प्रयोग न करें।
6. सदा हित, मित व प्रिय वचन बोले ।
7. असहाय की मदद करें।
8. वृद्धों की मदद करें ।
9. रोज एक नियम लें व उसे दिनभर अच्छे से पाले ।

यदि आपने अपने जीवन में ऐसे संस्कारों को स्थान दिया है । तो संस्कृति का रक्षण स्वयं हो जायेगा । और आप बड़े गौरव के साथ कह सकेंगे कि मैं "भारतीय-संस्कृति" से संस्कारित हूँ। भारत मेरा महान देश है । जीवन की मधुरता को बढ़ाने वाले संस्कार ही होते हैं। इसलिए जीवन में अच्छे संस्कारों को अपनाकर संस्कृति का रक्षण करें यही आपका परम धर्म हैं ।

इसी भावना के साथ- "1008 महावीर भगवान की जय"

धर्म और विज्ञान

(प्रवचन नं. 37)

★ *धर्म और विज्ञान को देखें तो धर्म के सिद्धांतों के कुछ अंश ही आज का विज्ञान हैं। जिसकी खोज विज्ञान आज करता है उन सिद्धांतों को हजारों वर्ष पूर्व हमारे जैनाचार्य पहले ही कह गये हैं।*

'धर्म और विज्ञान' को देखे तो जो सत्य है वह धर्म है अन्वेषक उसका अंश है । सत्य से जाने विषय की तर्क पूर्ण सिद्धि विज्ञान करता हैं ।

'वत्थु सहावो धम्मों' जैनाचार्यो ने वस्तु के स्वभाव को धर्म कहा हैं ।

धर्म वस्तु से अनन्यभूत होता है । वस्तु का अविनाभावी, अन्वय सापेक्षी रहता है ।

अग्नि का धर्म - ऊष्णता, शक्कर का धर्म- मीठापन, नीम का कड़वापन है । उसी प्रकार जीव ज्ञानादि गुणों से युक्त होने से ज्ञानादि गुण उसके धर्म है । ज्ञानावरणादि कर्मों के आवरण से वह धर्म छिप जाता है । परन्तु उसका विनाश नहीं होता है । वैज्ञानिकों ने कहा है - नया द्रव्य उत्पन्न नहीं होता, पुराना द्रव्य नष्ट नहीं होता । यही बात जैनाचार्य कहते है कि सत का कभी विनाश नहीं होता और असत की कभी उत्पत्ति नहीं होती ।

परिणमन पर्यायों में होता है द्रव्य यथावत रहता है जो गुण सिद्धों में है वही आप में । उनके गुण निरावरण है आपके सावरण । धर्म दोनों का समान है क्योंकि दोनों जीवद्रव्य है ।

स्वभाव का कभी नाश नहीं होता । जैसे 100^{0}C पर पानी उबल जाता है । उबला पानी कोई हमारे ऊपर डाले तो जल जायेंगे । हम कहते है पानी ऊष्ण हैं । परन्तु उष्णता जल का स्वभाव नहीं है । उबलते पानी को यदि अग्नि पर डाले तो अग्नि बुझ जाती है । कारण है पानी में कुछ न कुछ शीतलता है जो ऊष्णता का विनाश कर रही है । तात्पर्य है बाह्य निमित्तों के सद्भाव में द्रव्य में विकार उत्पन्न होता है । परन्तु उसका निजधर्म नष्ट नहीं होता । पर सापेक्षी धर्म - होता हैं ।

क्रूर से क्रूर प्राणी के हृदय में भी दया होती है । शेरनी क्रूर है परन्तु अपने बच्चों के प्रति दया रखती हैं । सर्पिणी क्रूरता में प्रसिद्ध है जो अपने ही बच्चों का भक्षण करती है परन्तु क्षुधा शमन हेतु सामान्य परिस्थिति में रक्षण का भाव होता है । हर प्राणी के हृदय में कहीं न कहीं दया रहती ही है । ऐसा क्यों हैं ? तो कारण हैं दया आत्मा का निज धर्म है वह नष्ट नहीं होता ।

धवला जी में सूक्ष्म निगोदया में भी लब्ध्यक्षर प्रमाण नित्योत्घाटित निरावरण ज्ञान पाया जाता हैं, ऐसा वीरसेन स्वामी कहते हैं । जिसे उन्होंने केवलज्ञान का बीज स्वीकारा है । यदि उस नित्योत्घाटित ज्ञान को न स्वीकारें तो ज्ञानगुण का ही अभाव हो जायेगा जिससे जीवत्व की समाप्ति का प्रसंग आयेगा । जिससे सत का विनाश हो जायेगा । जबकि सत का कभी विनाश होता नहीं है । विज्ञान ने भी इस बात को स्वीकारा है कि कार्बन नामक तत्व विघटित होता है । एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ में चला जाता है परन्तु distroy नहीं होता ।

जिन धर्म वट वृक्ष हैं । जिसकी सूक्ष्म विवेचनाओं को विज्ञान स्वीकारता है । धर्म द्रव्य गमनागमन में सहकारी हैं । विज्ञान ने भी पदार्थों के गमनागमन में एक अदृश्य शक्ति को स्वीकारा है जिसे वे ether नामक द्रव्य कहते है । पदार्थों के गमनागमन में ईथर सहकारी है । द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव × मन, वचन, काय, आहार जल 4 × 4 = 16 सोलह प्रकार की शुद्धि होती है । हमारे यहाँ शुद्ध वस्त्र पहनने की बात की है । लोग कहते है छुल गये तो क्या हुआ ? कौन घुस गया कपड़ों में । धर्म कहता है, शुद्धि बिगड़ गई विज्ञान कहता है Bacteria घुस गया । डॉक्टर्स Operation theater में डिस्टिल वॉटर से औजार धोकर, ग्लोब्ज पहनकर ऑपरेशन करते है कारण हैं Bacteria से Infection हो सकता है ।

विज्ञान जो खोज करता हैं वह बूंद है हमारा जिनागम सागर हैं । ये Bacteria जब हमारे शरीर में प्रवेश करते हैं तो विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ होती है ।

आप चप्पल पहन लेते हो तो सोला बिगड़ जाता है । डॉक्टर भी जूता चप्पल पहन Operation theater में नहीं जाते है । वहां वे मौन रहते है । यहां चौके में भी मौन से आहार देने की बात कही है । अन्यथा मुँह के कीटाणु भोजन सामग्री में जाकर बीमारियाँ पैदा करते है । हजारों, लाखों प्रकार के Bacteria होते है । जैन धर्म में खाद्य पदार्थों की मर्यादा की बात कही है । मयार्दा के बाहर का पदार्थ अभक्ष्य हो जाता है । क्योंकि मर्यादा के बाहर जीवोत्पत्ति हो जाती है विज्ञान भी कहता है । कि मर्यादा समय सीमा के बाद खाद्य पदार्थों में Bacteria पैदा हो जाते है ।

दवाईयां के ऊपर Expiry Date लिखी होती है । तात्पर्य है कि एक समय सीमा के बाद जीवोत्पत्ति प्रत्येक पर्दाथ में हो जाती है । छने पानी की मर्यादा - 48 मिनिट है । रंग, गंध, Change हो तो - 6 घंटे की मर्यादा कुछ गर्म जल - 12 घंटे उबले पानी की मर्यादा - 24 घंटे होती है । 24 घंटे के बाद उस पानी का पुनः प्रयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि मर्यादा समाप्त हो गई ।

सब्जी, दाल आदि कच्चे पदार्थों की मर्यादा 6 घंटे की होती है । रोटी की मर्यादा 12 घंटे की होती है । तले हुए पदार्थों की मर्यादा 24 घंटे की होती है । रात्रि भोजन नहीं करने का भी विज्ञान है ।

भर्तृहरि शतक में मार्कण्डेय ऋषि ने कहा है -

सूर्यास्त होते ही पानी रक्त व खाद्य सामग्री मांस तुल्य हो जाती है । सूर्योदय में जीव उत्पन्न नहीं होते । रात्रि में सूक्ष्म-सूक्ष्म जीव पैदा हो जाते है । जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं ।

1. रात्रि का बना भोजन रात्रि में न करें ।

2. दिन का बना रात्रि में न खाये ।

3. रात्रि का बना दिन में न करें ।

भोजन करने के उपरांत नहीं सोना चाहिये । क्योंकि भोजन पाचन में 6 घंटे लगते है यदि आप रात में खाओगे तो पचेगा कब । आप सो जायेगे तो पाचन क्रिया मंद पड़ जाती है फलतः अपच आदि पेट की बीमारियाँ हो जाती है ।

हमारे जैन धर्म में सूर्यास्त के उपरांत भोजन निषिद्ध है । हमारे यहाँ रसी की बात कही है । रविवार को नमक, सोमवार को हरी, मंगलवार को मीठा, बुधवार को घी, गुरुवार को दूध, शुक्रवार को खटाई/दही, शनिवार को तेल के त्याग का विधान आगम में आचार्यों ने किया है ।

डॉक्टर भी कहते है नमक ज्यादा खाओगे तो B.P. बढ़ेगा । घी ज्यादा खाओगे - कॉलेस्ट्राल बढ़ेगा । शक्कर से Sugar की बीमारी हो जायेगी । इसलिए इसका त्याग करों । धर्म कहता नित्य रसी करो । संयम धर्म भी पलेगा व स्वास्थ्य भी अच्छा रहेगा । हम लोग जब उदगांव चातुर्मास में पूज्य गुरुदेव के साथ थे तब चातुर्मास स्थापना के पूर्व चतुदर्शी को वार्षिक प्रतिक्रमण हुआ । बड़े महाराज प.पू. तपस्वी सम्राट आचार्य श्री 108 सन्मति सागर जी महाराज का स्वास्थ्य खराब था । इसलिए महाराज ने आज्ञा दी इस बार का प्रायश्चित आपको देना है । मैंने कहा- महाराज आप बता दो । महाराज बोले नहीं आप जो देते है वही दे दों ।

मैंने कहा ठीक है - 4 उपवास, 4 नीरस व सवा लाख माला दी । उपवास में किसी को कोई परेशानी नहीं होती परन्तु नीरस जिन्होंने पहले नहीं किया था उन्हें बुखार आ गया वे सिर पकड़ कर बैठ गये ।

मैंने कहा - अभ्यास करो । अभ्यास होगा तो बिना रस का भोजन भी सरस लगता है ।

डॉक्टर की आज्ञा से छोड़ना पड़े उससे पहले ही धर्म को अपना लो । नचरोपैथी में 1. मिट्टी से उपचार 2. कुंचन क्रिया कही । तथा पेट संबंधी बीमारियों को दूर करने के लिए केवल पानी या नीबूं पानी तीन दिन तक नैचरोपैथिस्ट देते हैं । जिससे पहले का सूखा सारा मल निकल जाता है और व्यक्ति स्वस्थ्यता का अनुभव करता हैं । हमारा जैनधर्म भी कहता है कि ऊनोदर व्रत का पालन करो अथवा अनुपवास करो जिसमें भूख से कम आहार या जल आदि लिया जाता है ।

जैन दर्शन एक वैज्ञानिक दर्शन है । त्याग तपस्या के पीछे स्वास्थ्य छिपा होता हैं । क्योंकि बीमार होने वाले अधिकांशतः व्यक्ति ऊटपटांग भोजन सामग्री खाने से बीमार होते हैं । तेल, मसाले वाला गरिष्ठ भोजन अनेक बीमारियों को जन्म देता हैं धर्म भी कहता है कि सात्विक भोजन करना चाहिए तभी संयम धर्म अच्छे से पल सकते हैं । यदि व्यक्ति महिने में 1 उपवास करें तो स्वस्थ रहता हैं । एक विदेशी महिला ने जैनधर्म के सिद्धांतों को पुष्ट करते हुए कहा कि मैं जब भी बीमार होती हूँ या बुखार चढ़ता है तो एक उपवास करती हूँ और स्वस्थ हो जाती हूँ मेरे लिए तो यही औषधी हैं ।

अंतरिक्ष यात्रा की बात विज्ञान उतना ही सिद्ध कर पाया है जो आगम में स्वीकृत है । उससे अधिक सब बातें असत्य सिद्ध हुई है । वैज्ञानिक चंद्र यात्रा कर आये है जब इस बात की तह तक जाकर देखा गया तो पता चला कि कुछ विदेशी वैज्ञानिकों ने अमेरिका के एरिया-51 में जाकर शूटिंग की और उसे ही चंद्रमा बता दिया खोज होने पर वह बात असत्य पायी गई अपनी पोल खुलने के डर से उन्होंने 11 व्यक्तियों का मर्डर कर दिया परंतु झूठ कब तक छिपे संपूर्ण खोजों से पता चला कि उन्होंने जो शूटिंग की थी उसमें चंद्रमा के आसपास जैसा वातावरण उत्पन्न करने की कोशिश की गई थी परंतु वे असफल रहे । और अंत में पकड़े गये ।

विज्ञान कहता है - यह हमारी आज की खोज है । आगे और खोज होने पर हमारा सिद्धान्त बदल जायेगा । पहले विज्ञान पृथिवी को लट्टू की तरह गोल मानता था । कुछ और खोज हुई तो विज्ञान ने कहा - पृथिवी नारंगी की तरह गोल है अर्थात् ध्रुवों पर चपटी हैं हमारा जिनधर्म कहता हैं कि जंबूद्वीप में पाये जाने वाले असंख्यात दीप समुद्र वलय के आकार के हैं । जैन दर्शन के बड़े-बड़े अध्येता विदेशों में है 8 दिन के सेमीनार में अनेक विदेशी आये उन्होंने कहा - जिनागम के सिद्धान्त युक्ति, आगम व विज्ञान से सिद्ध होते है ।

लंदन के मिस्टर डेनियल जैन साधुओं पर रिसर्च कर रहे थे । वे हमारे संघ में आकर बहुत खुश हुए । यथासंभव रिसर्च की । उपवास आदि से मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा होता है इत्यादि विषयों का संकलन किया वे बहुत खुश हुए । हमारा जैनागम तो कहता है 1 निमिष मात्र में असंख्यात समय होते है । पुद्गल का परमाणु मंदगति से चलता हुआ एक प्रदेश से दूसरे आकाश प्रदेश में पहुँचने में जो काल लगाता है वह समय है । समय बहुत सूक्ष्म होता है । पुद्गल परमाणु में इतनी शक्ति है कि वह 1 समय में 14 राजु तक गमन कर सकता है इसलिए उपर्युक्त परिभाषा में पुद्गल की मंदगति ली है । पुद्गल परमाणु में बहुत शक्ति है इसी के द्वारा Atom bomb बनाये जाते है । मात्र 1 bomb संपूर्ण विश्व को मिनिटों में राख का ढेर बना सकता है । पौद्गलिक पदार्थों में पदुगल परमाणु की गति को बतलाने वाले जैनागम के सिद्धान्त को विज्ञान ने स्वीकारा है । प्रायः शब्द की

गति को सबसे तीव्र माना जाता है electric, magnatic waves से भी अधिक गति प्रकाश की होती है । वैज्ञानिकों ने velocity of light = $3x10^{10}$ बताया हैं । उससे भी अधिक गतिशीलता को विज्ञान नहीं पकड़ पाया । परन्तु जिनागम ने पुद्गल परमाणु की बहुत सूक्ष्म विवेचना कर 14 राजु प्रमाण गति मानी हैं । सारा जिनागम विज्ञान पर आधारित है जिनागम में सोला की बात की जाती है । सोला यानि क्या ? सोला यानि 16 प्रकार की शुद्धि । द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इन 4 को मन वचन, काय व आहार जल इन 4 से गुणा करने पर 4-4 = 16 होते हैं । विज्ञान भी भोजन के समय सभी प्रकार की शुद्धियों की बात करता हैं । यदि शुद्धि न रखी जाए तो व्यक्ति विभिन्न बीमारियों का शिकार हो जाता हैं ।

1. Work is worship

वर्क इज वारशिप

कर्त्तव्य ही पूजा है ।

2. Duty is bueaty

ड्यूटी इज ब्यूटी

कर्त्तव्य में ही सुंदरता है ।

God has 3 answers for each prayer -

1. Yes.
2. Wait.
3. I have another plan for you but he never says no. Trust him always & he will bless you.

"तनाव - मुक्ति : साधना"

(प्रवचन नं. 38)

★ ***नकारात्मक सोच नरक का प्रथम द्वार हैं। नकारात्मक सोच रखने वाला कभी उन्नति नहीं कर सकता अपितु कुण्ठाग्रस्त होकर तन व मन दोनों को खो देता हैं।***

किसान खेत में बीज बोने से पूर्व भूमि को उर्वरा बनाता हैं। क्योंकि उर्वरा भूमि में ही अच्छी फसल आयेगी । यदि भूमि उर्वरा न हो तो सफलता नहीं मिलती । उसी प्रकार कभी-भी हमारे अंदर धर्म की बाते सहजता से प्रवेश नहीं कर पाती । जिन-देशना पुण्योदय से सुनने मिलती हैं । परंतु आसानता से वह अंदर प्रवेश नहीं कर पाती । आखिर कारण क्या हैं ? शांति की धारा में भी अशांति । प्रतिदिन शांतिधारा करते है फिर भी मन अशांत हैं । कहीं न कहीं गड़बड़ है वह गड़बड़ क्या है ? शांति में ब्रेक किसने लगाया ? तो वह बेरियर तनाव है ?

तनाव बढते-बढ़ते डिप्रेसन पर पहुँच जाता हैं । और ऐसे बहुत से लोग मिलते है जो डिप्रेसन का शिकार हैं । एक बार एक स्कूल वाले लोग मुझे बुलाने आये उस स्कूल के विद्यार्थी पागल थे । मैंने सोचा पागल को क्या प्रवचन हूँ । वे हंसेगे, उत्पात मचायेगे । स्कूल के टीचर बोले- महाराज मैं जानता था आप नहीं बोलेगे । परंतु फिर भी आया हूँ । पागलखाने में पागल कम व पागल जैसे अधिक है ।

आज के समय में पागल उतने नहीं जितने पागल जैसी धुन बनाये रखने वाले है । ऐसे व्यक्तियों को तनाव से मुक्ति मिलेगी तो धर्म का प्रवेश जीवन में हो सकेगा ।

एक सज्जन मेरे पास आये बोले महाराज ! आज की दुनियाँ में 80% लोग पागल है । चिकने घड़ों की संख्या संसार में बहुत अधिक है । आज का व्यक्ति पहले से इतना भरा होता है कि और भरना संभव नहीं । भरे कलश को और नहीं भर सकते । जबरदस्ती भरोगे तो सब नीचे गिर जायेगा । खाली होना अनिवार्य हैं। खाली हुए बिना भरा नहीं जा सकता । जैनागम में दर्शन की भी एक विधि बतलायी है । मंदिर जी में प्रवेश करते ही भक्त ॐ जय-3 नमोऽस्तु-3 निःसही-3 बोलता है । मुनियों की 10 समाचार विधियों में भी एक निसधिका है निःसही का अर्थ है- खाली होना ।

1. यदि भगवान की भक्ति कोई देवता गण कर रहे हो तो वे हमें स्थान दें । किसी की भक्ति में

विध्न न आये इसलिए निःसही-3 बोला जाता हैं ।

प्रायः नये या पुराने मंदिरों में देवतागण भक्त बन भक्ति हेतु आते हैं ।

साधु जन गिरी, कंदर, गुफा, वन, नदियों के पास से गुजरने के पूर्व निःसही बोलते है । ताकि कोई अदृश्य देव वहाँ हो तो हमें स्थान दे दें । पूछंकर जाने में दुर्घटना नहीं होती । बिना पूछे जाओंगे तो दंडित होना पड़ सकता हैं ।

2. निःसही का दूसरा अर्थ- जिस प्रकार मंदिर जी में प्रवेश करते समय आप चमड़े वस्तु, बेल्ट, चप्पल बाहर उतार देते है पैरों को धोकर मंदिर जी में प्रवेश करते है ताकि हमारी पवित्रता बनी रहें । यह हमारे यहाँ की आदर्श व्यवस्थाएँ है । परंतु जो विवेक रहित होते है वे इन बातों का ध्यान नहीं रखते । परंतु विवेकवान तन को पवित्र कर मंदिर जाते है । परंतु तन शुद्धि के साथ मन शुद्धि भी अनिवार्य है । मन में भरे राग, द्वेष, कषाय, काम, मोह रूपी अपवित्र भावों का परित्याग करके श्री जी के समक्ष जाया जाता है । नेमीनाथ की प्रतिमा का दर्शन और बात है तथा उनमें छिपे वीतराग परमात्मा का दर्शन और बात है । मूर्ति में मूर्तिमान का दर्शन वही कर सकता है जो विषय, कषायों से खाली हो जाता है । जिन में निज के दर्शन वही कर पायेगा । जिसका मन पवित्र होगा । प्रतिमा के दर्शन तो सारा संसार कर लेता है । एक सज्जन मंदिर आये और भगवान के सामने खड़े हो गये वे बड़े भाव से भगवान को निहार रहे थे मैंने सोचा बहुत बड़ा भगवान का भक्त होगा । परंतु जब कुछ करीब से देखा तो वे तो भगवान के पीछे लगे कांच के दर्पण में निज दर्शन कर रहे थे । मैं सोच रहा था । ऐसे निज दर्शन तो भव भ्रमण ही करायेगें, मुक्ति नहीं दिला पायेगे । अधिकांशतः प्राणी जगत भगवान के दर्शन तो करते है परंतु संसार भर के विकल्पों को मन में भरकर दर्शन करते हैं, ऐसे दर्शन करोगे । तो परमात्मा नजर नहीं आयेगे । कोई सब्जी खरीदने का विकल्प मन में लेकर जाते है तो कोई ग्राहकों का ।

जो विकल्प है परमात्मा में तुम्हें वीतरागता के स्थान पर वे विकल्प ही दिखेंगे ।

निःसही कहता है- हे प्राणी ! विकल्पों से मन को खाली करो ।

अन्य संप्रदायों में Meditation center (ध्यान केंद्र) होते हैं । जिनमें लाईट ऑफ कर दी जाती है ताकि मन शांत हो । परंतु मन बाह्य साधनों से शांत नहीं होता अपितु विकल्प मुक्त होने से शांत होता है ।

जिसके मन में विकल्प है वे उसे तनाव की भूमिका में ले जाते है । तनाव को चिंता भी कहते हैं । चिंता जीवित को जलाती है । सुभाषित कारों ने कहा है-

चिंता चिता द्वयोर्मध्ये, चिंता ह्वे गरीयसी ।

चिता दहति निर्जीविकम्, चिंता दहति सजीवकम् ॥

चिंता व चिता में एक अनुस्वार मात्र का अंतर है । चिता से भी बड़ी चिंता है क्योंकि चिता तो निर्जीव मृत शरीर को जलाती है परंतु चिंता तो सजीव, जीते-जागते को जला डालती है । चिंता सबसे बड़ी घातक हैं । चिंता ही चिता की भूमिका में ले जाती है चिंता में चिंतन, खुशी, हर्ष, प्रसन्नता समाप्त हो जाती है ।

चिंता करने वाला हजारों रोगों से ग्रसित हो जाता हैं ।

B.P. High क्यों होता हैं ? Tension करने वालों का B.P.High होता है । और अधिक तनाव बढ़ जाये तो डिप्रेशन में पहुँच जाता है डिप्रेशन हो जाने पर- चिड़चिड़ाहट बात-बात में क्रोध, नकारात्मक सोच पैदा होने लगती है । मालूम नहीं पडौसी मेरे बारे में क्या सोच रहा होगा ।

मेरी पड़ौसन मुझे देख हंस रही थी । वह मेरी बुराई करती रहती है । ऐसे नकारात्मक विचार मानसिक रोग पैदा कर देते है । प्रायः विद्यार्थी अधिक Tension कर लेने से ब्रेन हेम्रेज के शिकार हो जाते है क्योंकि मतिज्ञानावरण, नोइंद्रियावरण व वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से मतिज्ञान उत्पन्न होता है । जब शरीर कमजोर होता है तो व्यक्ति ज्यादा Tension नहीं कर सकता । यदि ज्यादा Tension करे तो दिमाग की नस फट जाती है । Tension से बचने प्रायः व्यक्ति नींद की गोलिया, इन्जेक्शन लेता हैं । फिर भी शांति से नहीं सो पाता ।

हमारे जैनाचार्यो ने सही मार्ग दिखाया है वे कहते है चिंता नहीं चिंतन करों ।

तनाव होने के दो मुख्य कारण है -

1. जो नहीं चाहते वह हो रहा है ।

2. जो चाहते है वह नहीं हो रहा ।

कोई गरीबी नहीं चाहता परंतु गरीबी सामने खड़ी हैं ।

व्यक्ति स्वस्थ होना चाहता है परंतु अस्वस्थ रहता है ।

व्यक्ति Tension करके comma में पहुँच जाता है वह जीते जागते मुर्दे की तरह हो जाता है ।

विज्ञान कहता है यह तुम्हारी कमजोरी है इसलिए तुम तनाव के शिकार बनें हों ।

तनाव मुक्ति का उपाय है कि अपने अंदर धार्मिकता पैदा करो, तत्व चिंतन का आश्रय लो । जो नित गुरुवाणी का श्रवण करते है वे समाधान जल्दी पा लेते है ।

स्वाध्यायशील तत्व चिंतन से स्वयं को संभाल लेता है ।

1. व्यक्ति को यदि पुरुषार्थ से सफलता न मिले तो सोचे-

यह पूर्व में किये कर्म का उदय चल रहा है इसलिए जब कष्ट सहना ही है तो रो-रोकर क्यों सहे,

हंसकर ही सहूंगा।

विपत्ति अशुभोदय, असातावेदनीय कर्म के उदय से आती है ऐसा चिंतन करते है तो समता आ जाती है एक व्यक्ति बोला- महाराज ! मेरी दुकान नहीं चलती किसी ने बांध दी है।

मैंने कहा तुम्हारी कुण्ठित बुद्धि ने तुम्हें बांध दिया हैं। तुम बंधोगे तो कोई बांधेगा। नहीं बंधोगे तो कोई नहीं बांधेगा।

यदि जीवन में गरीबी है तो बनी रहने दो भगवान की भक्ति कर हंसी-खुशी जीवन गुजार देंगे।

संतों पर जब कष्ट आते हैं तो वे विचारते है- मैं पूर्व भव में लिये कर्ज से मुक्त हो रहा हूं।

गजकुमार मुनि के सिर पर जलती सिगड़ी रख दी गई। पार्श्वनाथ पर ओले-शोले बरसाये गये, पांडवों के शरीर में गर्म-गर्म लोहे के जलते आभूषण पहना दिये गये। परंतु उन्होंने आक्रोश नहीं किया अपितु वे सोचते है मैं कर्ज मुक्त हो रहा हूँ। मेरे द्वारा पूर्व में संचित किये गये कर्मों का उदय है। उस ऋण को तो मुझे ही चुकाना पड़ेगा। इसलिए समता रख कर्म के कर्ज को उतारना चाहिए। एक व्यक्ति को देख कोई हंसता है तो दो प्रकार के विचार बनते हैं एक तो यह कि मुझ पर हंस रहा है जरुर मेरा मजाक उड़ा रहा होगा। दूसरा विचार-अच्छा है कम से कम वह मुझे देख हंस तो रह है। रो तो नहीं रहा। पहले प्रकार के विचार ही नकारात्मक है, ऐसे विचार वाले व्यक्ति बहुत हलवा-पूरी खाते है फिर भी लकड़ी की तरह सूखते जाते है।

मन को इतना ऊँचा बना लो कि कोई शत्रु न दिखे। विश्व के सभी प्राणियों से मेरी मित्रता हैं। सकारात्मक सोच बना लीजिए। सकारात्मक सोच अनावश्यक तनाव से मुक्ति दिलाती है। एक बार एक संत जिस रास्ते से गुजर रहे थे तो ऊपर खड़ी सेठानी ने अभिमान में आकर साधु के ऊपर राख डाल दी। संत/महात्मा जी हंसने लगे वे बोले- बाह्य रे ऊपर वाले तू तो बड़ा दयालु है। महिला नीचे आयी और बोली - आप राख डालने पर गुस्सा होने की बजाय हंस क्यों रहे है महात्मा बोले- हंस इसलिए रहा हूँ कम से कम राख ही तो डाली अंगारे तो नहीं डाले। वह महिला पानी-पानी हो गई। किसी कवि ने कहा है-

मुस्कुराकर जिसको गम को पीना आ गया।
यह हकीकत है जहाँ में उनको जीना आ गया॥

जो मुस्कुराकर दुःख को सह लेते है वे ही जीवन को सफलतापूर्ण ढंग से जी पाते हैं।

मीरा, भक्ति में जगत प्रसिद्ध हैं। उनकी भक्ति से तंग हो राणा जी ने विष का प्याला भेजा परंतु जहाँ परिणाम निर्मल है वहाँ विष भी अमृत बन जाता है यदि विचार सकारात्मक है तो नाग भी फूलों का हार बन सकता है। शूली भी सिंहासन बन जाती है। सकारात्मक सोच मन को शक्ति प्रदान

करती है यदि सकारात्मक सोच है तो पग-पग पर फूल है यदि सोच नकारात्मक है तो कदम-कदम पर कांटे है ।

सकारात्मक सोच रखने वाला तनाव मुक्त हो जाता है । परंतु नकारात्मक सोच वाला हाथ आयी संपदा से वंचित रह जाता है ।

दो भाई थे । माँ ने बड़े भाई को बड़ा लड्डू दिया । छोटे को छोटा दिया । छोटा भाई मचल गया । मंमी मुझे भी बड़ा लड्डू दो । बड़ा तो था नहीं । गुस्से में आकर छोटे बालक ने अपना लड्डू फेंक दिया । दूसरा लड्डू था नहीं बड़े के चक्कर में छोटे लड्डू से भी हाथ धो लिये ।

आधी छोड़ पूरी को धावे ।
जाय कहाँ यह पता न पावे ॥

नकारात्मक विचार वाले व्यक्ति सदैव असफलता पाते है, मुक्ति के फूल उसके जीवन में नहीं खिलते ।

भगवान महावीर स्वामी जहाँ से विचरण करते थे वहाँ जन्मजात बैरी भी मित्र हो जाते थे । विज्ञान Aura की बात करता है । प्रत्येक प्राणी का अपना -अपना आभामण्डल होता है । पवित्र आभामण्डल सबको शांति, पवित्रता देता है ।

विज्ञान- हंसने की बात कहता है परंतु आगम कहता है हास्य तो कषाय है ।

'गुणिषु प्रमोदं' प्रमोद भाव / प्रसन्नता रखिये ।

नकारात्मक सोच से पहले मन, फिर चेहरा फिर वचन बिगड़ते है । अपशब्दों से न जीते तो हाथापाई फिर लठालठी, मारापीटी होती है । लड़ते-झगड़ते मरोगे तो परभव में भी लड़ते रहोगे । भगवान का नाम जपते-जपते मरने वाला, अगले जन्म में परमात्मा का नाम जपते-जपते जन्म लेगा ।

शत्रु को भी मित्र ही मानो । आचार्य जिनसेन महाराज हरिवंशपुराण में लिखते है- ईर्ष्यालुओं को मेरा ग्रंथ देख ईर्ष्या होगी वे उसमें दोष निकालेगे । परंतु मैं यही सोचूंगा कि एक-एक दोष को दूर-करते-करते मेरा समग्र ग्रंथ निर्दोष हो जायेगा

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, व्यक्ति, विषय, चर्चा बदलोगे तो आपका जीवन बदल जायेगा । सकारात्मक सोच ही सुख व आनंद के बीज देगा जो भविष्य में मुक्ति के रूप में फलीभूत होगा । अतः जीवन में सकारात्मक सोच पैदा करें व नकारात्मक सोच से बचें तभी आप तनाव मुक्त होकर अपूर्व शांति को प्राप्त कर सकेंगे ।

इसी भावना के साथ- "1008 महावीर भगवान की जय"

"बेटी बचाओ - देश बचाओ"

(प्रवचन नं. 39)

> ★ *जहाँ प्रेम, वात्सल्य व करुणा का नीर प्रवाहित होता है वही धर्म का वास होता हैं।*
>
> ★ *जहाँ अहिंसा है वही धर्म हैं।*

बंधुओ ! धर्म की परिषाभा देते हुए आचार्यो ने कहा है-

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं अहिंसा संयमों तवो ।
देवो वि तस्स पणमन्ति जस्स धम्मे सया मणो ॥

हमारे धर्म ग्रंथों में गणधर परमेष्ठी ने अहिंसा, संयम व तप को धर्म कहा है । किसी अपेक्षा से तीनों एक है । तप के बिना संयम नहीं, अहिंसा बिना संयम नहीं । अहिंसा, संयम में समाविष्ट है अहिंसा, संयम, तप में समाविष्ट है । ऐसा धर्म मंगल स्वरूप है । उत्कृष्ट मंगल है । तथा उत्कृष्ट मंगल स्वरूप धर्म ही उपादेय है । ऐसे धर्मधारी के आगे देवता भी शीश झुकाते है वह धर्म किसी कलकारखाने में नहीं बनता, किसी पत्थर पेड़ मे नहीं मिलता अपितु आत्मा मे उत्पन्न होता है । सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होते ही व्यक्ति के हृदय में धर्म उतर जाता है । धर्म भाषण व प्रवचनों तक ही नहीं अपितु आचरण में उतर जाता है ।

जो आचरण में उतरें वही सच्चा धर्म है-

1. प्रशम 2. संवेग 3. अनुकंपा 4.. आस्तिक्य ये चार गुण सम्यग्दृष्टि के होते हैं ।

अनुकंपा व दया अंतरात्मा से उत्पन्न होती है ।

धर्म तो बहुत होते है । परंतु अहिंसा परम धर्म है व अंतर से उत्पन्न होता है दया बाहर से हो सकती है परंतु अनुकंपा हृदय से होती है ।

चाहे कबीर हो या गुरुनानक, राम हो या कृष्ण, पीर पैगंबर हो या भगवान महावीर । इन्होंने मात्रा अहिंसा के नारे व वैनर नहीं लगाये अपितु जीवन में उतारा है ।

भगवान पार्श्वनाथ ने कुमारावस्था में अपने दिव्य ज्ञान से जान लकड़ी में अर्द्धजले नाग-नागिन को णमोकार सुनाया । राम ने घायल जटायु को गोद में उठा मलहम पट्टी की ।

उसमें उनकी, करुणा, दया के हमें दर्शन हो जाते हैं ।

गौतम बुद्ध के सन्मुख जब तीर से विधा हंस गिरा तो उसे उन्होंने गोद में उठा उसके प्राणों की रक्षा की ।

हजरत मुहुम्मद ने अपने घाव के कीड़े को वापस उस में रख दिया । लोगों ने कहा ऐसा क्यों किया ? वह काटेगा । उन्होंने कहा वह तो मुझे काटेगा ही परंतु उसे घाव में ने रखा तो उसके प्राण चले जायेगे ।

दया दिल से होती है ।

अगल तेरे दिल में दया नहीं है । तो समझों तुम्हें दिल अभी मिला ही नहीं है । दया की मूर्ति विश्व में माँ होती है । क्रूर से क्रूर माँ भी अपनी संतान के लिए ममतामयी होती है । शेरनी बच्चों को जन्म देती है । परंतु मारती नहीं । कूकरी भी जन्म देने वाले बच्चे को नहीं मरती । नागिन कभी-कभी बच्चों का भक्षण कर लेती है तुम बिना भूख के बच्चों को मारते हो तो नागिन से गयी बीती हो । सूकरी भी क्षुधा शमन के लिए बच्चों को खाती है हे माँ तू तो उस कूकरी, सूकरी, डूकरी से भी गई बीती हो गयी है ।

जहाँ दया, करूणा, ममता की मूर्ति कही जाती है वह नारी ऐसे कुकृत्य करने लगे, हिंसा पर उतारूं हो जाए तो क्या कहे ? यदि हम शास्त्रों को उठाकर देखे तो-

वीरसेन महाराज ने धवला टीका में कन्या को मंगल कहा है । शकुन शास्त्रों में कन्या को शुभ शकुन माना जाता है ।

भरा कलश लिये कन्या दिखे तो कार्य में सफलता मिल ही जाती है ।

बुंदेलखण्ड में कन्या के पैर पखारे जाते है चरण छुयें जाते है । चाचा, मामा, दादा सब कन्या के चरण छूते है । कन्या को दिया ही दिया जाता है लिया कुछ नहीं जाता ।

नवरात्री में कन्याभोज कराया जाता है कन्याभोज कराने से घर में समृद्धि होती है उसे शक्ति के रूप में स्वीकारा गया है उस कन्या को मारने वाली माँ लक्ष्मी को लौटा रही हैं ।

बेटा की उत्पत्ति हो तो खुशहाली बेटी जन्में तो मायूसी । जो माँ बेटी को जन्म दे रही है वह भी किसी की बेटी हैं ।

बेटी ही सृष्टि की जननी है यह अतिश्योक्ति नहीं है । तीर्थंकरों को जन्म देने वाली भी नारी होती हैं एक बेटी उभय कुलों की लाज होती है वह उभय कुलों को सुशोभित करती है वह देहली के दीपक की तरह उभय कुलों को प्रकाशित करती हैं ।

1 माँ 100 सैंकड़ों शिक्षकों पर भारी हैं ।

"A Good mother is better then Hundered Teachers"

माँ की शिक्षा बच्चों को सौ टीचर मिलकर भी नहीं दे पाते ।

माँ, बच्चों की प्राथमिक पाठशाला है माँ बच्चों के लिए स्वयं भूखी रहती है परंतु बच्चों को दूध मलाई खिलाती है माँ स्वयं दूसरों के यहाँ मेहनत मजदूरी कर करके बच्चों को पढ़ाती है । माँ स्वयं फटे कपड़े पहन ले परंतु बच्चों को नये पहनाती हैं।

माँ अपने बच्चे के लिए अपने प्राण भी दे देती है ।

एक बार दो माताएँ एक ही बच्चें को अपना पुत्र बता रही थी । झगड़ा राजा श्रेणिक के दरबार में पहुँचा महाराज पेरशान हो गये व निर्णय अभयकुमार पर छोड़ दिया ।

अभयकुमार कुशाग्र बुद्धि थे । पहले बहुत पूछा सच-सच कहो किसका पुत्र है । दोनों एक ही बात कर रही थी ये मेरा है, ये मेरा है । अभयकुमार ने तुरंत म्यान से तलवार निकाली और कहा ठीक है तुम सच नहीं कहती हो तो तलवार से इस बेटे के दो टुकड़े कर देता हूँ । दोनों एक-एक ले लेना । जो असली माँ थी वह चीख उठी बोली नहीं-नहीं कुमार ये बच्चा मेरा नहीं उसे ही दे दो। कुमार उसकी दया देख समझ गया कि यही असली माँ है । बंधुओं ! माँ बेटे की रक्षा के लिए अपनी शक्ति का भी ध्यान नहीं रखती भक्तामर में कहा हैं-

सोऽहं तथापि तप भक्ति वशान्मुनीश,
कर्त्तुस्तवं विगत शक्ति रपि प्रवृत्तः ।
प्रीत्यात्म वीर्य मविचार्य मृगी मृगेन्द्रम्,
नाभ्येति किं निज शिशो परिपालनार्थम् ॥5॥

अपने बालक की प्रीति वशात् एक मृगी । हिरणी शेर से मुकाबला करने तैयार हो जाती है । यद्यपि वह जानती है कि मेरे पास इतनी शक्ति नहीं है कि मैं शेर से मुकाबला कर सकूं । फिर भी बच्चे की प्रीति ने शक्ति भर दी है ।

सोचिए ! क्या आज की माताओं की ममता पूर्ण रूपेण सूख गयी है । क्या आज की माताएँ पशुओं से भी गई बीती है ।

एक कोयल जब अंडे देती है तो चूजे को बड़े प्यार से संभालती है बाहर से दाना लाकर अपनी चोंच से बच्चे को खिलाती है । यदि कोई उसके बच्चों के पास से निकल जाए तो विह्बल हो जाती हैं ।

एक बिल्ली जब अपने बच्चों को जन्म देती है तो कहीं भी रहे ध्यान बच्चों पर रहता हैं। थोड़ी सी भी बच्चों के रोने की आवाज आये तो दौड़ कर आती है और यदि कोई उसके बच्चों को परेशान करें तो शेरनी बन लड़ने तैयार हो जाती हैं । सोचिए ! एक पशु की ममता, आज की माताओं पर

भारी है । आज की माताएँ पशुओं से गये बीते कुकृत्य कर रही है वे ठंडे दिमाग से विचारे वे क्या जघन्य पाप कर रही हैं ।

अपनी संतान को भारभूत नहीं समझों अपितु अपनी युक्ति से उपहार स्वरूप बना दो । यदि तुम अपनी ही संतान को भार समझ कर हिंसा करोगे तो तुम्हारी हिंसा तुम्हें दुर्गति में ले जायेगी । भ्रूण हत्या करने वाला-

1. भगवान का माता-पिता नहीं बन सकता

2. सौधर्म इंद्र आदि बन जिन पूजन, अभिषेक व आहार दान नहीं दे सकता ।

क्योंकि संज्ञी पंचेन्द्रिय की हिंसा महापाप है । यदि कोई किसी का मर्डर कर दे तो उसे फांसी की सजा दी जाती है । आप तो खुले आम मर्डर पर मर्डर कर रहे हैं आपको कौन सी सजा दी जानी चाहिए? आप ही विचारें ।

प्रथम तो ऐसा अपराध न करें यदि हो गया है तो प्रायश्यित्त ले । परंतु जो व्यक्ति छल-कपट, झूठ का सहारा लेकर ऐसे कृत्य करते हैं कराते है अनुमोदना करते हैं । वे तो प्रायश्चित के भी भागीदार नहीं है वे महापापी है नियम से नरक में ही जायेगे । तथा स्वयं बारबार तलवारों के प्रहार से मारे जायेगे ।

वहाँ नरकों में आपकी चीख-पुकार सुनने वाला भी कोई नहीं होगा । भ्रूण हत्या कर आप मानवता को कलंकित न करे ।

भ्रूण हत्या विषयक लोगों की मान्यता एवं उसका निराकरण-

यदि आप अपने देश को पतन से बचाना चाहते है तो बेटियों को बचाइए भ्रूण हत्या पर ब्रेक लगाइए ।

बहुत से लोगों का भ्रूण हत्या विषयक यह तर्क होता है । कि हम किसी बच्चे की हत्या नहीं कर रहे है अभी तो वह मात्र एक तरल पदार्थ ही है । उसे ही दवाईयों के माध्यम से बाहर निकाल रहे हैं फिर हमें हत्या का दोषी क्यों ठहराया जाता है ।

तो बंधुओं ! गर्भधारण की प्रक्रिया में Sperm & ova (शुक्राण व अंडाणु) जब परस्पर मिलते है तो कुछ अंडाणु ही निषेचित (Fertiliged) हो पाते है । सभी नहीं जो अंडाणु निषेचित होते है पहले उनका Collidal form बनता है । एक प्रकार का गाढ़ा तरल पदार्थ.फिर धीरे-धीरे विकास की प्रक्रियाएँ प्रारंभ होती है ।

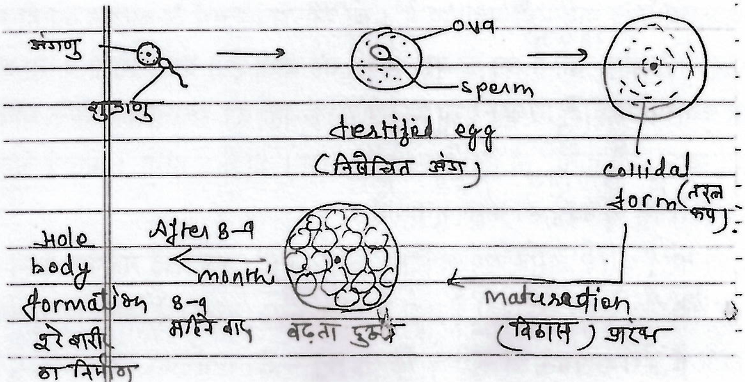

जैसे-2 1-1 महिना आगे बढ़ता है । गर्भ मे पहले शिशु का विकास होता जाता है । जो तरल रूप था उसी के विकास होते-होते ही हाथ-पैर धीरे-धीरे पूरा शरीर बन जाता है ।

लोगों की मान्यता है कि तरल पदार्थ जीव नहीं हैं । परंतु आप ही सोचिए शिशु का निर्माण उस तरह के विकास (Modification) से ही हुआ है ।

यदि वह तरल ही न होता तो बच्चा किसका बनता ?

दूसरी बात यदि हम आगम के परिप्रेक्ष्य में देखे तो आगम कहता है कि अंडाणु व शुक्राणु के मिलने पर जैसे ही निषेचित होता है तब तरल अवस्था में जीव उसमें आ जाता है यदि जीव नहीं होता तो वह महिला गर्भवती ही नहीं कहलायेगी । यदि कोई महिला गर्भवती है तो गर्भ धारण के प्रथम दिन ही अथवा गर्भधारण के समय ही जीव उस गर्भ में आ जाता हैं । यह नियम है । इसलिए अपने मनगढंत तर्क देकर किसी भी प्राणी के प्राणों का घात करना महापाप है । जीव चाहे (Liquid) तरल अवस्था में ही क्यों न हो उसे मारोगे तो पीड़ा तो उसे होगी ही । जल की एक बूंद में 36,450 जीव है आगमानुसार असंख्यात जीव हैं । तो क्या अनछने जल के प्रयोग से वे नहीं मरेगे । अवश्य मरेगे । जल भी तरल है उसमें भी आंखों से न दिखायी देने वाले जीव हैं । परंतु आंखों से दिखे या न दिखे आप उन्हें मारोगे तो उन्हें पीड़ा तो नियम से होगी ही ।

जो व्यक्ति गर्भपात/भ्रूणहत्या करते है उन्हें संज्ञी पंचेन्द्रिय की हिंसा का दोष लगता है । यदि वह गर्भस्थ शिशु बालिका है तो एक आर्यिका की हत्या बराबर तथा यदि वह गर्भस्य शिशु बालक है तो एक मुनि की हत्या बराबर दोष लगता है क्योंकि हो सकता है गर्भ में पल रहे वे होनहार बालक आगे

चल कर ऐसे महान बनें ।

अतः भ्रूणहत्या मात्र पाप नहीं महापाप है । जो स्त्री अपने गर्भ के बालक को ही मार दे वह स्त्री मनुष्यिनी कहलाने लायक नहीं है वह तो पशु से भी गई बीती है । गर्भ गिराना क्रूरता की परकाष्ठा है यदि थोड़ा भी दयावंत कोई हो तो वह ऐसा निकृष्ट कार्य नहीं कर सकता । क्योंकि यदि हमें चींटी के काटने का दर्द सहन नहीं होता तो किसी को छुरी चलाने का कैसे होगा । आइये आपको उस भ्रूण हत्या में गर्भवस्थ शिशु के कष्टों की कथा सुनाते हैं ।

जब किसी तरल पदार्थ जिसमें गर्भस्थ शिशु विद्यमान है । जब कोई गर्भपात करने वाली टेबलेट ली जाती है तो वह एक प्रकार का जहर है तथा उस लिक्विड (तरल) में स्थित शिशु को उस जहर से उतना कष्ट होता है जैसे तलवार या छुरी से किसी मनुष्य के अनगिनत छोटे-छोटे टुकड़े करने पर होता हैं ।

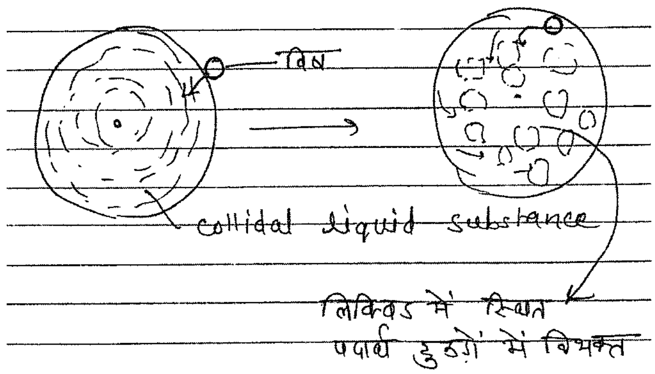

लिक्विड में स्थित पदार्थ टुकडों में विभक्त ।

सोचिए । आप मानव है या पशु । इंसान है या हैवान । आदमी है या राक्षस, माता है या कुमाता, मनुष्य है या कसाई ? आप क्या हैं। इसका निर्णय आप स्वयं करें ।

प्रथम तो ऐसा जघन्य अपराध करना ही नहीं चाहिए। परंतु यदि अज्ञानता वशात् आपसे हो गया है तो प्रायश्चित लेकर पाप से कुछ न कुछ हल्का अवश्य हो जाना चाहिए ।

देश की आन, वान, शान बेटियों को बोझा नहीं वरदान समझे । ईश्वर का प्रसाद समझे और बेटा व बेटी को समान दृष्टि से पाले । हिंसा न करे उन्हें अभय प्रदान करें तभी आप एक सच्ची माता कहला सकेगी ।

इसी भावना के साथ- "1008 महावीर भगवान की जय"

''भेद विज्ञान चर्चा में नहीं, चर्या में हो'

(प्रवचन नं. 40)

★ *मंदिर व गुरुद्वारा वह कारखाना है, जहाँ कच्चा माल आता है और बहुमूल्य वस्तु बनकर बाहर निकलता हैं।*

★ *जहाँ विश्वास होता है, सफलता वही मिलती है। संशय में जीने वाला सफल नहीं होता।*

एक मात्र अखंड चैतन्य पिंड, ज्ञानानन्द समरसी भाव में तल्लीन, शुद्धात्मा का आश्रय ले परमात्म पद को पाने वाले श्री जिनेन्द्र देव के पथ के अनुगामी उस निर्वाण पद को पाते है जो आत्मा के अनंत गुणों को दर्शाता हैं। हम छोटी-छोटी यात्राओं में थक जाते है परंतु चैतन्य धाम की यात्रा करने वाले कभी थकते नहीं। उन चैतन्य मूर्ति के अनुगमक उनके लघुनंदन कहे जाते है। जो चलते फिरते सिद्ध सम है वे दिगंबर संत आत्माश्रय ले अनंतगुणी कर्मो की निर्जरा करते है। आज भी विदेह क्षेत्र में वह कर्म क्षय की प्रक्रिया अनवरत जारी है।

भरतक्षेत्र में इस कलियुग में हीन संहनन होने से कर्म क्षय संभव नहीं हैं। एक दिन एक सज्जन बोले- महाराज आपने दीक्षा क्यों ली ? मैंने कहा- 'सकल कर्म क्षथार्थं'। कर्मों का क्षय करने के लिए। वे बोले- आज मोक्ष संभव हैं क्या ? मैंने कहा- मोक्ष न सही मोक्षमार्ग तो है। यदि सही मार्ग मिल गया है कदम आगे बढ़ा दिये है तो मंजिल भी अवश्य मिलेगी। मोक्ष की दूरियाँ चलते-चलते कुछ न कुछ तो कम अवश्य होगी। इसलिए पंचम काल में दीक्षा लेना व्यर्थ नहीं है। पाप भरी दुनियाँ, पाप पंक से बचने के लिए शुभोपयोग में लगना अनिवार्य हैं। यही शुभोपयोग मुक्ति प्राप्ति में सशक्त निमित्त बनेगा; आपने मुनियों के केशलुंचन का दृश्य देखा होगा। प्राचीन समय में सार्वजनिक केशलौंच सभा में होते थे। पाय सागर जी को केशलंचुन भेदविज्ञान का प्रेक्टीकल है थ्यौरी पढ़ना आसान है। प्रेक्टीकल कठिन है। पहले कोई 1 बाल खीचें तो आंखे लाल पीली हो जाती थी। और अब घास फूस की तरह महापुरूष अपने केश उखाड़ कर फेंक देते है।

भेद विज्ञान की चर्चा सरल, आचरण कठिन हैं। केशलुंचन में सच्चा भेद विज्ञान प्रकट हो जाता हैं।

एक संत ने प्रथम केशलुंचन में कहा- आज मुझे आत्मा साक्षात् दिख गई। आज मुझे सच्चा भेद विज्ञान हो गया है। शरीर में मोह नहीं है तो तकलीफ नहीं होती। दिगंबर संतों के अंदर वैराग्य

होता है इसीलिए केशलुंचन करते है ।

रागी-अपने बालों को ही संजाते रहते है काले घुघराले वालो पर लोगों को बड़ा नाज होता हैं । सफेद बालों को काला करने लोग खिजाब लगाते हैं । डाई करते हैं । काला एक रंग है । उसमें अनुराग रागी बनाता हैं । अपने सफेद केशों को देख प्राचीन काल में महापुरुष वैराग्य को प्राप्त हो जाते थे । आज सफेद बाल से वैराग्य तो नहीं होता वे भी रंग दिये जाते है । जिन बालों की संभाल के लिए दुनियाँ दिन-रात एक करती है उन्हें संत घास-फूस की तरह उखाड़ कर फेंक देते हैं । संतों की दृष्टि आत्मा पर होती हैं । पुद्गल से वे राग नहीं करते । मुनिराज कटिंग नहीं करा सकते। क्योंकि उस्तरे के आघात से जीव हिंसा की संभावना होती है इसलिए हाथ से उखाड़ते हैं

कटिंग कराने वाले रागी हैं वे विभिन्न स्टाइलों में बाल कटाते है । आचार्य कहते है बाल उखाड़ कर फेक दो तो कोई राग नहीं ।

मुनिराज का सिर केशलौंच से सुशोभित हो रहा था । ऐसे प्रकरण प्रथमानुयोग में मिलते है तात्पर्य सिर की शोभा केशलौंच से होती है आज के समय में जिसके सिर पर बाल न हो वह टकला या चिकमुंडा इस संज्ञा को प्राप्त हो जाता है । व्यक्ति शर्म महसूस करता है । परंतु वैरागी संतों की शोभा उसी में होती है ।

केशलौंच के समय राख का प्रयोग किया जाता है कुछ लोग कहते हैं कि राख लगाने से दर्द नहीं होता होगा । परंतु ऐसी बात नहीं है । बाल फिसले न पकड़ सही बने और यदि खून बगैरह आ गया है तो राख Antiseptic का काम करती है । इसलिए उसका प्रयोग करते है जघन्य से केशलौंच 2 महिने में उत्कृष्ट से 4 महिने में किया जाता है । लीख, जुआ न मर जाये इसलिए हाथ से बाल निकालना उचित हैं

दूसरी बात संत धातु का प्रयोग नहीं करते उस्तरा/चाकू हिंसोपकरण है । जिसे रखने का संतों का त्याग है उस्तरा रखने से अपरिग्रह महाव्रत नहीं रहेगा 28 मूलगुण सदोष हो जायेगा । यदि उस्तरा रखा तो धार खराब होने पर याचना करना पड़ेगी । चोरी चला गया तो दुःख/संक्लेश होगा ।

दुनियाँ में सब कुछ बदला हैं । मंदिर/मूर्ति के आकार/प्रकार बदले हैं । परंतु निर्ग्रन्थों की साधना कभी नहीं बदलती । दुनियाँ कहती है महाराज कुछ तो ढ़ील दो, नियम कम, करो । मैंने कहा साधना का मार्ग ऐसा करने पर बिगड़ जायेगा ।

आज साधना के क्षेत्र में जैन धर्म सर्वोच्चता को प्राप्त एक मात्र अपनी उत्कृष्ट चर्या से ही हैं ।

सिर, दाढ़ी, मूँछ के बाल यदि न उखाड़े तो बहु लंबे हो जायेगे ।

गांधी नगर की एक महिला के 5 फीट के बालों वाली महिला होने से सम्मानित किया गया ।

एक व्यक्ति की दाढ़ी जमीन छूती थी उसका नाम गिनीज बुक में लिखा गया था ।

यदि संत बाल न उखाड़े तो बाल बढ़ जायेगे और जीव हिंसा बढ़ जायेगी ।

जैन धर्म चर्चा का नहीं चर्या का धर्म हैं । हमारे निर्ग्रन्थ गुरु चर्या का उदाहरण देते हैं। संतों के प्रवचन/उपदेश दूसरों के लिए नहीं स्वयं के लिए होते हैं ।

उत्तम चर्यावान संत ही एक दिन कर्म क्षय कर परमात्मा बनते है । भगवान को भूतप्रज्ञापन नय से देखे तो वे भी केशलौंच करते थे । जिन्हें हम तीर्थंकर व भगवान के रूप में पूजते हैं ऐसे श्री जिन की जिनालय में प्रतिष्ठा करवाने से बहुत से कष्ट दूर हो जाते हैं ।

''यस्य चित्ते जिनेन्द्राणां भक्तिः संतिष्ठते सदा ।

सिद्धयन्ति सर्वकार्याणि तस्य नैवात्र संशयः ॥534॥

दुनियाँ हमसे आर्शीवाद मांगती है कि महाराज ! हमारा अमुक कार्य हो जाए । कोई मंत्र-यंत्र जंत्र, तंत्र कुछ तो दे दो । आचार्य कहते है मात्र यंत्र रखने से क्या होगा? आस्था, विश्वास, श्रद्धा, भक्ति होनी चाहिए । जिसके चित्त में जिनेन्द्र देव के प्रति भक्ति है । भक्ति बाहर में ही नहीं चित्त में भी हों । हमें तिलक, माला, चोटी में भक्ति नहीं देखना । भक्ति के दर्शन चित्त में हो ।

भक्ति तो हम करते है परंतु चित्त विहार कर जाता है किसी का दुकान चला जाता है किसी का मकान में । लोग कहते है इतनी पूजा-पाठ करता हूँ फिर भी कुछ नहीं होता । कारण है भक्ति का प्रवाह अभी चित्त में नहीं हुआ । बाहरी भक्ति से कार्य नहीं होते ।

मंदिर, गुरुद्वार, वह कारखाना है जहाँ कच्चा माल आता है और बहुमूल्य वस्तु बनकर निकलता है । गुरु चरणों में रोते-रोते आने वाला भी हंसता-हंसता जाता है । भक्ति चित्त में है तो कार्यकारी है । आचार्य सकलकीर्ति महाराज कहते हैं यदि परमात्मा के प्रति चित्त में सच्ची भक्ति है तो सभी कार्य स्वतः हो जाते है एक सेठ मेरे पास रोते-रोते आये बोले- महाराज मुसीबत में हूँ । उपाय बताए- मैंने कहा- भगवान की भक्ति करो । भक्ति से ही सारे कार्य सफल होते है इसमें कोई संशय नहीं हैं। विज्ञान व दार्शनिक कहते है- हमारा यह निर्णय है कि यदि विश्वास है । तो वही विश्वास सफलता दिलाता हैं। जहाँ संशय हो वहाँ सफलता नहीं मिलती । जो सोच ले मैं ऐसा कार्य नहीं कर पाऊँगा वह कभी नहीं कर पाता । परंतु जो दृढ़ संकल्प बना लें कि मैं तो सफल ही होऊँगा वह सफल होकर लौटता है ।

ज्योतिष भी कहता है-

प्रसन्नचित्त से दृढ़ संकल्पित होकर किये गये कार्य के लिए किसी मुर्हूत की आवश्यकता नहीं । हर समय सब कार्य सफल होंगे । पहले सर्वप्रथम आत्म-विश्वास हो । विश्व पर विश्वास बाद में करों पहले अपनी आत्मा पर करों । कोई शेषनाग पर विश्वास करता है तो कोई 10,000 देवों पर विश्वास

करता है पर आत्मविश्वास नहीं कर पाते ।

दुनियाँ शेषनाग पर नहीं विश्वास पर टिकी हैं । परमार्थ पर विश्वास है तभी आत्मसुख मिलेगा ।

भौतिक सुख के पीछे दुःख छिपा होता हैं । सच्चा सुख चाहिए हैं तो आत्म-श्रद्धान प्रकट करो, अपने ऊपर विश्वास करना सीखो ।

तीर्थंकर पार्श्वनाथ व भगवान महावीर के पथ पर बढ़ चलों । तीर्थंकरों का पथ ही सुख का खजाना प्रदान करेगा। हम उसी पथ पर अनुगमन कर आत्म-कल्याण का पथ प्रशस्त करें ।

इसी भावना के साथ- "1008 भगवान महावीर स्वामी की जय"

परम विशुद्धि की याचना-

परपरिणति हेतोर्मोहनाम्नोऽनुभावा-
दविरतमनुभाव्य व्याप्तिकल्माषितायाः ॥
मम परम विशुद्धिः शुद्धचिन्मात्रमूर्ते-
भवतुसमयसार व्याख्ययैवानुभूतेः ॥3॥

अर्थ - आचार्य देव कहते है - कि शुद्ध निश्चय नय की दृष्टि से तो मैं शुद्धचैतन्य मात्र हूँ, किंतु मेरी परिणति मोह कर्म के उदय का निमित्त पाकर मैली है- रागादि स्वरूप हो रही है । इसलिए मैं इस समयसार ग्रंथ की टीका का यह फल चाहता हूँ, कि मेरी परिणति रागादि भावों से रहित शुद्ध हो, मुझे शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति हो । अन्य ख्याति, पूजादि मैं कुछ नहीं चाहता ।

- समयसार कलश

"कर्म सिद्धान्त के दर्पण में"
"पंच संवायों से कार्य सिद्धि"

(प्रवचन नं. 41)

★ प्रत्येक वस्तु अनेक धर्मात्मक होती है एक ही वस्तु में अनेक धर्म पाये जाते है यही अनेकान्त हैं। उस वस्तु में किसी एक ही धर्म का हटाग्रह करना एकांत हैं। एकांत मिथ्या है, अनेकान्त सम्यक हैं।

कर्म सिद्धान्त की जितनी सूक्ष्म विवेचना जैनागम में जैनाचार्यों ने की है उतनी सूक्ष्म विवेचना अन्यत्र देखने को नहीं मिलती । विभिन्न एकांतों में दोलन करता प्राणी समूह वास्तविक स्थिति से अनभिज्ञ ही बना रहता हैं । कोई नियति के हटाग्रह में पड़ा-पड़ा यही सोचता है जो कार्य जब, जिस क्षेत्र में, जिस काल में, जिस समय होना है वह सुनिश्चित हैं हम व्यर्थ में पुरुषार्थ क्यों करें ? स्वर्ग मिलना हमारी नियति में होगा तो अवश्य मिलेगा । और यदि नियति में नरक जाना लिखा हैं तो नरक जाना ही पड़ेगा ।

कोई दूसरे एकांत मती कहते है कि भाग्य में जो लिखा हैं वही मिलेगा । समय से पहले व भाग्य से ज्यादा किसी को कुछ नहीं मिलगा । तो तीसरे एकांतमती कहते हैं । काल लब्धि आयेगी तो सम्यग्दर्शन स्वयं प्रकट हो जायेगा । जब काल-लब्धि आयेगी तो कर्म भी क्षय स्वयं हो जायेगे । चौथा पक्ष कहता है- पुरूषार्थ से सब पलट सकता हूँ । व्यक्ति अपने भाग्य का निर्माता स्वयं हैं । पांचवा पक्ष कहता है- जब योग्य निमित्त मिलेगा तो कार्य स्वयं हो जायेगा अभी योग्य निमित्त नहीं मिल रहा है इसलिए मुझे कार्य में सफलता नहीं मिल रही है हमारे जैनाचार्य गहरे तत्व चिंतक होते हैं । दही के मंथन से जिस प्रकार मक्खन निकलता हैं । वैसे ही वे अपने अथक श्रम रूपी मंथन से तत्व रूपी मक्खन निकालकर हमें परोस देते हैं । पंच संवायों से किस प्रकार कार्य सिद्धि होती हैं उसे हम एक दृष्टान्त से समझेंगे ।

'फ्रूटी आईस्क्रीम' बनाने वाला कोई व्यक्ति उस आईस्क्रीम को Testy बनाने हेतु सबसे पहले दूध को ओटकर गाढ़ा करता है । पश्चात् ठंडा कर उसमें शक्कर मिलाता हैं । फिर अंगूर, अनार के दाने आदि फ्रूट उस दूध में मिलाता है । फिर आईसक्रीम में इलायची डालते हैं पश्चात् एसेंस मिलाकर आईस्क्रीम को colorful सुगंधित बना दिया जाता है ।

अब पांच वस्तुओं को यदि पर्याप्त योग्य मात्रा में न मिलाया जाए तो फ्रूटी आईसक्रीम नहीं बन

सकती है दूध + शक्कर + ईलायची + फ्रूट + एसेंस = फ्रूटी आईसक्रीम । बस इसी प्रकार जहाँ - 1. नियति 2. दैव 3. पुरुषार्थ 4 काल 5. निमित्त।

ये पांच कारण जहाँ एक साथ उपस्थित होते है वही कार्यसिद्धि संभव होती है । ये सभी कारण पृथक्-पृथक् कार्यसिद्धि में समर्थ नहीं होते हैं ।

1. नियति- कार्य का जिस रूप परिणमन होना है वह उसकी नियति है जैसे आम्र के बीज से ही आम्र वृक्ष की उत्पत्ति हो सकती है यह उसकी नियति हैं ।

2. काल- किसी कार्य के होने में जो काल निमित्त बने वही उस कार्य की काललब्धि है ।

3. दैव- अनायास बिना किसी प्रयास के कार्यसिद्धि का होना भाग्य कहलाता हैं ।

एक व्यक्ति को घर बैठै-बैठे ही लाखों का फायदा हो जाता हैं, बिना पुरुषार्थ के अनुकूल सामग्री मिल जाती है ।

4. पुरुषार्थ- अथक परिश्रम करके जो वस्तु का लाभ हो वह पुरुषार्थ हैं ।

जैसे- किसी बच्चे ने दिन रात अध्ययन किया और परीक्षा में वह मेरिट में पास हुआ, यह पुरुषार्थ हैं ।

5. निमित्त- किसी कार्य की पूर्णता में सहकारी सामग्री का योग निमित्त कहलाता है । इसके दो भेद है ।

1. अनुकूल निमित्त 2. प्रतिकूल निमित्त

अनुकूल निमित्त- कार्य को शीघ्र सिद्ध कर देता है ।

2. प्रतिकूल निमित्त- कार्य में विध्न खड़ा करता है ।

एकांत से किसी एक कारण को पकड़ने में दोष-

अब यदि कोई व्यक्ति एकांत से इन कारणों को ग्रहण करता है तो स्वयं बाधित हो जायेगा ।

1. नियति के आग्रही जब जो होना है निश्चित है का दुराग्रह पकड़ पुरुषार्थ विहीन हो जायेगे । जब मोक्ष होना होगा तो हो जायेगा, व्यर्थ व्रत, नियम धारण कर शरीर क्यों सुखाऊँ ।

2. जो व्यक्ति काल लब्धि का दुराग्रह पकड़े हुए बैठा है वह सोचता है जब काल लब्धि आयेगी तो सब काम अपने आप हो जायेगा । काल लब्धि आयेगी तो दीक्षा स्वयं हो जायेगी। इस एकांत को पकड़ने वाला भी अकर्मण्य हो जायेगा ।

3. भाग्य का दुराग्रह पकड़ने वाले चाहे परिस्थिति अनुकूल हो या प्रतिकूल भाग्य भरोसे बैठे-बैठे हाथ में आयी उपलब्धियों को खोते देखे जाते हैं ।

4. पुरुषार्थ मात्र पर भरोसा रखने वाले भाग्य की उपेक्षा कर देते हैं । हम जो करेंगे वही होगा । यदि हम सर्वथा पुरुषार्थ को ही सब कुछ माने तो सत्ता में पड़े शुभाशुभ कर्म की व्यवस्था नहीं बन पायेगी ।

5. निमित्त का दुराग्रह पकड़ने वाले इसी बात को लेकर रोते-धोते देखे जाते हैं कि क्या करुँ कोई अनुकूल निमित्त नहीं मिला इसलिए कार्य नहीं हुआ ।

अब हम इन पांचों संवायों का Inter relation (पारस्परिक संबंधों) को देखेंगे ।

आम के बीज से ही आम का वृक्ष पैदा होगा यह नियति हैं । क्योंकि आम के बीज से किसी भी कीमत पर नीम का वृक्ष पैदा नहीं होता । बीज को हमने खेत में बोया, खाद, पानी दिया वह धीरे-धीरे बढ़ने लगा और वृक्ष बन गया तो उसके बीज से अकुंरण, छोटा पौध फिर धीरे-धीरे वृक्ष बनने तक की प्रक्रिया में जो समय लगा वही उसकी उचित काललब्धि है । उस बीज को बोकर माली ने उसकी बड़ी संभाल की, समय पर खाद-पानी दिया और उसके अथक श्रम से वृक्ष हरा-भरा हुआ यह माली का पुरुषार्थ हैं । उस वृक्ष की वृद्धि में सूर्य का प्रकाश, हवा, बारिश आदि योग्य निमित्त मिले । तथा मालिक के पुण्योदय अर्थात् भाग्य से उस आम्र वृक्ष में सबसे अधिक फल आये ।

कार्य तो मात्र एक बीज से वृक्ष बनने का ही हुआ परंतु उसमें नियति + काल + दैव + पुरुषार्थ + निमित्त पांचों संवायों का समावेश हो गया ।

जैनागम में इन संवायों को कर्म सिद्धान्त से Related बताया गया हैं ।

भाग्य, पुरुषार्थ व कर्म-

भाग्य और पुरुषार्थ का सीधा संबंध कर्म से है । भाग्य का संबंध 1. भूतकाल यानि पूर्व में बांधे हुए उन कर्मों से है, जो वर्तमान में उदय में आ रहे हैं । 2. शेष भविष्य में उदय में आयेंगे ।

पुरुषार्थ का संबंध- 1. वर्तमान में बांधे जाने वाले उन कर्मों से है जो वर्तमान में उनका फल देने वाले हैं

2. कुछ भविष्य में उनका फल देंगे ।

जब भी किसी कर्म का बंध होता है तो वह अपने आबाधा काल के पूर्ण होने पर ही उदय में आता है । आबाधा वह सुनिश्चित समय हैं जिसके पश्चात् वह कर्म उदय में आता है ।

अब उदयागत कर्मो को हम दो विभागों में बांटेगे-

1. अनुकूल कर्म   2. प्रतिकूल कर्म ।

किसी भी कार्य की सिद्धि होने या न होने में चार घटकों का योगदान रहता है ।

1. भूतकाल में बांधे अनुकूल कर्म

2. भूतकाल में बांधे प्रतिकूल कर्म

3. वर्तमान में बांधे अनुकूल कर्म

4. वर्तमान में बांधे प्रतिकूल कर्म ।

यदि अनुकूल कर्मो की शक्ति प्रतिकूल कर्मों की शक्ति से अधिक है तो कार्य की सिद्धि होगी । यदि इसके विपरीत स्थिति है तो कार्य सिद्धि नहीं होगी ।

1. यदि कोई व्यक्ति पुरुषार्थ नहीं करता फिर भी कार्य सिद्धि हो रही हैं तो इसका तात्पर्य यह है कि- पूर्व में बांधे अनुकूल कर्मो की शक्ति बहुत अधिक है तथा पूर्व में बांधे प्रतिकूल कर्मों की शक्ति बहुत कम है । तथा वर्तमान के अनुकूल व प्रतिकूल कर्मो की शक्ति बराबर है । अब बिना पुरुषार्थ के कार्य सिद्ध हो रहा है ।

यानि पूर्व के अनुकूल कर्म जो सत्ता में पड़े है वे उदय में आकर प्रभावी हो रहे हैं ।

2. दूसरा व्यक्ति वह है जो बहुत परिश्रम करता हैं हर संभव प्रयत्न करता है फिर भी कार्य सिद्धि नहीं होती इसका तात्पर्य है कि पूर्व में बांधे अनुकूल कर्मो की शक्ति इस समय क्षीण है । तथा पूर्व में बांधे प्रतिकूल कर्म का तीव्रोदय है तथा वर्तमान में बांधे अनुकूल कर्म की शक्ति क्षीण है । इसलिए सफलता नहीं मिल रही ।

3. तीसरा व्यक्ति वह है जो थोड़ा ही पुरुषार्थ करता है और बड़ी भारी सफलता पा लेता है । इसका तात्पर्य है कि वर्तमान में बांधे अनुकूल कर्म की शक्ति प्रबल व पूर्व में बांधे प्रतिकूल कर्म की शक्ति क्षीण है इसलिए कार्य सिद्ध हो रहा है ।

एक बात यह भी ध्यान रखने योग्य है । कि प्रति समय कर्मो की स्थिति व शक्ति एक सी नहीं रहती, वह सदा बदलती है अतः किसी अमुक समय प्रतिकूल कर्म दिख रहे हों तो हो सकता है कि अगले ही क्षण वे प्रभावहीन हो जायें, तथा थोड़े से ही पुरुषार्थ से कार्य की सिद्धि हो जाये ।

पुरुषार्थ का महत्व-

1. कर्म के मंदोदय में पुरुषार्थ कार्यकारी होता है तीव्रोदय में नहीं यह सत्य हैं । इसलिए समय अनुकूल हो इस बात की इंतजारी करना महत्वशाली है ।

जब कर्म प्रतिकूल हो तब पुरुषार्थ करने पर भी सफलता नहीं मिलती । जब कर्म अनुकूल होता है तब किया गया पुरुषार्थ कार्य सिद्धि में हेतु बन जाता है । परंतु एक खास बात यह है कि निरंतर पुरुषार्थ करते रहने वाले को कभी न कभी सफलता अवश्य मिलती है कभी-कभी किया गया प्रबल पुरुषार्थ स्वयं प्रतिकूल कर्मो के लिए बड़ी बांधा बनकर खड़ा हो जाता है और प्रतिकूल कर्म अपना

प्रभाव दिखाये बिना ही नष्ट हो जाता है इसे ही अविपाक निर्जरा कहते हैं ।

अतः भाग्य में जो है, जितना है वह तो मिलेगा ही लेकिन यदि साथ में पुरुषार्थ भी करेंगे तो और अधिक मिल जायेगा ।

पुरुषार्थ कुछ नया करने, कुछ नया पाने की प्रेरणा देता है । भाग्याधीन होने से जो कार्य होते-होते भी रह जाते है वे ही कार्य पुरुषार्थ से सिद्ध होते देखे जाते है । पुरुषार्थ बुद्धिगम्य होता है जबकि भाग्य अबुद्धि गम्य । आप्तमीमांसा में आचार्य समंतभद्र महाराज ने कहा है-

अबुद्धि पूर्वापेक्षायामिष्टानिष्टं स्वदैवतः ।

बुद्धि पूर्वापेक्षायामिष्टानिष्टं स्वपौरुषात् ॥

अबुद्धि पूर्वक होने वाले व मिलने वाले कार्य व कारण सदैव भाग्य से होते है तथा बुद्धिपूर्वक किये जाने वाले इष्ट अनिष्ट कार्य व कारण पुरुषार्थ से होते हैं ।

अतः कहने का तात्पर्य यही हैं कि बुद्धिपूर्वक तो हमें निरंतर पुरुषार्थ में लगे ही रहना चाहिए । पुरुषार्थी की नियम से विजय होती हैं । वही निर्माण से निर्वाण की यात्रा को सुगम बना पाता हैं ।

पाँचों संवायों के योग से कार्य संपादित होता है । इस अकाट्य सत्य को अपनी मति में स्थापित कर हमें मिथ्या एकांत मतों का निरसन कर अपनी दृष्टि को सम्यक बनाना चाहिए ।

इसी भावना के साथ- "1008 महावीर भगवान की जय"

In life when you get troubles - Don't get nervous.....

Just close your eyes

And follow your heart.....

Because heart may be in left.....

But it is always right.

"दही भक्ष्याभक्ष्य विचार" (दही की मर्यादा)

(प्रवचन नं. 42)

★ *जैसा खाओगे अन्न, वैसा होगा मन ।*
जैसा पिओगे पानी, वैसी होगी वाणी ।

★ *जीवन कुछ भी खाने के लिए नहीं अपितु विवेकपूर्ण ढंग से खाने के लिए मिला हैं ।*

दूध से दही बनने की प्रक्रिया में कुछ लोगों में यह भ्रांति व्याप्त हैं कि बिना जीव पैदा हुए दूध से दही नहीं बनता । परंतु यह बात किस हद तक सत्य है इसे जानने के लिए हम आगम और विज्ञान दोनों दृष्टियों से समझने का प्रयास करेंगे ।

वैज्ञानिक दृष्टि से- दूध में लैक्टोज व ग्लूकोज नामक शर्कराए पायी जाती हैं । जब दूध में कोई खट्टा पदार्थ डाला जाता हैं । तो दूध में उपस्थित लैक्टोज व ग्लूकोज शर्कराओं के अणु Glycolysis (ग्लाइकोलिसिस) द्वारा Pyruvic acid बनाते हैं जो अपचयित होकर लेक्टिक एसिड बनाता हैं । इसीकारण दूध में खट्टापन आने लगता है । जिससे दूध के प्रोटीन और फैट(वसा) तत्त्व अवक्षेपित होकर दही के रूप में जम जाते हैं । इस दही की मर्यादा अधिकतम 24 घंटे की होती है । इस अवधि के बाद दही में अन्य कई प्रकार के जीवाणु क्रियाशील हो जाते हैं अर्थात् जैसे- जैसे खट्टापन बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे बेसिलस, क्लोस्टिडियम, स्यूडोमोनास, प्रोटियस आदि जीवाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ती जाती है और अल्कोहल का निर्माण प्रारंभ हो जाता हैं ।

हमारा जिनागम भी यह स्वीकार करता हैं । कि 24 घंटे की मर्यादा के भीतर-भीतर का दही भक्ष्य हैं । उसके बाद उसमें असंख्यात जीव गुणित क्रम से उत्पन्न होते है जो दही के खट्टेपन को बढ़ाते हैं । और मर्यादा के बाहर का दही खाने योग्य नहीं रहता । जिनागम में घी, दूध और दही इन तीनों को गोरस माना गया है । तथा दूध दुहने के उपरांत उसे तुरंत लगभग 48 मिनिट के पहले-पहले छानकर गर्म कर लेना आवश्यक बताया है । इसी मर्यादा के भीतर गर्म किया दूध व उसी से निर्दोष रूप से तैयार किया गया दही,मक्खन, पनीर, खोवा और घी आदि खाने योग्य हैं ।

दूध और दूध से निर्मित सभी पदार्थों मे जीवाणुओं का प्रभाव अतिशीघ्र होता है । साइक्रोफिकलिक, मीजोफिलिक, थर्मोफिलिक और थर्मोड्यूरिक - इन चार वर्गो के सूक्ष्म जीवाणु इन पदार्थो को शीघ्र ही दूषित कर देते हैं । अतः इन पदार्थों को एक निश्चित समयावधि तक ही खाने

योग्य माना गया हैं ।

अब दही बनाने की विधि जिनशासनानुसार- पूर्व में जमाए हुए दही को सुखाकर उससे नया दही बनाया जा सकता है । या पूर्व में जमाए गए दही में थोड़ी देर के लिए नारियल का ऊपरी छिलका(नरेट्टी) संगमरमर का छोटा सा टुकड़ा या चांदी का सिक्का डालकर निकाल लिया जाता है और उसे धोकर सुखाकर नया दही जमाने के लिए दूध में डाला जाए तो ऐसा दही भी निर्दोष माना गया है । पहले से बने दही को दूध में डालकर नया दही जमाये तो वह अभक्ष्य होगा । क्योंकि कुछ समय बाद उसमें Pyruvic acid बन जाता है । जो Alcohal में convert हो जाता है ।

दूध से दही बनते की क्रिया किण्वन या खमीरीकरण की क्रिया कहलाती है इस प्रक्रिया में जब तक की Alcohol नहीं बना तभी तक दही को खाद्य माना गया है, यही दही की मर्यादा है इसके उपरांत वह अभक्ष्य हो जाता है । दही के भक्ष्याभक्ष्य की सारी मर्यादा को जैसा जैनाचार्यों ने कहा है वैसा ही वैज्ञानिकों ने भी स्वीकारा है ।

दूध में बादाम डालकर भी दही बनाया जाता हैं ।

दूध से दही बनना एक जैविक क्रिया है । यह असत्य है वह जैविक नहीं, रासायनिक क्रिया हैं ।

जिसमें-

$$C_6H_{12}O_6 + C_6H_{12}O_6 \xrightarrow{\text{Glycolysis}} (C_6H_{12}O_6)_2$$

Glucose Fructose Pyuvic acid

Lactic acid

इस रासायनिक प्रक्रिया से बना दही 24 घंटे तक भक्ष्य है । उसके उपरांत Alcohol Formation होने से अभक्ष्य है ।

इससे सिद्ध हो जाता हैं कि मर्यादा के भीतर (24घंटे) का दही भक्ष्य व मर्यादा के बाहर का अभक्ष्य है ।

" जय बोलिए 1008 महावीर भगवान की जय"

भक्ष्य - वह पदार्थ जो खाने योग्य हैं । जीव राशि से रहित हैं ।

अभक्ष्य पदार्थ - वह पदार्थ जो खाने योग्य नहीं हैं । जीव राशि से सहित हैं ।

भक्ष्य पदार्थ बुद्धि में अतिशय उत्पन्न करते हैं । जबकि अभक्ष्य पदार्थ बुद्धि को भ्रष्ट करते हैं ।

"अंत भला सो सब भला"

(प्रवचन नं. 43)

★ *धर्म ही साधक के प्राण होते हैं। अतः विषम परिस्थितियों के आने पर सच्चे साधक अपने रत्नत्रयधर्म के रक्षार्थ प्राणों का विसर्जन हंसते-हंसते कर देते हैं।*

"गायत्री-नगर"

प.पू. आचार्य भगवन् पूज्यपाद महाराज कहते है- सम्यक् प्रकारेण काय, कषायं, कृषं करोति इति सल्लेखना । सम्यक् प्रकार से शरीर व कषायों का क्रम-क्रम से क्रश करना सल्लेखना कहलाती हैं ।

श्रावकों के 12 व्रतों में 4 शिक्षाव्रतों में एक सल्लेखना व्रत हैं । उमास्वामी महाराज कहते है-

"मारणान्तिकीं सल्लेखना जोषिता"।

मरण समय निकट आने पर प्रीति पूर्वक सल्लेखना धारण करना चाहिए ।

उत्कृष्ट रूप से 8 वर्ष अंतरमुर्हूत कम 1 पूर्व कोटि वर्ष तक सल्लेखना व्रत चल सकता है । साधना के पथ पर लगा साधक भावना भाता है-

दिन रात मेरे स्वामी मैं भावना ये भाऊँ ।
देहान्त के समय में तुमको न भूल जाऊँ ॥

ऐसी भावनाओं से तीर्थंकर प्रकृति का भी बंध होता है भक्तप्रत्यख्यान सल्लेखना 12 वर्ष की होती है । जो साधक ज्ञान रखते हैं वे 12 वर्ष की सल्लेखना ले लेते है अथवा आचार्य गण ज्योतिष, लक्षण शास्त्र आदि के माध्यम से अंतिम समय की निकटता देख साधक को 12 वर्ष की सल्लेखना दे देते हैं । यद्यपि मनुष्य व तिर्यंचों का कदलीघात संभव है । इसलिए रत्नकरण्डक श्रावकाचार में आचार्य संमतभद्र महाराज कहते हैं-

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रूजायां च निः प्रतीकारे ।
धर्माय तनु विमोचन माहुः सल्लेखना मार्याः ॥

यदि कोई ऐसा उपसर्ग आ जाए कि प्राणों की रक्षा संभव ही न हो । तिर्यंचकृत उपसर्ग हो, पहाड़ आदि से गिर जाने पर साधक सल्लेखना धारण करता है । रोग बीमारी, वृद्धावस्था हो, दुर्भिक्ष/ अकाल पड़ जाये तो धर्म की रक्षार्थ शरीर का बुद्धि पूर्वक त्याग करना सल्लेखना है ।

सल्लेखना दो प्रकार की होती है ।

1. नियम 2. यम

उपसर्ग आदि आने पर प्रथम तो नियम सल्लेखना ली जाती है । बचने का कोई अवसर न हो तो यम सल्लेखना धारण कर ली जाती है ।

जिस प्रकार किसी महल में आग लग जाए तो राजा कीमती वस्तु रत्न, ताज, सिंहासन आदि शीघ्र बाहर निकाल लेता है । बाकी जलना ही है । उसी प्रकार साधक असाध्य रोगादि कारणों के उपस्थित होने पर रत्नत्रय स्वरूप धर्म की रक्षा के लिए, व्रत, नियम, संयम की रक्षा के लिए सल्लेखना ले लेते है ।

''अंत भला तो सब भला'' इसलिए पंचपरमेष्ठियों का स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग-कर देता है । अशुभ आयु के बंधक के परिणाम अंत में नियम से बिगड़ते ही है ।

व्रत, नियम, संयम की रक्षा का भाव शुभ आयु के बंधक को होता है ।

यदि आयु बंध नहीं हुआ तो प्रशस्त परिणाम रखने से शुभ आयु का बंध होगा ।

आम लोगों की धारणा है कि यह तो आत्महत्या है । परंतु आत्म-हत्या व सल्लेखना में अंतर है । एक कषायावेश में, संक्लेश परिणामों से मरण को प्राप्त होता है तो दूसरा निर्मल मंद कषाय रूप परिणामों से मरता है । इसलिए समाधी मरण केवल मृत्यु नहीं अपितु मृत्यु-महोत्सव है । उत्कृष्ट सल्लेखना से मरण को प्राप्त साधक 3-4 भव में व जघन्य से 7-8 भव में निर्वाण को पाता है ऐसे महोत्सव को देखने का सुअवसर पुण्योदय से होता है ।

मुनिश्री विश्वेश सागर जी सहज, सरल प्रकृति के संत थे । गांधी नगर में वे हमारे पास आये । दीक्षा का पूर्वाभ्यास चल रहा था । उन्होंने भी प्रार्थना की, कि मैं भी दीक्षा लूंगा । मुनि विश्वयश सागर जी के पास से वे ब्रह्मचारी बनकर आये थे । वे बोले महाराज दीक्षा दे दीजिए । प्रार्थना जारी थी । मैंने उनकी सरलता, भक्ति को देख होने वाली 7 दीक्षाओं में 1 नाम उनका भी जोड़ दिया था ।

कुल 8 दीक्षायें तब गांधी नगर में हुई । उन्हें हमने विश्वयश सागर जी के पास भेजा था । वहाँ कर्मोदय वशात् उन्हें लकवा लग गया । विश्वयश सागर जी घबराये मैंने कहा- चिंता मत करिये । मेरे पास भेज दीजिए, मैं संभालूगा । लोगों ने इलाज हेतु दीक्षा छेद करने कहा परंतु वे व्रत, नियम, में मजबूत रहे । मनोज भैय्या जो हमारे यहाँ पानी भरता था ने सेवा का कार्य विशेष रूप से संभाला । यद्यपि महाराज लोग भी सेवा करते थे । वे समता परिणामी थे । एकांत वास पसंद था । इतनी तकलीफ होने पर भी चीख नहीं, संक्लेशता नहीं । भट्टारक जी की नसिया में Sugar के कारण बेड़ सोल व Sugar 338 हो गया । साथ ही infection हो गया । दूसरे दिन 50 हो गई । 1 घंटे बाद

110 हो गई । Sugar lmbalance थी । वैद्य जी से पूछा- उन्होंने औषधी भेजने कहा । दवा कड़वी थी- उन्होंने नहीं ली । घाव बढ़ते जा रहे थे ।

आयु को कोई नहीं देख पाता कब अंतिम क्षण आ जाए इसलिए मैंने सभी को सावधान किया । महाराज लोग सेवा में संलग्न हो गये । मैंने कहा एक पल भी इन्हें अकेले न छोड़े । विश्वस्त सागर जी, विभास्वर सागर जी व विश्वमित्र सागर जी उनकी सेवा व्यवस्था में थे वे उन्हीं के कमरे में ठहरे । प्रातः काल 5 बजे तक सचेत थे सामायिक आदि करवायी फिर ठंड लगी तो चटाई उड़ा दी गई ; हालत क्षीण थी । इसलिए मुझे बुलाया गया । 5.45 पर मैं आया, स्थिति गंभीर थी इसलिए उनकी भावना के अनुरूप उन्हें महाव्रत दे दिये व दिगंबर मुनि बना दिया चारों प्रकार के आहार के त्याग के साथ यम सल्लेखना दी ।

वे दीक्षा पाकर बहुत खुश हुए । मेरे चरण छूने तत्पर रहते थे । रात्रि में सेवा करने मुनि विवर्धन सागर जी पहुँचे तो उन्हें अपने पास बिठा लिया व पाठ सुनाने कहा । इतनी तकलीफ होने पर भी वे कराहे नहीं समता से कष्ट सहा ।

प्रसन्नता पूर्वक सल्लेखना धारण करने वाले मुनि विश्वेश सागर जी अवश्य देव हुए होंगे । उनके प्रति यही भावना भाते है कि वे पंचकल्याणकों में जाकर भगवत् भक्ति करें पुनः मनुष्य पर्याय धारण कर मुनि बने व कर्मो का क्षय कर वे निर्वाण प्राप्त करें ।

इसी पुनीत भावना के साथ- ''1008 महावीर भगवान की जय''

- जीवन में धन-संपदा, स्त्री, पुत्र, कुटुम्बादिक का पाना आसान है परंतु एक धर्म को पाना दुर्लभ हैं ।
- जो जीवात्मा अपने जीवन को धर्म साधना में लगा अंतिम समय में सल्लेखना/समाधि पूर्वक मरण करते हैं । स्वर्ग के देव भी उनके चरणों में नतमस्तक होते हैं ।
- ''अंत भला तो सब भला'' जीवन की अंतिम घड़ियों में मोह, राग-द्वेष का त्याग कर, पंचपरमेष्ठियों के स्मरण पूर्वक देह का विसर्जन करना श्रेष्ठ विज्ञान हैं ।

"आस्था से जगता धर्म आत्मा मे"

(प्रवचन नं. 44)

★ *एक जलता हुआ दीप हजारों बुझे दीपकों को जला देता हैं।*

★ *एक सच्चा धर्मात्मा अपने आचरण की सुगंध से अनेको को धर्म मार्ग पर लगा देता हैं।*

गायत्री नगर जयपुर

जीवन को विकसित करने वाला, उन्नतिशील बनाने वाला, शांति की ओर ले जाने वाला, जीवन को प्रशस्त बनाने वाला ज्ञान है । ज्ञान हो तो श्रद्धा मझती है ।

आत्मा को धर्म से कैसे जोड़े ? धार्मिकता का विकास कैसे हो ? मात्र चावल चढ़ाने से, माथा टेक लेने से धर्म का विकास नहीं होता । धर्म जब तक अंतरात्मा में नहीं उतरता तब तक विकास संभव नहीं । श्रद्धा हो तो धर्म अंतर में उतरता है । श्रद्धा ही वह खेवटिया है जो भव सिंधु पार लगाता है । श्रद्धा अंक है यदि जिनवाणी, धर्म या गुरुओं के प्रति आस्था न हो तो प्रदर्शन संभव है अंतर दर्शन नहीं । श्रद्धा अंतरात्मा से हो । बाहरी नहीं ।

यदि श्रद्धा आत्मा से जगी है तो दर्शन में आनंद आयेगा । किसी के कहने से जबरदस्ती प्रेरणा से आये तो क्रियाओं तो होगी परंतु आत्मा धर्म से नहीं भींग पायेगी । वह सूखी ही रह जायेगी । मंदिर जाने का अभ्यास बनाया यह तो ठीक है । परंतु अपने कदमों को कुछ और आगे बढ़ाइए ।

छोटे-छोटे बच्चे स्कूल में पास होने के लिए मंदिर जाते है, कोई व्यापार के निमित्त जाता है । परंतु जाता तो है । प्रायः नर्सरी में बच्चों को भेजने लड्डू, टॉफी का लालच देना पड़ता है । परंतु कुछ समय बाद वह बिना लालच के स्कूल जाना सीख जाता है । वैसे ही प्रारंभिक दशा में गुरुजन भक्तों को भगवान के चरणों में लाने नियम दिला देते हैं । फिर कहते हैं अपनी द्रव्य चढ़ाओं, इतने से काम नहीं चलेगा कायोत्सर्ग व स्तुति भी पढ़ो । धीरे-धीरे क्रम-क्रम से वह सीढ़िया चढ़ता जाता है । फिर गुरुजन धीरे-धीरे उसे लौकिकता से हटा आध्यात्मिकता की ओर पहुँचाते है, कहते है - मात्र इतने से काम नहीं चलता मात्र बाह्य क्रियाकांड पर्याप्त नहीं । मंदिर आना केवल महत्वशाली नहीं । मंदिर में मन से आईये, अपने निजी स्वार्थों की सिद्धि के लिए नहीं । क्योंकि जहाँ लौकिक प्रयोजन से परमात्मा की पूजन भक्ति की जाती है वहाँ परमार्थ की सिद्धि नहीं हो पाती । आप साल भर मंदिर गये मूर्ति के दर्शन तो किये परंतु मूर्तिमान को नहीं देख पाये तो कुछ लाभ नहीं । स्वाध्याय तो

प्रतिदिन सुना , पूजन की, परंतु मन घर के कार्यो में लगा है तो कोई लाभ नहीं ।

जिस प्रकार Connection wire से न हो तो लट्टू जलता नहीं । Current flow हो तो लट्टू जले ।

व्यक्ति कहते है मैं तो रोज 2 घंटे तक मंदिर में बैठता हूँ । 2 घंटे में मन कितने क्षण मंदिर में रहा यह Point महत्वशाली है । आत्मा को धर्म से भींगना चाहिए । जब धर्म अंतरात्मा में उतरता है तो संसार रंगमंच की तरह दिखता है ।

जीवन के वे ही क्षण सार्थक है जबकि अंतरभासना हो । अंतर मन से किया दर्शन वास्तविक दर्शन है । श्रद्धा रहित दर्शन प्रदर्शन है । तथा श्रद्धा के साथ किया दर्शन अंतर दर्शन है । श्रद्धा के दर्पण में किया दर्शन आत्म दर्शन करा देता है ।

दर्शन स्वर्ग सोपान व मोक्ष का साधन तब बनेगा जबकि हम दर्शन अंतरात्मा से करें । श्रद्धा से किया दर्शन आत्मशांति, आत्मानंद देगा ।

जिसकी स्वयं की आत्मा धर्म से भींगी होती है वही सच्ची धर्म प्रभावना कर सकता है । बाहर के मंदिर निर्माण के साथ-साथ मन के मंदिर का निर्माण भी होना चाहिए ।

शास्त्र स्वाध्याय, चार लाईने पढ़कर मात्र नहीं अपितु चिंतन, मंथन, मनन के रूप में करना चाहिए । चिंतन, मंथन हुआ है तो आचरण रूप मक्खन अवश्य निकलेगा । भगवान महावीर कहते है- यदि अंतर में परिवर्तन आ रहा है तो समझो धर्म तुम्हारे अंदर उतर रहा है ।

जीवन में मन को बदलने का प्रयास करें, अंतरात्मा में परिवर्तन लाये । एक जला हुआ दीप हजारों बुझे दीपकों को जला सकता है । एक धार्मिकता से ओतप्रोत आत्मा अपने परिवेश को भी धार्मिक बना देता है उसके धर्माचरण की सुगंधि सर्वत्र फैल जाती है ।

अमितगति श्रावकाचार में सम्यग्दृष्टि के 8 गुण गिनाये है ।

संवेग, निर्वेग, आस्तिक्य, अनुकंपा, प्रशम, आलोचना, निंदा, गर्हा ।

संवेग- धम्मो धम्म फलम्मि य हर्षो भावो य होई संवेगो ।

धर्म धारण कर यदि हर्ष हो रहा है तो आप सम्यग्दृष्टि है ।

यदि आलू का त्याग सिरदर्दी लगे तो वास्तविक त्याग नहीं हुआ ।

लोग 1 महिने का त्याग कर दिन गिनते है पर्यूषण पर्व समाप्त होते ही लोगों की भीड़ चाट के ठेलों पर नजर आती है तात्पर्य है त्याग का आनंद नहीं आया । राग रूप परिणाम रहे इसलिए धर्म का वास्तविक फल नहीं मिला ।

आत्मा का वास्तविक धर्म हर्ष, आनंद उत्पन्न करता हैं ।

गुरुजन निरंतर सत्यधर्म का मार्ग दिखाते हैं। उस मार्ग पर चलने वाले सौभाग्यशाली हैं । जो नहीं चल पाते उन्हें धार्मिक व्यक्ति प्रेरणा देते हैं । आप मेरे साथ महाराज के दर्शन को चलिए । यह संवेग भाव है । जो स्वयं भी जा रहा है और इष्टमित्रों को ले जा रहा है । धर्म के पथ पर स्वयं बढ़ रहा है औरों को बढ़ा रहा है वही सम्यग्दृष्टि हैं ।

धर्मायतनों की सेवा, भक्ति के भाव तभी होते है जबकि धर्म अंतरात्मा में जगे ।

इसलिए साधु संतों की सेवा करके अपना सौभाग्य जगाइए ।

इसी भावना के साथ- ''1008 महावीर भगवान की जय''

मिथ्यादर्शनादि मोक्ष का उपाय नहीं-

तत्त्रयं च न मोक्षार्थमाप्ताभासादिगोचरम् ।

ध्यातो गरुडबोधेन न हि हन्ति विषं बकः ॥23॥

अर्थ - जैसे सर्प का विष 'गरुड़' के ध्यान करने से ही नष्ट होता है, बगुले को गरुड़ मानकर उसका ध्यान करने से विष दूर नहीं होता, वैसे ही मिथ्यादेव, मिथ्याशास्त्र और कल्पित पदार्थों की श्रद्धा करने वालों को मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र से दुःखमय संसाररुपी विष को नष्ट नहीं किया जा सकता अर्थात् मिथ्यादर्शनादि मोक्ष का उपाय नहीं हैं ।

- क्षत्रचूड़ामणी

"हमें गौरव है हमारे धर्म पर"

(प्रवचन नं. 45)

> ★ *धर्म को पाना सौभाग्य है, धर्म को पाकर आत्मोन्नति के पथ पर बढ़ जाना महाभाग्य हैं।*
>
> ★ *उत्तम परिणामों से उत्तम कुल की प्राप्ति होती हैं।*

यह हमारा परम सौभाग्य है कि हमें जिन कुल मिला । इस धर्म को पाकर कितनों ने निर्वाण पाया है । इस पवित्र जैन धर्म की जितनी भी महिमा गायी जाये वह कम ही हैं ।

(1) विदेशी जैकोबी विद्वान ने कहा कि- मेरा जन्म जब भी हो जैन धर्म में हो ।

(2) हमारे देश के नेता लोकमान्य तिलक ने कहा- हमारा जिन धर्म सार्वभौमिक धर्म है ।

(3) राजेन्द्र प्रसाद जी ने कहा है-

जैन दर्शन की अहिंसा सार्वभौमिक हो जाए तो निरंतर देश प्रगति करेगा ।

राजनेता, दार्शनिक, विद्वान सभी ने जिन धर्म की महिमा को गाया है ।

हिंदु साधु शिव राम जी जिनके 500 अनुयायी थे । वे मेरे पास तमिलनाडु में आते थे । वे कहते थे जिनधर्म श्रेष्ठ व महान धर्म है । यही मुक्ति दिला सकता है । छोटे-छोटे बच्चें जब तीर्थंकर भगवंतों का नाम सुनाते है तो मुझे खुशी होती है । बच्चे भी अभक्ष्यों का त्याग करते हैं । तो प्रसन्नता होती है । धर्म से ही आत्महित संभव है । यह बात अलग है कि हम उसका महत्व नहीं समझ पाते है । आज मंदिर व मूर्तियों की कमी नहीं हैं । कमी विवेक व ज्ञान की हैं । हमारा धर्म ज्ञान की कमी के कारण अधिक ऊँचाई पर नहीं पहुँच पा रहा । यदि किसी से पूछो कि भगवान महावीर स्वामी के पिता का नाम क्या है ? तो उत्तर मिलता है मालूम नहीं । बच्चों का नन्हा दिमाग बहुत कुछ जानना चाहता हैं परंतु जब आपको ही अपने धर्म का ज्ञान नहीं तो आगामी पीढ़ी को आप क्या दे पायेंगे ।

ज्ञान का दीप घर-घर में प्रज्जवलित होना चाहिए । जैसे बच्चे देश की ध्वज लेकर 15 अगस्त को आगे बढ़ते है । वैसे ही हर एक प्राणी के हाथ में जिनधर्म की ध्वजा फहरानी चाहिए ।

हम मात्र महावीर भगवान को चावल चढ़ा कर ही संतुष्ट न हो पूजन करके ही संतुष्ट न हो बल्कि उनके वास्तविक स्वरूप, परिचय को पहचाने जाने ।

पशुओं में भी देखा जाता है । हजारों पशुओं की भीड़ में भी गाय का बच्चा अपनी माँ को, पहचान लेता है । और दौड़ कर अपनी माँ के पास पहुँच जाता है उसी प्रकार हम भले संसार की भीड़

में रहे परंतु हमारी दौड़ परमात्मा की ओर हो । हम जो भी दौड़ लगाते है वह बाहर-बाहर में होती है । मंदिर तो जाते है परंतु कारण मालूम नहीं । किसी बच्चे से पूछो बेटा ! मंदिर क्यों जाते हो । तो कहेगा- मैं जैन हूँ इसलिए जाता हूँ । अथवा मैंने नियम लिया था उसकी पूर्ति के लिए जाता हूँ । अथवा मेरा स्वास्थ्य ठीक रहे, व्यापार चले इसलिए जाता हूँ ।

"Many man many mids"

सबके अपने-अपने विचार है । परंतु इतना ही पर्याप्त नहीं है । अपितु कार्य का Perfect Reason मालूम होना चाहिए ।

जिनवाणी वह प्रकाश स्तम्भ है जो राह दिखाती है । जब अंतरात्मा में श्रद्धा जगती है । तो धर्मायतनों को पाकर हर्ष होता है ।

जिनवाणी मंदिर जाने के रहस्यों को खोलती है । जिनकी श्रद्धा सच्ची है जिसके हृदय में आस्था का दीप जल गया है । उसे हर जगह परमात्मा नजर आते है ।

तुलसीदास जी कहते है-

हर प्राणी में मुझे राम नजर आते है आचार्य कुंदकुंद देव कहते है- समयसार में 'अप्पा सो परमप्पा' आत्मा ही परमात्मा है । हर प्राणी में भगवत् शक्ति विराजमान है ।

आचार्य उपाध्याय व साधु को तो चलते-फिरते सिद्धों सम कहा जाता है ।

आचार्य कुंदकुंद देव मूलाचार ग्रंथ में कहते है-

भिक्खं वक्कं हिययं जो

जो साधु सावधानता पर्वूक आहार करता है बोलता है व जिनका हृदय सरल है वे साधु जिनशासन में भगवान कहे जाते है ।

जब हम परमात्मा की मूर्ति को निहारते है तो किसी की दृष्टि धातु या पाषाण पर होती है किसी की दृष्टि सुंदरता पर होती है । परंतु कोई मूर्ति में मूर्तिमान को देख लेता है । आचार्य कुंदकुंद देव को हर आत्मा में परमात्मा नजर आ रहे है यह उनकी उत्कृष्ट दृष्टि है । आचार्य विमल सागर जी जब सोनागिरि में थे तब पत्थर की शिलाओं में भी उन्हें भगवान नजर आते थें ।

कहने का तात्पर्य है कि दृष्टि को हम इतना पावन बना ले कि हमें धर्म दिखे । धर्म की इबारतों को हम अपने हृदय में उतार लें । तभी जिनकुल पाना सार्थक है । यदि धर्मामृत पान करने का अवसर मिले तो चूंकना नहीं चाहिए । और दूसरों को भी उस धर्म से अवगत कराना चाहिए । यही मानव जीवन व धर्म को पाने की उपलब्धि है ।

"दीक्षा कोई खेल नहीं"

(प्रवचन नं. 46)

★ जहाँ पर सारी इच्छाओं का विसर्जन कर दिया जाता है और एक मात्र अपनी आत्मा के हित व कल्याण का लक्ष्य शेष रहता है वही है "दीक्षा"।

दीक्षा का अर्थ है- जहाँ सारी इच्छाएँ विसर्जित कर दी जाती है । अब हमारी कुछ इच्छा शेष नहीं । संसार से भयभीत भक्त संत के चरणों में पहुंचा, दीक्षा की याचना की । संत ने पूछा- दीक्षा क्यों चाहिए । वह बोला- प्रभावना करूंगा, ये करूंगा, वो करूंगा, मंदिर, धर्मशाला बनबाऊँगा । गुरु बोले- दीक्षा नहीं दे सकता । वह बोला- विधान, पंचकल्याणक करूंगा । दीक्षा नहीं दे सकता । वह पुनः बोला- जगत के प्राणियों का हित करूंगा, दीक्षा नहीं दे सकता वह बोला- ठीक है गुरुदेव आपकी पुस्तके लिख दूंगा, गुरु बोले- दीक्षा नहीं दे सकता । अंत में वह बोला- गुरु जी मैं थक गया अब तो मेरी कुछ इच्छा ही नहीं रहीं । गुरु बोले- तुझे दीक्षा दी जायेगी ।

दीक्षा कल्याणक यानि तप कल्याणक

"इच्छा निरोधस्तपः" जहाँ इच्छाओं का निरोध हो जाता है वही से दीक्षा प्रारंभ हो जाती है । शिष्य की इच्छाओं की परीक्षा गुरु करते है । गुरु कहते है तुझे क्या-क्या खाना पसंद है उत्तर मिलता है- कुछ नहीं, कहाँ घूमना है ? कहीं नहीं । गुरुजन परीक्षा में उत्तीर्ण को ही दीक्षा देते हैं ।

दीक्षा, शादी या विवाह की तरह है । जिस प्रकार सौभाग्यशाली का पुनः विवाह नहीं होता है । जिस घर में डोली पहुँची अब यहाँ से अर्थी ही निकलेगी । उसी प्रकार दीक्षा लेने वाला मुमुक्षु प्राण देकर भी प्रण की रक्षा करता है ।

"खेल-खेल में दीक्षा हो सकती है । परंतु दीक्षा में खेल नहीं होता ।

खेल-खेल में श्वांग रचाओ, जिनमत की दीक्षा धारी ।

बह्मगुलाल ने खेल-खेल में दीक्षा धारी थी ।

बह्मगुलाल बहुरूपियाँ था वह नाना रूप बना लोगों का मनोरंजन करता था । एक दिन राजा ने कहा तुम शेर का रूप धारो । वह बोला- शेर खूंखार होता है राजा बोले तुम बनो तुम्हें 1 खून माफ करता हूँ । ब्रह्मगुलाल ने 7 दिन का समय मांगा । वह एक हफ्ते में सिंह बना गया, राज सभा ठसाठस भरी थी। राजा के पुत्र ने सिंह का पराक्रम देखना चाहा । सिंह ने पुत्र को दहाड़ा व झपटा, डर के कारण पुत्र की मृत्यु हो गयी । पुत्र की मृत्यु से राजा दुःखी हुआ परंतु अभय तो पहले ही दे

दिया था । राजा दुःखी था अतः बह्मगुलाल से मुनिवेश धारण करने कहा । बह्मगुलाल ने मुनिवेश धारण कर लिया उपदेश दिया, राजा को वैराग्य हो गया । राजा ने बह्मगुलाल को पुनः वेश बदलने कहा परंतु बह्मगुलाल ने कहा आज तक जितने वेश धारे वे तो बदले जा सकते है परंतु निर्ग्रन्थ वेश एक बार धारण कर छोड़ा नहीं जा सकता ।

दीक्षा स्वेच्छाचारी के लिए नहीं, साधना के लिए दी जाती है । दीक्षा मोक्ष की कुंजी है । गुरु ही दीक्षा देते हैं । अतः साहित्यकारों ने गुरु उपकार की बड़ी महिमा गायी है । शिष्य जितना भी ऊँचा उठ जाये, सारी कृपा गुरु की होती है । जो गुरु दीक्षा न देते तो परमार्थ की प्राप्ति नहीं होती । इतने ऊँचे नहीं उठ पाते । गुरु के उपकारों को नहीं भूला जा सकता ।

कृतज्ञ उपकारों को नहीं भूलता ।

न हि कृत मुपकारः साधवः विस्मरन्ति ।

सज्जन उपकारों को नहीं भूलते ।

कृतध्न उपकारों को भूल जाते है ।

आज के दिन गुरुवर ने संस्कार देकर रत्नत्रय निधि प्रदान की थी । एक माँ की तरह चलना सिखाया । संबल, साहस, शिक्षा व प्रोत्साहन वे देते रहे । आज गुरुवर के उपकारों का स्मरण करते हुए भावना भाता हूँ- कि हे गुरुवर आपके आज्ञा, आदेश में सदा रहूं व जो दिशा आपने दिखायी है वह मेरा शृंगार गले का हार बने । आपका संबल तब तक मिले जब तक निर्वाण न हो जाए ।

हम लोग हर प्रश्न गुरुदेव से करते थे । व गुरुदेव हर प्रश्न का उत्तर देते थे । लोगों ने कहा आपका मुनि दीक्षा दिवस है मैंने कहा- नहीं, आज मेरे गुरुवर ने मुझ पर उपकार किया था इसलिए आज गुरु उपकार दिवस हैं ।

आत्मा से परमात्मा बनने का रास्ता गुरु दिखाते है। सत्, चित आनंद का रास्ता दिखाते है । गुरु कंकर को शंकर बना देते है । इसलिए गुरु चरणों में बारंबार नमोऽस्तु करता हूँ । और यही भावना भाता हूँ कि जिस जैनेश्वरी दीक्षा को धारा है उसे सार्थक बनाऊँ स्वयं अपने मुक्ति पथ को प्रशस्त करते हुए, उसी पथ पर अन्यों को चलाने में उनका सहयोग कर सकूं और जीवन के अंतिम लक्ष्य निर्वाण को शीघ्र प्राप्त करुँ ।

इसी भावना के साथ "1008 महावीर भगवान की जय"

"जिनसे है पहचान हमारी : हमारे धर्म तीर्थ"

(प्रवचन नं. 47)

★ हमारे तीर्थ ही हमारी संस्कृति है, उनसे ही हमारा अस्तित्व हैं, वे हमारी पहचान के आधार स्तंभ है अतः उनके संरक्षण व संवर्धन में तन, मन, धन से समर्पित रहना चाहिए।

जो आत्मा को पावन पुनीत बनाते है, आत्मा की पापों से रक्षा करते हैं, पतित को पावन तथा कंकर को शंकर बना दे, वह "तीर्थ" कहलाता है । हमारा समग्र जिनशासन दो दृष्टियों की प्रधानता लेकर अपनी बात करता है एक निश्चय दृष्टि दूसरी व्यवहार दृष्टि । निश्चय की दृष्टि से हम "तीर्थ" का लक्षण देखे तो प्रवचन सार की तात्पर्य वृत्ति में कहा है-

दृष्ट श्रुतानुभूत विषय सुखाभिलाषारूपनीर प्रवेश रहितेन परम समाधि पोतेनोत्तीर्ण संसार समुद्रत्वात्, अन्येषां तरणोपाय भूतत्वाच्च तीर्थम् ।प्र.सा./ता.वृ./1/3/23॥

जो दृष्ट, श्रुत और अनुभूत ऐसे विषय सुख की अभिलाषा रूप जल के प्रवेश से रहित है । अर्थात् विषयों से जो कोसो दूर हैं तथा अपनी आत्मा में ही स्थित है, ऐसे परम समाधि रूप नौका के द्वारा जो संसार समुद्र से पार हो जाने के कारण तथा दूसरों के लिए पार उतरने का उपाय अर्थात् कारण होने से श्री वर्द्धमान भगवान ही तीर्थं हैं ।

तथा भगवती आराधना में आचार्य श्री शिवकोटि महाराज ने "तीर्थ" का लक्षण बतलाते हुए कहा है-

तरन्ति संसारं येन भव्यास्तत्तीर्थं कैश्चन तरन्ति श्रुतेन गणधरैर्वालम्बनभूतैरिति श्रुतं गणधर वा तीर्थ मित्युच्यते ।भ.आ.।वि.302/516/6।

जिसका आश्रय लेकर भव्य जीव संसार से तिरकर मुक्ति को प्राप्त होते हैं उसे तीर्थ कहते है कितने ही भव्य जीव श्रुत से अथवा गणधर की सहायता से संसार से उत्तीर्ण होते हैं, इसलिए श्रुत और गणधर को तीर्थ कहते हैं ।

यह तो निश्चय से तीर्थ है परंतु जो निश्चय तीर्थ की प्राप्ति का कारण है ऐसे जगत प्रसिद्ध तथा मुक्त जीवों के चरण कमलों से स्पृष्ट ऊर्जयन्त गिरि, शत्रुञ्जय, तारंगा, पावागिरि, सम्मेद शिखर जी आदि व्यवहार तीर्थ है । ये सब तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों के स्थान है । ये जितने भी तीर्थ इस धरती पर प्रवर्तमान है वे सब कर्मक्षय का हेतु होने से वंदनीय है । ऐसा बोध पाहुड़ ग्रंथ की टीका में आचार्य

भगवन् ने कहा है।

हमारे जिनधर्म की आन, वान व शान ये तीर्थ ही है । जैसे एक बालक का अस्तित्व उसका वजूद उसके माता-पिता से होता है । वैसे ही हम जिनधर्मानुयायी है । जिनेन्द्र देव के सच्चे भक्त है इस बात का Identification (पहचान) हमारे तीर्थों से ही होता है। यदि हमारे तीर्थ ही न हो तो हमारी पहचान पर प्रश्न चिन्ह लग जायेगा । बड़े-बड़े भव्य जिनालय को तीर्थंकरों व अन्य महापुरुषों की पग रज से पावन 'तीर्थ' दुनियाँ में हमारी पहचान बनाये हुए है । कि ये जैन तीर्थ है ये जैन संस्कृति है ।

दूसरी बात यह है कि ये तीर्थ अपनी पावनता की उद्घोषणा स्वयं कर देते है क्योंकि जब हमारी दृष्टि किसी भव्य विशाल जिनालय पर पहुँचती है तो आंतरिक निर्मलता बढ़ती है कितने ही भव्य इन दिव्य व भव्य जिनालयों का दर्शन पाकर सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर लेते हैं । मोक्ष की राह दिखाने वाला, मुक्ति रूपी मंजिल को दिलाने वाले तथा कर्मो को ध्वस्त करने वाले ये धर्म तीर्थ ही होते है।

इसके अतिरिक्त धर्मतीर्थों की भूमि का तो एक-एक कण पावन होता है । महापुरुषों, तद्भव मोक्षगामियों की पग रज से तीर्थों का कण-कण सुवासित होता है । जब इन पुण्य वर्गणाओं से हमारा संपर्क स्थापित होता है तो एक अपूर्व ही शांति का अनुभव होता है । कितने भी बड़े से बड़े रोगी हो डॉ. उन्हें भी तीर्थयात्रा करने की सलाह देता है क्योंकि तीर्थों का प्राकृतिक वातावरण, आव हवा, स्वास्थ्य के अनुकूल होती है । जब मन में किसी प्रकार का तनाव होता है तो वह तनाव body में Hormons की अनियमितता का कारण बन जाता है फलस्वरूप व्यक्ति बीमार पड़ जाता है परंतु जब तीर्थों की खुली हवा में व्यक्ति जाता है तो प्राकृतिक वातावरण व पुण्य वर्गणाओं के प्रभाव से मनः तनाव, मनः शांति में परिणत हो जाता है तथा मन के तनाव के समाप्त होने व शांति के स्थापित हो जाने से Hormons की अनियमितता समाप्त होकर उसका नियमन (Regulation) हो जाता है । और व्यक्ति स्वस्थता का अनुभव करने लगता है ।

ये बात हम अचल तीर्थो की कर रहे है जिस जिनालय में जिन प्रतिमा को स्थापित कर दिया जाता है उस जिनालय का एक-एक कण पावन हो जाता है इसीलिए नव देवताओं में जिन चैत्य के साथ-साथ जिनचैत्यालय की गणना भी की जाती है तथा उसे भी चैत्य की तरह अष्ट द्रव्यों से पूजा जाता हैं ।

इन अचल तीर्थों की महिमा शास्त्रों में बहुत गायी है-

आचार्य श्री सकलकीर्ति महाराज अपनी सुभाषित रत्नावली में कहते है ।

चैत्यालयं यः कुरुते जिनस्य असंख्यजीवार्जनपुण्यहेतुं न शक्यते तस्य फलं वचोभि

र्वक्तुं बुधै धर्मकरं गुणाढ्यम् ॥

जो असंख्य जीवों के पुण्य संचय में कारण भूत जिनदेव के चैत्यालय को बनवाता है वह चैत्यालय बनवाने के पुण्य से समीचीन धर्म को प्रवर्तमान करता है इस प्रकार धर्म करने वाला, अनेक धार्मिक गुणों से युक्त उसका फल बुद्धिमानों, के द्वारा वचनों से कहने में समर्थ नहीं है क्योंकि जहाँ मंदिर होते है वहाँ उनके निमित्त से धार्मिक उत्सव मनाये जाते है । आज जिनालय है तो आप साधुओं का चातुर्मास करा रहे है । एक साथ एकत्रित होकर धार्मिक उत्सव मना रहे है। ये धार्मिक उत्सव न केवल आंतरिक विशुद्धि को बढ़ाते है, अपितु मन में धर्म के प्रति सच्ची आस्था को और मजबूत करते है आंतरिक खुशी, देकर आंनदित करते है । तथा महती धर्म प्रभावना करते है । और आपके इन उत्सव व महोत्सवों को देखकर जैन ही नहीं जैनेतरों में भी धर्म प्रभावना होती है । हमारे परमाराध्य की महिमा जन-जन तक पहुँचती है कि हमारे आराध्य, इष्ट देव कैसे है उनके गुण सभी में सर्वश्रेष्ठ है । जिनालयों से जिनवर की महिमा प्रकट होती है । कि ऐसे वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी गुणों से सहित इनके परमात्मा है ।

जिनधर्म की महिमा का प्रचार जिनालयों से ही होता है । मंदिर है तो साधु संत आते है । यदि जिनालय ! तीर्थ क्षेत्र अचल तीर्थ है तो हमारे निर्ग्रन्थ दिगंबर गुरु चल तीर्थ है । शास्त्रों में कहा है-

''साधूनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थभूता हि साधवः''

सच्चे निर्ग्रन्थों के दर्शन से अपूर्व पुण्य का संचय होता है । क्योंकि साधू चलते-फिरते तीर्थ है । सर्वार्थसिद्धि की टीका में पूज्यपाद महाराज ने निर्ग्रन्थों के विषय में कहा है-

''अवाग्विसर्गा वपुषा निरुपयन्तं''

अर्थात् जो बिना कुछ बोले ही मात्र शरीर से मोक्षमार्ग का निरुपण करते है वे निर्ग्रन्थ धन्य हैं ।

आगम में इन्हें चलते-फिरते तीर्थ अथवा चलता-फिरता, बोलता-चालता मोक्षमार्ग कहा गया है । अचल तीर्थ अतिशय पुण्य का संचय कराते है लेकिन चल तीर्थ पुण्य का संचय तो कराते ही है साथ ही साथ एक चल तीर्थ, अनेकों चल तीर्थों का निर्माण कर चल तीर्थों की परंपरा को वृद्धिंगत करते है । इसलिए चल तीर्थों की महिमा वर्णातीत है । हमारे पूज्य गुरुजन हम संसार में पतित आत्माओं को दुःख से छुड़ाकर सच्चे सुख में पहुँचाते है । हमारी अशुद्ध पर्याय को व्रतारोपण कर शुद्ध कर देते है गृहस्थाश्रम से हटाकर मोक्षाश्रम में लगा देते है । उन चल तीर्थों की महिमा व उपकारों का वर्णन करना शक्य ही नहीं है ।

ऐसे चल तीर्थों का पुण्य अवसर ही हमारे द्वारा पूर्व जन्मों में किये सद्कार्यो संचित पुण्य का ही सुफल है । कवि ने तो ऐसे चल तीर्थों को सिद्ध ही बना दिया वह कहता है-

चलते-फिरते सिद्ध है ये तो इन पर बलि-बलि जावा रें

भूल गया मैं सारी बतियाँ याद है उनका नाव रे

जब से चरण पड़े गुरुवर के बीच हमारे गांव रें

सिद्धों का दर्शन तो हमने किया है नहीं और न ही हमें कभी सिद्धों के दर्शन हो सकेगे क्योंकि सिद्ध परमात्मा अमूर्तिक होते है । परंतु हमें सिद्धों का परिचय कराने वाले चल तीर्थ ही होते है तथा आज जो स्वयं मोक्षमार्ग पर चल रहे है वे कल कर्मो का क्षय कर मुक्ति को पायेगे इसलिए कार्य में कारण का उपचार कर या भावी नैगम नय की अपेक्षा उन चल तीर्थो को ही चलते फिरते सिद्ध कह दिया जाता है ।

समवशरण में राजित श्रीमद् अर्हंत देव तो साक्षात् चल तीर्थं है जो समवशरण के साथ विहार कर, अपने दिव्य उपदेशों के माध्यम से प्राणी मात्र का कल्याण करते है । उन्हें आत्महित पथानुगामी बना देते हैं ।

उन साक्षात् चल तीर्थों की स्मृति रूप में हम अचल तीर्थों का निर्माण करते है । इन अचल तीर्थो के निर्माण व जिनबिंब स्थापना की महिमा बतलाते हुए आचार्य श्री सकलकीर्ति महाराज कहते है ।

अङ्गुष्ठ मात्रं जिनदेव बिंब, करोति यो नित्य समर्च्चनीयम् ।

अनेक जीवार्जन पुण्य हेतु, महत्सुपुण्यं लभते स नित्यम् ॥170॥

अर्थात् जो मनुष्य अंगुल मात्र जिन चैत्यालय बनवाकर उसमें सरसों के समान जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा को विराजमान कराता है और प्रतिदिन भक्ति भाव से युक्त होकर अष्ट द्रव्य से उन जिनेन्द्र देव के चरणों की पूजा करता है वह अनेकों जीवों के पुण्यर्जिन में हेतु होता है क्योंकि जिन चैत्यालय के माध्यम से अनेकों भव्य जीव कल्याण करेंगे तथा सम्यक्त्व को ग्रहण करेंगे तथा मोक्ष सुख को प्राप्त करेंगे इस कारण उन भव्य जीवों के पुण्य में निमित्त होता हुआ महान उत्तम पुण्य को प्राप्त होता है जैसे कि कहा जाता है कि करोड़ो वर्ष उपवास करने का, जन्म जन्मान्तरों तक तप करने का और करोड़ो दानों में करोड़ दान करने का जो फल होता है । वह समग्रफल एक नवीन जिनालय बनाने का होता है । ऐसा जानकर जिन चैत्यालय अवश्य बनवाना चाहिए ।

भाव संग्रह ग्रंथ में कहा है कि-

जो मनुष्य धनियाँ के दल बराबर जिन भवन बनवाकर उसमें सरसों के बराबर भी जिन प्रतिमा की स्थापना करता है वह तीर्थंकर पद को पाने योग्य पुण्य को प्राप्त करता हैं ।

तीर्थ के शास्त्रों में मुख्य दो भेद कहते हैं-

1. द्रव्य तीर्थ   2. भाव तीर्थ

1.द्रव्य तीर्थ-

जितने भी कृत्रिम अकृत्रिम जिनालय है वे मनः संताप को शांत करते है, तृष्णा को नष्ट करते है तथा पाप पंक की शुद्धि करते है इसलिए ये द्रव्य तीर्थ हैं ।

2. भाव तीर्थ-

समवशरण में राजित अभेद रत्नत्रय युक्त अर्हंत देव भाव तीर्थ है । ऐसा मूलाचार ग्रंथ में श्री वट्टकेर आचार्य भगवन्त ने कहा है ।

इन द्रव्य, भाव तीर्थों की भाव सहित वंदन, पूजन करने से संपूर्ण पापों का नाश होता है तथा स्वर्ग, मोक्ष रूप अभ्युदय सुख की प्राप्ति होती है । तथा इन तीर्थो के निर्माण, जिर्णोद्धार, विकास आदि में खर्च किया द्रव्य दिन दूना रात चौगुना बढ़ता ही है । जैसे - कुयें से चाहे जितना जल निकाल लो परंतु एक इंच मात्र भी उसका लेविल घटता नहीं है । ज्यों का त्यों बना रहता है झिरों से शुद्ध पानी आता रहता है वैसे ही तीर्थो में दिया गया दान कभी घटता नहीं अपितु गुणित क्रम से बढ़ता ही जाता है ।

अतः हमारी जिन धर्म की आन-वान-शान स्वरूप तीर्थो के उद्धार में, संवर्धन संरक्षण में, निर्माण व विकास में हमें तन मन और धन से समर्पित रहना चाहिए। यही इस मानव देह को पाने की सार्थकता हैं ।

इसी भावना के साथ- ''1008 वासुपूज्य भगवान की जय''

- 'चल तीर्थ' खुद चलकर हम तक आते हैं, हमें जगाते हैं और हमारे अंतर मनों में आस्था का दीप जलाते हैं । मोक्षमार्ग पर चलकर वे स्वयं मोक्ष को पाते हैं । और जहाँ से वे मोक्ष जाते है वे ही 'अचल-तीर्थ' बन जाते हैं, और वे अचल तीर्थ हमें उन चल तीर्थों का स्मरण कराकर हमारी आस्था को मजबूत बनाते हैं । इसलिए आओ और चल से अचल तीर्थं की यात्रा का प्रारंभ करो ।

"हृदय परिवर्तन का अनुपम दृश्य"

(प्रवचन नं. 48)

★ *कोमलता ही साधक जीवन का सर्वोत्कृष्ट गुण है । जहाँ ऋजुता है वही आर्जव हैं जहाँ गुणवत्ता हैं वहाँ से दोष पलायन कर जाते हैं और गुणवान ही शिवसुख पाता हैं ।*

बंधुओं ! संतों के चरणों की धूलि को आप सर माथे लगाते हैं । संतों के चरणोदक को आप उत्तमांग में धारण करते हैं । फिर जो चौबीसों घंटे 365 दिन तक संतों के साथ रही हो व उनके संयम पालन में सहयोगी रही हो उस पिच्छिका का क्या कहना ? वह जिस पुण्यात्मा के हाथ में जाती हैं । वह निहाल हो जाता हैं । पिच्छि लेने वाला असीम पुण्यार्जन तो करता ही है। साथ ही पिच्छिका एक मांगलिक उपकरण है अतः उनका घर मंगलमयी हो जाती है पिच्छिका भेंट करने वाला संतों की साधना का 10% पुण्य का भागी होता है ।

पिच्छि का बहुत महत्व है पिच्छि का एक पंख भी चमत्कारी होता है । जिसके हृदय में श्रद्धा है उसके रोग-शोक दूर हो जाते हैं । एक बार एक सज्जन मेरी पिच्छि का एक पंख ले गये । अस्वस्थ व्यक्ति को लगाया तो वह स्वस्थ हो गया । फिर पूरी पिच्छि की तो महिमा ही निराली हैं।

कार्तिक महिने में मयूर अपने पंखों को छोड़ देती है श्रावक उन पंखों को बटोर उनकी पिच्छिका बना लेते हैं । अथवा संत जनों को पंख भेंट में दिये जाते है । और पिच्छिका बना दी जाती है ।

मोर पंख की बड़ी महिमा हैं श्री कृष्ण ने इसे अपने मुकुट पर धारण किया था । पीर-पैगम्बर मयूर पंख से झाड़ा-फूकी करते है । तथा मयूर पंख के पास सर्प नहीं आते ।

मुनिराज जो पिच्छि 1 वर्ष तक हाथों में रखते हैं । 1 वर्ष में उसकी ऋजुता घट जाती है पंख घिस जाते है । जीव रक्षा में असुविधा होने लगती है अतः प्रतिवर्ष इसका परिवर्तन करना अनिवार्य होता है । अनेक शासन पर्वो की तरह पिच्छिका परिवर्तन भी एक शासन पर्व हैं । तथा बड़े महोत्सव के साथ यह पिच्छिका परिवर्तन किया जाता हैं।

आज हम 'पिच्छिका-परिवर्तन' की पावन बेला में बैठे है । यह हृदय-परिवर्तनोत्सव हैं। क्योंकि पिच्छिका को देख भक्तों के मन हर्षित हो जाते हैं । व संयम लेने के लिए आतुर हो जाते है भले पुरानी ही हो उसे सब पाना चाहते है । पिच्छिका का कोई मूल्य नहीं होता वह अमूल्य होती है । क्योंकि साधकों के रत्नत्रय की साधना में सहयोगी संयम का उपकरण हैं। 7 क्षेत्र या सप्त परम स्थानों में दिया

गया दान सर्वोत्कृष्ट फल देता हैं । पिच्छि भी श्रावक, संतों के हाथों में भेंट करते हैं संयमोपकरण का दान देते है । क्या कारण है कि पिच्छि को ही संयमोपकरण के रूप में प्रयोग करते हैं ?

मोर पंखों को एकत्रित कर पिच्छि बनायी जाती है ।

मोर पंख मे अनेक विशेषताएँ होती है जो अन्य पंखों में नहीं होती ।

1. कोमल 2. धूलि के कण चिपकते (अरजकता) नहीं 3. पानी पसीने को ग्रहण नहीं करती, पानी (अश्वेदकता) भी ठहरता नहीं 4. हल्की 5. सुंदर ।

1. कोमलता/ऋजुता- पिच्छि का एक-एक गुण बहुत बड़ी शिक्षाएँ देता हैं । सबसे कोमल मोर पंख ही होता हैं । आंखों में भी चला जाए तो चुभता नहीं । यदि कोमल जीव मोर पंख की पिच्छी से अलग कर दिये जाए तो वे मरते नहीं उनकी रक्षा हो जाती है । पिच्छि कहती है- हे साधक ! जैसे मैं कोमल हूँ वैसे ही तुम भी अपने मन को ऋजु व कोमल बना लो । जो इतनी ऋजुता व कोमलता रखता है वही कर्मो का क्षय कर मुक्ति पाता है ।

2. अरजकता धूलि के कण चिपकते नहीं- धूलि के कण पिच्छि से चिपकते नहीं वह शिक्षा देती है कि हे साधक ! सारी बुराईयों व दुर्गुणों को भी तुम अपने आप से दूर रखों । बुराईयों को दूर से ही धूलि के कण की तरह अलग कर दो ।

3. पिच्छि पानी को नहीं सोखती (अश्वेदकता)- पिच्छि से ही दिगंबर संत पसीना पोंछ देते हैं । फिर भी पिच्छि श्वेद (पसीने) को ग्रहण नहीं करती । जो हमें शिक्षा देती हैं । कर्मो के पसीने से हे आत्मन् ! तुम प्रभावित मत होना, पिच्छी की तरह अलिप्त रहना ।

4. हल्की- पिच्छि बहुत हल्की होती हैं । संत चौबीसों घंटे उसे अपने हाथ में रखते हैं। यदि भारी होगी तो परेशानी हो सकती थी। अपने करों को मुकुलित कर भरे हाथों से पिच्छिका को हाथ में लेकर संतजन स्तुति, वंदना करते हैं । यह हल्की पिच्छी कहती है कि हे साधक ! यदि तुम कर्मो के भार से हल्के हो जाओगे तो ऊपर उठते-उठते सिद्ध शिला के निवासी बन जाओगे ।

5. सुंदर- पाँचवा पिच्छि का गुण है कि वह देखने में बहुत सुंदर होती है । जो गुणवान हो वह उन गुणों से सौंदर्यता को पा लेता है । पिच्छि की सौंदर्यता सबका मनमोहती हैं । सब उसे पाना चाहते है । वह कहती है कि हे साधक ! यदि तुम भी जिनगुण रूपी संपदा को पा लोगे तो लोक में सबसे सुंदर हो जाओगे ।

पिच्छिका के परिर्वतन को देख बहुत से लोगों के मन भी बदल जाते हैं । कितने ही लोग रत्नत्रय धारण करने का भाव बना लेते हैं । जो पिच्छिका अपने घर ले जाकर उसे उच्च स्थान में विराजित कर देते हैं वह पिच्छिका सदैव धर्म मार्ग में बढ़ने की शिक्षा देती है और स्मरण कराती हैं तुम्हें भी एक दिन

यह रत्नत्रय का प्रतीक रूप पिच्छि धारण करना है । और पुरानी पिच्छि लेने वाला एक दिन नवीन पिच्छिका भी पा लेता हैं ।

इसलिए इसे हृदय-परिर्वतन का महोत्सव कहा जाता हैं आज का यह महोत्सव अपने आप में विशेष है जहाँ एक साथ 70 पिच्छियों का परिवर्तन हो रहा हैं । भारत वर्ष में जहाँ-जहाँ भी चातुर्मास हो रहे हैं उन सभी चातुर्मासों में एक साथ सार्वाधिक पिच्छिका-परिवर्तन देखने का सौभाग्य जयपुर वासियों को प्राप्त हुआ हैं ।

यह पिच्छिका परिवर्तन आपके अंतर मन परिवर्तन का हेतु बने ।

इसी भावना के साथ-''1008 महावीर भगवान की जय''

- विकल्प रहित जीव ही अमृत का पान करता है-

य एव मुक्त्वानयपक्षपातं,
स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्यम् ।
विकल्पजालच्युत शांत चित्तास्त,
एव साक्षादमृतं पिबन्ति ।।69।।

अर्थ - जो नय के पक्षपात को छोड़कर स्वरूप में गुप्त होकर सदा निवास करते हैं, तथा जिनका चित्त विकल्पजाल से रहित शांत हो गया है, ऐसे वे आत्मरथी साक्षात् अमृत का ही पान करते हैं ।

अर्थात् नयपक्षपाती का चित्त शांत नहीं हो सकता । इसलिए नयपक्षपात को छोड़ स्वरूप में निमग्न होना श्रेष्ठ हैं ।

- समयसार कलश

"ये धरोहर पूर्वजों की है इसे संभालों"

(प्रवचन नं. 49)

★ ***हमारे धर्म तीर्थ ही हमारी सबसे बड़ी पूंजी है । क्योंकि हमारा अस्तित्व उन्हीं धर्म तीर्थों से सुरक्षित हैं ।***

बंधुओं ! भगवान जिनेन्द्र प्रभु की अचिन्त्य महिमा शास्त्रों में गायी है । वे अहोभाग है जो मानव पर्याय पाकर परमात्मा पर अकाट्य श्रद्धा रखते हैं । यह भारत भू-महापुरुषों की पग रज से पावन हैं । उन महापुरुषों ने संस्कारों से सींच इसे तीर्थभूमि बना दिया हैं । हमारा महाभाग्य है कि हम भी उस धरा पर जन्में हैं। हिंदु हो या बुद्ध, सिक्ख हो या ईसाई, मुस्लिमों के 24 पैगंबर सब महापुरुष भारत में हुए । हमारा भारत सभी देशों में एक शांतिप्रिय देश है । हमारे पूर्वजों की श्रद्धा, भक्ति के दर्शन हमें इन प्राचीन तीर्थों में होते हैं । उनकी धरोहर हमारी आस्था का केंद्र है । हमारे पूर्वजों ने अपनी संपदा का उपयोग मात्र भोगों में नहीं अपितु योग मार्ग के प्रसारण/प्रचारण में किया है । सुंदर-सुंदर तीर्थ बना कर अपनी आस्था व समर्पण के दृश्य दिखाये हैं ।

जहाँ प्रायः व्यक्ति घर मे मार्बल लगाने व नक्काशी, कला कृति बनाने की सोचते है वहाँ प्राचीन समय में प्रभु भक्त जिनालयों का संवर्धन करते हैं ।

"जयपुर" वह स्थान है जहाँ परमात्मा का निर्माण होता है । सुंदर-सुंदर मूर्तियाँ यहाँ से सर्वत्र भेजी जाती है । पुराने समय में मूर्तियों का गढ़ देवगढ़ था परंतु आज तो जयपुर ही देवगढ़ बन गया है । जौहरियों ने रत्नों को तिजोरी में कैद न कर मूर्ति का रूप प्रदान किया है ।

मेरे गुरु ने एक बार मुझे अपनी माला दी किसी ने कहा- महाराज ये तो कांच की है । मैंने कहा- कांच की हो चाहे जिस की हो तुम्हारे हीरे से अधिक मूल्यवान है क्योंकि गुरुदेव ने हजारों, लाखों मंत्र फेर इसे संस्कारित कर दिया है भगवान चाहे पीतल के हो यो रत्नों के कीमत वीतरागता की है । प्रभु परमात्मा के भक्त सदैव प्रभु भक्ति को लालायित रहते हैं ।

भक्त, भगवान के द्वारे पर दौड़ा-दौड़ा जाता है यही उसकी आस्था का प्रतीक है । भक्त का लक्षण तिलक, माला नहीं अपितु भक्ति से भरा हृदय होता है ।

एक व्यक्ति बोला- महाराज क्या आपको स्वप्न आया । मैंने कहा- मुझे तो रोज स्वप्न आते है मेरा स्वप्न था कि मैं यक्षरक्षित भूर्गभ के जिनबिंबों का दर्शन करूं मेरा वह स्वप्न पूरा हो गया । स्वास्थ्य खराब होने से लोगों ने आमेर जाने मना किया मैंने कहा- भक्ति में बड़ी शक्ति है । परमात्मा के दर्शन से सब ठीक हो जाता है । मुझे इन जिनबिंबों में वीतरागता, सर्वज्ञता व हितोपदेशिता दिख रही है । मूर्ति में भी मुझे मूर्तिमान दिख रहे हैं ।

आप मूर्ति को नहीं मूर्तिमान को देखों तो देवाधिदेव का दर्शन पापों के क्षय का हेतु बनेगा ।

जन्म जन्म कृतं पापं, जन्म कोटि मुपार्जितम् ।

जन्म मृत्यु जरा मूलं, हन्यते जिन वंदनात् ।।

भव-भव के पाप प्रभु दर्शन से मिट जाते है । चमत्कार मूर्ति में नहीं अपितु भक्त की श्रद्धा में होते हैं । श्रद्धा हो तो पत्थर से भी पानी निकल सकता है । और श्रद्धा न हो तो साक्षात् त्रिलोकीनाथ भी तुम्हारे लिये कुछ नहीं कर सकते । परमात्मा के द्वार पर भक्त श्रद्धालु अपनी खाली झोली भर ले जाता हैं।

भगवान पहले पत्थर थे उस पत्थर को उठाकर किसी भक्त ने परमात्मा बना दिया । अक्षर तो वे ही है- एक वे है- जो गाली में बदल जाते है एक वे है जो मंत्र में बदल जाते हैं। और मंत्र विष को निर्विष करने की क्षमता रखता है और गाली, युद्ध खड़ा कर देती है । मात्र अक्षर विन्यास में परिर्वतन हैं ।

भगवान को भक्त ऊपर उठाता है । गुरु को गुरुता, शिष्य से मिलती है । माँ को उच्चता बेटा देता है । वैसे ही हमारे तीर्थ क्षेत्रों, जिनबिंबों व गुरुओं को चाहे तो हम ऊँचाईयों पर ले जा सकते है । आज हम मूलनायक पार्श्वनाथ स्वामी के चरणों में बैठ उनका श्रद्धाभिषेक करेगे । भूगर्भ से निकाले ये जिनबिंब लगभग 800-900 वर्ष प्राचीन है । तथा छोटी बड़ी सभी प्रतिमाएँ 500 से ऊपर हैं। हमारे पूर्वजों ने इस धरोहर को संभाल कर रखा है । कीर्ति स्तंभ,नसिया जी में जिन भट्टारकों का नामोल्लेख है वे निर्ग्रन्थ दिगंबराचार्य थे ।

श्री अकलंक देव को पहले भट्टाकलंक देव कहा जाता था । धवला जी में महावीर भगवान को भट्टारक महावीर शब्द से संबोधित किया है । भट्टारक यानि पवित्र मंगलकारी । हमारे ये धर्म तीर्थ हमारी प्राचीन धरोहर है शासन ने भी इसे सम्मानित किया है ।

एक राजा ने सेठ जी से उनका मंदिर मांगा सेठ जी ने वह राजा को सौंप दिया । उसे जगत शिरोमणी के नाम से जाना जाता है राजा ने उसका विशेष वर्द्धन किया ।

उदार मना लोग जिनालयों, तीर्थों का संरक्षण करते हैं ।

यहाँ पर 167 प्राचीन यंत्र है । जो बहुत शक्तिशाली व महिमावंत होते है । मैना सुंदरी ने सिद्धचक्र यंत्र की आराधना से ही श्रीपाल सहित 700 कोढ़ियों को स्वस्थ किया । हमारे तीर्थ पूर्वजों की धरोहर है । हमें भी अपनी इबारत इस पर लिखनी हैं। अतः जीर्णोद्धार में तन, मन, धन से सहयोग करें ।

मंदिर जी की नक्काशी में 24 तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ उत्कीर्ण है । यदि हम उनके संवर्धन व विकास में योगदान दें तो तीर्थ सुरक्षा में - आपका नाम भी लिया जाता रहेगा ।

इसी भावना के साथ- ''1008 महावीर भगवान की जय''

प्रश्न डॉक्टरों के जवाब गुरुदेव के

(प्रवचन नं. 50)

प्रश्न - (1) डॉक्टर्स शरीर का ही इलाज कर पाते हैं । आत्मा के इलाज के लिए तो संतों की ही शरण में जाना चाहिए । परन्तु फिर भी यदि हम संतों का इलाज करना चाहते है तो हमें क्या प्रक्रिया अपनाना चाहिए । तथा क्या मुनि अवस्था में इलाज संभव है ।

उत्तर - हमारे यहां कहा है - मूल संयम का विघात न हो तो संभव इलाज कर सकते है मोतिया बिंद आदि का Operation हो सकता है । प्रयाश्चित लेकर व्रत शुद्धि संभव है परन्तु मूल संयम का विघात होता है तो वह इलाज नहीं करवा सकते ।

(1) खड़े-खड़े ही आहार लेंगे (2) हाथ में ही लेंगे । (3) एक ही बार लेंगे ।

सारा संयम यथावत् चलता रहे तो वो गुरु स्वयं कुछ नहीं कहेंगे । Doctors से कह देंगे संयम का विनाश न हो आप अपनी ओर से यथायोग्य उपचार करें । यदि हम Direct Operation की अनुमति देते हैं तो हम भी उस दोष के भागी हो जायेंगे । फिर शिष्य को बाद में प्रायश्चित क्या देंगे । हम स्वयं प्रायश्चित के भागीदार हो जायेंगे । इसलिए Doctors के अंदर कुशलता होना चाहिए कि मूल संयम में विघात किये बिना यथासंभव इलाज करें ।

प्रश्न - (Lady doctors.)

(2) साधुओं के लिए खड़े-खड़े ही आहार ग्रहण करने की क्या उपादेयता है ?

उत्तर - साधुओं के मूलगुण/मूलव्रत 28 होते हैं । दीक्षा के समय इन्हीं मूलगुणों का आरोपण साधक के लिए किया जाता है । ये मूलगुण आजीवन के लिए धारण किये जाते है ये यमव्रत कहलाते है और इन्हीं 28 मूलगुणों में से 1 मूलगुण खड़े होकर आहार लेने का है जिसे 'स्थिति भोजन' मूलगुण कहा जाता है । दूसरा प्रयोजन ? बतलाते हुए आचार्य शिवकोटि महाराज अपने भगवती आराधना ग्रंथ में कहते है । कि जब तक साधक में खड़े रहने की क्षमता है जंघा बल है तभी तक वह साधना के योग्य है जंघा बल समाप्त होते ही वह सल्लेखना की ओर कदम बढ़ा लेता है । यही खड़े होकर आहार लेने के पीछे प्रयोजन छिपा होता है ।

प्रश्न (3) a यदि किसी साधक का स्वास्थ्य खराब हो जाता है तो दीक्षा छेद कर पुनः दीक्षा लेने में क्या बुराई है । यदि साधक आत्म कल्याण के लिए दीक्षा लेता है तो उसके निमित्त से परकल्याण भी होता है । यदि स्वास्थ्य खराब होने से समाधि हो गयी तो दुनियाँ उस लाभ से वंचित रह जायेगी । यदि वह दीक्षा छेदकर इलाज करा स्वस्थ हो जाए तो पुनः दीक्षा ले ले तो उसकी भी साधना आगे हो

सकेगी तथा लोगों को भी लाभ मिल सकेगा ।

उत्तर (3) b जो साधक 10 वर्ष पुराना है तो वह राग-द्वेष पर तो विजय पा चुका है अब दीक्षा छोड़ने में दुःख कैसा ? वह तो राग-द्वेष से परे है । फिर क्या 10 वर्ष की साधना में राग-द्वेष नहीं जीत पाया क्या ?

उत्तर - समाधान (पू. आचार्य श्री) चूंकि महाव्रत यम रूप में लिया जाता है । जब साधक मुक्ति पंथ पर अपने कदम आगे बढ़ाता है तो सिर पर कफन बांध लेता है । प्राण भले ही चले जाए परन्तु मेरा प्रण कभी नहीं टूटेगा । शरीर को गौण कर आत्म साधना, स्वात्मोपलब्धि इष्ट हो जाती है । इस मार्ग पर कदम बढ़ाने से पूर्व साधक गुरु, जन माता-पिता, इष्ट संबंधियों, समाज को, धर्म को यह विश्वास दिलाता है कि जिस पथ पर वह कदम बढ़ा रहा है उससे कदम पीछे नहीं हटायेगा भले ही प्राण क्यों न चले जाए । इसलिए साधक प्राण त्यागना पसंद करते है परन्तु प्रण नहीं । इसलिए दीक्षा छेद प्रायः नहीं की जाती है । दूसरी बात - सभी साधक एक जैसे नहीं होते कोई शक्ति संपन्न होते हैं उनका आत्मबल will-power strong होता है । जिससे वे प्राणों की परवाह नहीं करते अपितु प्रतिज्ञा में दृढ़ रहते है ।

दूसरे प्रकार के साधक वे होते है । जो ज्यादा सहनशील, शक्ति संपन्न नहीं होते । एक समय सीमा तक तो वे भी सहन करते रहते हैं । परन्तु जब सहन नहीं होता तो संक्लेशता से प्राण निकलना भी समाधी मरण नहीं कहलायेगा अपघात ही कहलायेगा । ऐसी परिस्थिति में जबकि साधक स्वयं दीक्षा छेद करने तत्पर है और अपनी असमर्थता प्रकट कर रहा है । ऐसी परिस्थिति में संयम पालने हेतु हम जबरजस्ती नहीं कर सकते । सम्यक चिंतन से संभल जाए तो ठीक समझाने पर भी न माने तो फिर डॉक्टर की उचित सलाह लेकर गुप्त रीति से इलाज वगैरह करवा दिया जाता है ऐसी परिस्थिति में दीक्षा छेद करना पड़ती है परन्तु आचार्यगण भी इतना बड़ा निर्णय सहसा नहीं लेते अपितु अपने से ज्येष्ठ आचार्यों से परामर्श लेते हैं फिर किसी ऐसे Doctors से इलाज करवाते हैं जो मर्यादा का ध्यान रखते हुए इलाज करें । पश्चात् स्वास्थ्य लाभ होने पर पुनः दीक्षा संस्कार कर देते है ।

तीसरी बात - दीक्षा छोड़ना कोई आसान काम नहीं । प्राण नष्ट होने से भी अधिक कष्ट साधक को दीक्षा छोड़ने में होता है । क्योंकि उसने संयम किसी की जोर जबरजस्ती से नहीं अपितु स्वेच्छा से ग्रहण किया था । दूसरी बात कोई पहाड़ से गिरे अर्थात् ऊँचाई से नीचे आये, पूज्यनीय पद से गिरकर नीचे आता है । तो उसे दुःख व कष्ट तो होगा ही क्योंकि लिया हुआ व्रत तोड़ने पर हजारों मंदिरों को तोड़ने बराबर पाप लगता है इसलिए साधक दीक्षा छोड़ना नहीं चाहता मजबूरन उसे परिस्थिति वशात् छोड़ना पड़ती है । आ. समंतभद्र महाराज को जब भस्मक व्याधी हो गई थी तो उन्होंने भी समाधि मरण हेतु गुरु से प्रार्थना की । परन्तु गुरु ने शिष्य की योग्यता को परखते हुए आगामी काल में इसके

द्वारा बड़ी धर्म प्रभावना होनी है ऐसा सोचकर दीक्षा छेद कर व्याधी शमन का आदेश दिया । इसलिए दीक्षा छेद rare conditions में ही होती है । सर्वथा नहीं । कितने ही साधकों के ऐसे उदा. भी है जिन्होंने बड़ी-बड़ी यातनाएं सहकर भी अंत में समाधिपूर्वक मरण किया । दीक्षा छेद अपवाद मार्ग है राजमार्ग नहीं । तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को देखर चलने वाले आगम कुशल गुरु ही उसके निर्णय में समर्थ है अन्य नहीं ।

प्रश्न (4) जिस प्रकार देश के संविधान में समय-समय पर परिवर्तन होता रहता है । क्या आपके नियम संयम का संविधान परिवर्तन नहीं हो सकता ? खड़े होकर आहार करने वाले क्या बैठकर नहीं कर सकतें ?

उत्तर - देश के संविधान में भी परविर्तन सहसा नहीं होता, सोच-समझ कर विचार-विमर्श कर योग्यायोग्य का निर्णय करके ही होते है वैसे ही धर्म क्षेत्र में सारे संविधान सर्वज्ञ देव ही निर्धारित करते है हम तो अपनी शक्ति अनुसार संविधान पालन करते व कराते है सर्वज्ञ कथित आगम में परिवर्तन संभव नहीं । कुछ नियम ऐसे होते हैं जिनमें कुछ परिवर्तन संभव नहीं जैसे -

(1) दिन में 1 बार खड़े-खड़े कर पात्र में आहार लेना अब कोई कहे महाराज दो बार आहार लेने लगो । तो संभव नहीं । क्योंकि फिर महाराज, महाराज ही नहीं रहेंगे ।

कोई कहे महाराज उस्तरे से बाल बनवा लीजिए । महाराज कहेंगे, संभव नहीं । हाँ, कुछ चरणानुयोग संबंधी नियम ऐसे होते है । जिन्हें हम द्रव्य क्षेत्र काल भाव के हिसाब से समय-समय पर परिवर्तन कर सकते है । वे भी सहसा संभव नहीं अपितु बड़े-बड़े आचार्य मिलकर विचार विमर्श करते है और योग्य समाधान खोजते है । फिर सभी शिष्य गण गुरु के उस निर्णय को स्वीकार कर लेते है ।

प्रश्न (5) कुछ Alopathic दवाईयाँ Air pressures देकर बनायी जाती है वे शुद्ध होती है, तथा ली जा सकती है फिर आप लोगों ने जो Alopathic दवाई न लोने का नियम बना रखा है वह कहां तक उचित है ?

उत्तर - चरक संहिता में आयुर्वेदिक दवाईयों का पूरा ब्यौरा है यद्यपि सभी आयुर्वेदिक दवाईयाँ भी शुद्ध नहीं होती है इसलिए हम लोग मात्र Allopathic दवाईयों का ही निषेध करते हो तो ऐसी बात नहीं है अपितु जो आयुर्वेदिक दवाईयाँ शुद्ध नहीं है, हम वो भी नहीं लेते । कोई भी द़वाई लेने के पूर्व हम यह अवश्य देखते है कि वह बनी किन-किन चीजों से हैं containt देखते हैं यदि वह शुद्ध पदार्थों से बनी है तो लेते है । रही Allopathic औषधी की बात तो यदि वह शुद्ध है तो उसे हम ले या न ले यह विषय विचाराधीन है । बड़े-बड़े आचार्यों की इस विषय में चिंतन, मंथन व खोजे चल रही है ।

गणाचार्य
श्री विरागसागर
मण्डल विधान

श्री चिंतामणि
पार्श्वनाथ
मण्डल विधान

श्री बड़े बाबा
आदिनाथ
मण्डल विधान

24 तीर्थंकर
विधान

श्री शांतिनाथ
महामंडल
विधान

विराग भक्ति
सरगम

आत्म संबोधन
शतक

जीवन परिचय

रचयित्री : श्रमणी आर्यिका 105 श्री विदक्षा श्री माताजी

जीवन बिंदु......

पूर्वनाम	-	कु. विनीता जैन
जन्म	-	16 मार्च 1978, सागर (म.प्र.)
माता-पिता	-	श्रीमती कुसुमजी- डॉ. जिनेन्द्रकुमार जी जैन (चर्म रोग विशेषज्ञ)
बहिन	-	श्रीमती बीनू जैन
लौकिक शिक्षा	-	एम.एस.सी. (केमिस्ट्री), गर्ल्स कॉलेज, सागर (म.प्र.)
धार्मिक शिक्षा	-	बाल बोध से लेकर जयधवल ग्रंथ के 4 भाग (श्री गुरू मुख से)
प्रतिमाएँ	-	5 प्रतिमाएँ, दुर्ग (छत्तीसगढ़) 2003. प.पू. युग प्रमुख श्रमणाचार्य श्री 108 विरागसागरजी महाराज
आर्यिका दीक्षा	-	13 फरवरी 2006 (माघ शुक्ल पूर्णिमा) श्रवणबेलगोला, कर्नाटक (बाहुबली भगवान के महामस्तकाभिषेक के अवसर पर)
नामकरण	-	श्रमणी आर्यिका श्री 105 विदक्षा श्री माताजी
दीक्षा प्रदाता गुरू	-	प.पू. युग प्रमुख श्रमणाचार्य श्री 108 विरागसागरजी महाराज
अभिरूचि	-	चिंतन, मनन, पद्य रचना, विधान, भजन, प्रवचन लेखन
साहित्य सेवा	-	लगभग 30 पुस्तकों का संपादन कार्य, 5 विधान, शताधिक भजन, पूजन, पद्यानुवाद, आत्म-संबोधन शतक
चातुर्मास	-	दीक्षा के बाद 2006 से 2012 तक आचार्य श्री के साथ, 2013-बड़वानी, 2014-समवशरण मंदिर, 2015-नंदानगर, इन्दौर

Sugan/0930 212 55 94